NAGRI
Pracharini
Patrika
1942

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110712

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक

वर्ष ४७ [नवीन संस्करण] अंक २

श्रावण १९९९

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
संस्कृत में प्राकृत का प्रभाव [लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०]	१४५
स्वदेशी तथा विदेशी हिंदी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन [लेखक—श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए०] ...	१५७
दाराशिकोह के फारसी उपनिषद्—[लेखक—श्री शालिग्राम श्रीवास्तव]	१७९
प्राचीन भारतीय गणित [लेखिका—कुमारी सुप्ति सिंह, एम० ए०, डी० टी०, रिसर्च स्कालर का० वि० वि०] ...	१८७
सभा की प्रगति	२०५

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

मूल्य प्रति संख्या २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
२—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।
३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।
४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक-मंडल

केशवप्रसाद मिश्र   वासुदेवशरण अग्रवाल
पद्मनारायण आचार्य   कृष्णानंद (संपादक)

नवीन पुस्तकें

संस्कृत साहित्य का इतिहास

प्रथम भाग—इस ग्रंथ में काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध रीति-ग्रंथों एवं उनके प्रणेताओं के परिचय तथा काल-निर्णय के संबंध में ऐतिहासिक निरूपण किया गया है। पृष्ठ-संख्या ३३४। सजिल्द प्रति का मूल्य सवा रुपया मात्र।

द्वितीय भाग—इसमें काव्यग्रंथों के विषय, काव्य के प्रयोजन और हेतु एवं काव्य के लक्षण आदि पर विभिन्न आचार्यों के मतों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और काव्य के पंच सिद्धांत रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि का स्पष्टीकरण तथा इनके पाँचों संप्रदायों का आलोचनात्मक विवेचन कर उनका रहस्योद्घाटन किया गया है। पृष्ठसंख्या २१४, सजिल्द पुस्तक का दाम केवल सवा रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110712
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110712

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक

वर्ष ४७ [नवीन संस्करण] अंक ३-४
कार्तिक-माघ १९९९

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
मानमंदिर बनारस [लेखक—प्रो० चंडीप्रसाद]	...	२१७
भूपालवल्लभ [लेखक—श्री नारायण शास्त्री आठले]	...	२४५
वीरगाथा-काल की रचनाओं पर विचार [लेखक—श्री अगरचंद नाहटा]	... ...	२५५
सुरति-निरति [लेखक—डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट०]	... ...	२६३
शाहजहाँ-कालीन कुछ काशीस्थ हिंदी-कवि [लेखक—श्री दशरथ शर्मा]	... ...	२७१
अभागा दारा शुकोह [लेखक—श्री अविनाशकुमार श्रीवास्तव]		२७३
अलाय-बलाय [लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल]	...	२९९
चयन	... ...	३०५
समीक्षा	... ...	३२९
विविध	... ...	३६४
सभा की प्रगति	... ...	३६९

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

मूल्य प्रति संख्या २॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
२—हिंदी-साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।
३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।
४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक-मंडल

केशवप्रसाद मिश्र   वासुदेवशरण अग्रवाल
पद्मनारायण आचार्य   कृष्णानंद (संपादक)

नवीन पुस्तकें

संस्कृत साहित्य का इतिहास

प्रथम भाग—इस ग्रंथ में काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध रीति-ग्रंथों एवं उनके प्रणेताओं के परिचय तथा काल-निर्णय के संबंध में ऐतिहासिक निरूपण किया गया है। पृष्ठ-संख्या ३३४। सजिल्द प्रति का मूल्य सवा रुपया मात्र।

द्वितीय भाग—इसमें काव्यग्रंथों के विषय, काव्य के प्रयोजन और हेतु एवं काव्य के लक्षण आदि पर विभिन्न आचार्यों के मतों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और काव्य के पंच सिद्धांत—रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि—का स्पष्टीकरण तथा इनके पाँचों संप्रदायों का आलोचनात्मक विवेचन कर उनका रहस्योद्घाटन किया गया है। पृष्ठसंख्या २१४, सजिल्द पुस्तक का दाम केवल सवा रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४७-अंक २ [नवीन संस्करण] श्रावण १९९९

संस्कृत में प्राकृत का प्रभाव

[लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०]

महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य के प्रारंभ में व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के प्रयोजन बतलाए हैं। उनमें एक प्रयोजन वेदों की रक्षा करना भी है। वेदों की रक्षा के लिये व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि वेदों की ठीक तरह से रक्षा वही कर सकता है जिसे लोप, आगम और वर्ण-विकार का पूरा ज्ञान हो—

'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग्वेदान् परिपालयिष्यतीति।'

महाभाष्य १। १। १

किंतु यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि शब्दों का अनुशासन किस प्रकार किया जाय? शुद्ध शब्दों का उपदेश किया जाय या अपशब्दों का या दोनों प्रकार के शब्दों का? इस पर विचार करके महर्षि इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काम तो किसी भी एक प्रकार से चल जायगा, फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध शब्दों का ही उपदेश करना ठीक होगा, क्योंकि यह कार्य लघुतर है। अपशब्दों का उपदेश तो भारी कार्य है; क्योंकि एक एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश होते हैं। एक गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि अनेक अपभ्रंश पाए जाते हैं—

शब्दानुशासनमिदानीं कर्तव्यम्। तत्कथं कर्तव्यम्? किं शब्दोपदेशः कर्तव्यः, आहोस्विद् अपशब्दोपदेशः, आहोस्विद् उभयोपदेश इति। अन्यतरोपदेशेन कृतं स्यात्।......किं पुनरत्र ज्यायः? लघुत्वाच्छब्दोपदेशः। गरीयानपशब्दोपदेशः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा, गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः।

महाभाष्य, १। १। १

महर्षि पतंजलि ने अपने समय की भाषा संबंधी सच्ची परिस्थिति का यहाँ दिग्दर्शन कराया है। भाषा का तो यह स्वभाव ही है कि वह कभी सदा और सर्वत्र एकरूप नहीं रहती। समय के साथ उसकी भी गति होती है। भिन्न भिन्न प्रदेशों में वह भिन्न भिन्न रूप धारण कर लेती है। शिष्ट और अशिष्ट के मुखों से वह भिन्न प्रकार निकलती है। विद्वानों की भाषा संबंधी गवेषणाओं से हमें यह भले प्रकार विदित हो गया है कि समस्त एशिया और यूरोप के विशाल भूखंडों में आज जो सैकड़ों भाषाएँ और हजारों बोलियाँ प्रचलित हैं, उनमें की अधिकांश एक ही 'आर्यभाषा' से निकली हैं। वेदों की भाषा उसी आर्यभाषा से उत्पन्न हुई एक भाषा है, और आज जो अनेक भाषाएँ और बोलियाँ समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हैं वे सब इसी एक वेदभाषा से निकली हैं। वेदभाषा का ही कुछ विकास और कुछ संस्कार होकर 'संस्कृत' भाषा बन गई, जिसका बड़ा ही कुशल और परिपूर्ण अनुशासन पाणिनि मुनि ने अपने व्याकरण 'अष्टाध्यायी' द्वारा किया। इसी व्याकरण की व्याख्या करते समय महर्षि पतंजलि ने उपर्युक्त चिंता प्रकट की है कि किस प्रकार शब्दों के शुद्ध और अशुद्ध रूपों का विवेचन किया जाय।

सूत्रकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन और भाष्यकार पतंजलि, इन तीनों आचार्यों ने संस्कृत भाषा को शुद्ध और सदा विकार-रहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया है, किंतु वे भी असंभव को संभव नहीं बना सके। भाषाओं में जो ध्वनि-विकार हुआ करते हैं, वे प्राकृतिक हैं, उन्हें कोई सदा के लिये नहीं रोक सका। यहाँ हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि जैसे ध्वनि-विकारों के कारण पतंजलि ने अनेक शब्दों को अपशब्द कहकर उनसे बचने का अनुशासन किया है, वैसे विकार-युक्त शब्द स्वयं संस्कृत के भीतर प्रचुर मात्रा में वर्तमान हैं। कितने ही शब्दों का यह दोष शताब्दियों पश्चात् पहचाना गया। किंतु तब तक उन शब्दों का शिष्ट समाज में इतना दौरदौरा और प्रवेश हो चुका था कि वे फिर पंक्तिच्युत नहीं किए जा सके और चुपचाप स्वीकार कर लिए गए। पर न जाने कितने शब्दों की जाति तो अब तक नहीं पहचानी गई और वे शुद्धवर्णीय बने हुए संस्कृत पंक्ति में अटल रूप से विराजमान हैं। उनकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता।

शब्दों के स्वरूप में विकार मुख्यतः चार प्रकार से होता है। किसी शब्द में कभी उच्चारण की सुविधा के लिये एकाध वर्ण अधिक आ जुड़ता है, जैसे स्कूल को कोई इस्कूल या सकूल भी कह देता है या प्रजा को परजा। कहीं किसी एक शब्द के दो वर्ण अपना स्थान परस्पर अदल बदल लेते हैं, जैसे अचलपुर से अलचपुर (एलिचपुर) बना हुआ माना जाता है। महाराष्ट्र से महरट्ठ और फिर उसका मरहट्ठ (मरहटा) बना पाया जाता है। कभी एक वर्ण की जगह कोई दूसरा ही वर्ण आ बैठता है, जैसे बालक राजा को लाजा, शिक्षा को सिच्छा और दीक्षा को दिच्छा कह देता है। कहीं एकाध वर्ण उड़ ही जाता है, जैसे जगत् का जग ही रह गया और प्राण का पाण। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में जो अंतर पड़ गया है वह इन्हीं विकारों के कारण हुआ है। विचार करने पर एक ओर हस्ती, महिषी, गौ, वधू, राज्ञी और दूसरी ओर हाथी, म्हैस या भैंस, गाय, बहू, रानी, इन शब्दों के बीच इसी वर्ण-विकार की लीला का दृश्य दिखाई देगा। ये विकार सर्वत्र होते हैं और उन्हें बुरा-भला कहते कहते स्वीकार भी कर लेना पड़ता है। संस्कृत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयाकरणों ने भी ऐसे रूप संस्कृत भाषा में प्रचलित पाए हैं जैसा कि एक कारिका में बतलाया गया है—

भवेद् वर्णागमाद् हंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम्॥

अर्थात् हस् धातु से नियमानुसार हसः रूप बनना चाहिए था, किंतु ह के साथ एक अनुस्वार न जाने कहाँ से आकर जुड़ गया और 'हंस' चमक उठा। हिंस् धातु से 'हिंसः' बनना था, पर ह और स ने उलट-पुलट होकर 'सिंह' खड़ा कर दिया। गूढ और आत्मा की संधि गूढात्मा होती है, पर लोग गूढोत्मा कहने लग गए। पृषत् चितकबरा और उदर के योग से पृषदुदर रूप बनता था, किंतु बेचारे पृषद् के द् को न जाने कौन उड़ा ले गया और पृषोदर रूप रह गया। वैयाकरणों का वश चलता तो ऐसे हीनांग, अधिकांग और विकृतांग अशुभ शब्दों को निकाल बाहर करते या अपनी चिकित्सा द्वारा उनके अंगोपांग सुव्यवस्थित करते। किंतु वे कुछ कर न सके। पाणिनि जी ने यह किया कि ऐसे शब्दों की एक जाति ही अलग बना दी। जितने ऐसे शब्द उनके ध्यान में आए उन्हें गिना दिया और शेष के लिये द्वार खुला रख छोड़ा। यह सब व्यवस्था उन्होंने अपने एक सूत्र 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' द्वारा कर दी। इस जाति (गण) के भीतर जो शब्द गिनाए गए हैं वे हैं पृषोदर, पृषोत्थान, बलाहक, जीमूत, श्मशान, उलूखल, पिशाच, बृसी और मयूर। पृषोदर कैसे बना यह हम ऊपर देख ही चुके हैं। वही द की हानि पृषोत्थान में भी हुई है। बलाहक वारि+वाहक के योग से बना। यह योग ऐसा सटकर हुआ है कि पहचान में नहीं आता। आदि व का तो ब हो गया, र कठिनता छोड़कर पानी सा ल रह गया और उसके आगे का व् उड़ गया। वर्ण-विकार और वर्णनाश की दोनों क्रियाएँ भरपूर रूप से इस शब्द के निर्माण में दिखाई देती हैं। काया का ऐसा कल्प हुआ है कि उस पर से उसके मूल का पता लगा लेना कठिन है। जीमूतादि शब्दों की तो असली बुनियाद का कुछ पता ही नहीं लगता। जो व्युत्पत्ति बतलाई जाती है वह कोरी वैयाकरणी खींचातानी है। जैसे, जीमूत को 'जि' धातु में 'त' प्रत्यय और 'मुद्' आगम लगाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वर को दीर्घ करके बनाया* तो इससे उसके अर्थ पर क्या प्रकाश पड़ा ? जीमूत किसे जीतता है या कौन उसे जीतता है; वह नभ को जीतता है या पवन उसे जीतता है ? ऐसी व्युत्पत्ति से वैयाकरण को संतोष भले ही हो जाय, पर सबके गले यह बात उतरती नहीं है, उलटे भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। इससे तो यही मानना अच्छा था कि इन शब्दों की व्युत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं है। या तो वे अव्युत्पन्न रूढ़ शब्द ही हैं, देशी हैं, या किसी दूसरे देश से किसी दूसरी भाषा से लिए गए हैं। ऐसा मानने से भला आगे खोज का द्वार तो खुला रहता। संस्कृत व्याकरण का उणादि प्रकरण† ऐसी ही तोड़ा-मरोड़ी से भरा हुआ है; क्योंकि कुछ आचार्यों का मत था कि सब संज्ञाएँ संस्कृत की धातुओं से ही बनाना चाहिए। वे इसके लिये अपने उत्तराधिकारियों को एक मंत्र भी बतला गए हैं जिसकी सहायता से वे किसी भी शब्द की व्युत्पत्ति तैयार करके बता दें। वह मंत्र है—

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

अर्थात् जो संज्ञा सामने आवे उसमें कौन सी धातु हो सकती है उसकी खोज करो, कौन सा प्रत्यय लगा होगा यह सोच लो और फिर

---

* यह व्युत्पत्ति उणादिसूत्रकार शाकटायन की है। उणादिवृत्तिकार नारायण ने 'जयति-उष्णम्' अर्थात् जो गर्मी को जीत लेता है वह जीमूत है ऐसा लिखा है। इसके अतिरिक्त एक व्युत्पत्ति और है जो रामाश्रय ने अपनी अमरकोष की टीका में दी है—'मूतं बद्धं जीवनं जलं येन सः' अर्थात् जिसने जल बाँध रखा है। मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ ने तीसरी व्युत्पत्ति यह दी है—'जीवनस्य मूतः जीमूतः' अर्थात् पानी की मुटरी। यह व्युत्पत्ति सबसे अधिक ग्राह्य है। 'मूत' से ही मोट, मुटरी आदि निष्पन्न हैं।—सं०।

† अभी तक किसी भाषावैज्ञानिक ने इस प्रकरण का शास्त्रीय अध्ययन नहीं किया है। इसमें बहुत सी ऐसी बातें हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। —सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो ह्रस्वत्व दीर्घत्व आदि विकार हुआ हो उसके विचार से अनुबंध लगा लो—यह उणादि का शास्त्र है। यह विश्लेषण का नियम है तो चोखा, पर इसका दुरुपयोग संस्कृत में बहुत हुआ है। इसका प्रयोग करने में जिस सावधानी की आवश्यकता थी वह अधिकांशत: नहीं रखी गई। अर्थ का सामंजस्य, रूप का इतिहास, समरूपों का अन्य भाषाओं में प्रयोग, ध्वनिविकारों के नियम आदि का विचार किए बिना ही जो धातु, प्रत्यय और अनुबंध की प्रक्रिया बताई गई है वह बहुधा संतोषजनक नहीं होती। उदाहरणार्थ 'नापित' शब्द को ही ले लीजिए। इसकी व्युत्पत्ति उणादि प्रकरण में नञ् पूर्वक आप् धातु में तन् प्रत्यय और इट् आगम लगाकर बताई है—'नञ्याप इट् च'। वैयाकरण को संतोष हो गया। पर इस व्युत्पत्ति से शब्द के अर्थ पर क्या प्रकाश पड़ा और पढ़नेवाले ने इससे नाई के संबंध में क्या सीखा? शायद यह कि नापित वह है जिसे कुछ मिलता नहीं। पर नाई तो ऐसा व्यक्ति नहीं है और न शायद कभी रहा जो बिना कुछ पाए बेगार में ही आपकी परिचर्या कर जाता हो। इसके विपरीत यदि हम उसके वर्तमान रूप से ही सीमाबद्ध न होकर उसके इतिहास पर विचार करें तो उस शब्द की असली व्युत्पत्ति का पता चल जाता है। नापित को हिंदी में नाई या नाऊ, मराठी में न्हावी और बँगला में एहाऊ कहते हैं। प्राकृत में उसके लिये 'णाविय' और 'एहाविअ' शब्द हैं और पाली में 'नहापित'। ये शब्द सामने आते ही पता चल जाता है कि उसका शुद्ध संस्कृत रूप 'स्नापित' होना चाहिए। जरा और आँख फैलाने से एक प्रथा भी सामने आ जाती है जो उसके इस रूप को सार्थक सिद्ध कर देती है। राजपूताने में अब भी कहीं कहीं यह रिवाज है कि नाई को पहले स्नान कराकर फिर उससे हजामत बनवाते हैं। नाई का एक कार्य स्नान कराना भी है। तदनुसार यह रूप 'स्नापयितृ' (स्नान करानेवाला) से भी बन जाना संभव है। इस प्रकार एक ही परिवार की भिन्न भिन्न भाषाओं में उसके रूप तथा तत्संबंधी प्रथा पर विचार करने से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि 'नापित' की असली व्युत्पत्ति क्या है। वह यथार्थ में प्राकृत का रूपांतर है और संस्कृत व्याकरण में दी हुई उसकी व्युत्पत्ति बे सिर-पैर की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110712 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

किसी रिवाज से शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश पड़ने के प्रसंग में एक और शब्द का इतिहास स्मरण आता है। वेदों में एक शब्द है 'दधिक्र', जिसका अर्थ होता है घोड़ा, घोड़ी (?)। इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में संस्कृत के प्राचीनतम वैयाकरण यास्क मुनि भी बड़े हैरान हुए हैं। उन्होंने कई कल्पनाएँ इस शब्द की व्युत्पत्ति की लगाई हैं, जैसे दधत् दधत् क्रामति इति दधिक्र अर्थात् जो अपने ऊपर सवार को धारण करके दौड़े वह दधिक्र। किंतु प्रस्तुत शब्द और व्याकरण के नियमों पर इस व्युत्पत्ति से कितना अत्याचार होता है यह व्याकरण के जानने वाले सहज ही समझ सकते हैं। इस शब्द का असली मर्म अभी खुला है। मध्य एशिया के कितने ही भागों में अब भी लोग घोड़ी के दूध का दही बनाकर खाते हैं। प्राचीन काल में यह वहाँ की जनता का मुख्य भोजन रहा है, जैसे भारत में गाय का दूध। दही देनेवाले घोड़ी घोड़ों का 'दधिक्र' कहलाना स्वाभाविक है। इससे यह भी मत दृढ़ होता है कि वैदिक काल के आर्य मध्य एशिया से ही इस तरफ आए होंगे और वे भी घोड़ी के दूध दही का उपयोग करते थे। भारत में आने पर गाय के दूध का उपयोग बढ़ जाने से घोड़ी के दूध का उपयोग बिलकुल छूट गया और उसका नामोनिशान तक देश में न रहा। केवल यह एक शब्द सच्ची कहानी कहने के लिये बच रहा।*

संस्कृत में ऐसे बहुत से शब्द हैं जो यथार्थतः संस्कृत व्याकरण के नापतौल से घट-बढ़ हैं। वे असल में प्राकृत रूप हैं और प्राकृत की

---

* वैदिक शब्द 'दधिक्र' नहीं 'दधिक्रा' अथवा 'दधिक्रावन्' है। यह दधि + क्रम् + विच् या दधि + क्रम् + क्वनिप् की प्रक्रिया से निष्पन्न है। इसका उपपद 'दधि' शब्द क्रियाशब्द है, संज्ञाशब्द नहीं। उसका अर्थ है 'धारण करनेवाला', उसका अर्थ 'दही' नहीं है। यह दधि शब्द 'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च।' ३।२।१७१ के द्वारा व्याकृत है। इसी लिये महामुनि यास्क ने उसकी व्युत्पत्ति 'दधत् क्रामति' लिखी है, वह धारण करता हुआ दौड़ता है।

—सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्तियों को ध्यान में रखने से उनका स्वरूप सहज ही समझ में आ जाता है। किंतु उनके इस मर्म को न समझ सकने के कारण वैयाकरणों को उनके पीछे बड़ी मिहनत उठानी पड़ी और विचित्र प्रकार से उनके रूप सिद्ध करने पड़े। उदाहरणार्थ मनोरथ को मन का रथ (मनस्+रथ) से बनाने के प्रयत्न में अनेक नियमों की खटापटी करनी पड़ी। इच्छा को मन का रथ कहने में कल्पना की भारी उड़ान भी लगानी पड़ी है। किंतु अर्थ की समंजसता और व्युत्पत्ति की सुलभता की दृष्टि से इस शब्द को 'मनोऽर्थ' (मन का अर्थ अभिप्राय या अभिलाष) का कुछ विकृत रूप मानना अधिक उपयुक्त जँचता है। उच्चारण की सुलभता के लिये अर्थ का अरथ हो गया है, जो वर्णागम का एक उदाहरण है और प्राकृत के नियम के अनुसार है। ऐसे और भी अनेक शब्द संस्कृत में प्रचलित हैं। पृथ्वी और पृथिवी दोनों संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं, किंतु वे दो भिन्न शब्द नहीं हैं। पृथ्वी का ही स्वरभक्ति-सहित रूप पृथिवी है। इसी प्रकार पशु और परशु, सर्षप और सरिषप इत्यादि एक ही शब्द के दो दो रूप हो गए हैं। श्लथ से ही शिथिल बना है, पर यहाँ स्वरभक्ति के अतिरिक्त थ और ल का विपर्यय भी हुआ है। सोने के अर्थ में सुवर्ण और स्वर्ण दोनों पाए जाते हैं। यहाँ सुवर्ण से वर्णनाश द्वारा स्वर्ण तैयार हुआ है। पश्यति में दृश् धातु का आदेश कहा जाता है, पर यथार्थतः यह स्पश्यति का वर्णनाश के द्वारा बचा हुआ रूप है। वैदिक साहित्य में 'स्पश्' धातु देखने के अर्थ में आता है उसी से गुप्तचर के लिये 'स्पश' शब्द बना है। अँगरेजी का spy भी इसी धातु से निकला हुआ प्रतीत होता है। आदि स् के लोप से प्राकृत में अनेक शब्द बनते हैं जैसे स्थिति से थिति, स्पर्श से पास या फास, स्खलन से खलण आदि। ये शब्द संस्कृत में शुद्ध नहीं माने जा सकते, किंतु पश्यति से किसी को कोई विरोध नहीं है। कामदेव के अर्थ में स्मर या स्मार* का ही प्राकृत में मार रूप हो गया है और यह संस्कृत में भी स्वीकार कर लिया गया है।

---

* कामदेव के अर्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता। 'स्मार' का प्रयोग स्मर संबंधी है। इस अर्थ में यह शब्द नैषध में प्रयुक्त है। —सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चवर्ग :—सं० च हिं० में च, छ, ज हो जाता है। च—> च :—कूर्चिका से कूची, चक्रवाक से चकवा, चर्वण से चबाना, चूचुक से चूची; च—> छ: —तिर्यञ्च् से तिरछा ; च—> ज :—कुंचिका से कुंजी।

सं० छ हिं० में अपरिवर्तित रहता है, जैसे छत्र से छाता अथवा छतरी, छाया से छाँह इत्यादि।

सं० ज हिं० में ज, य, व में परिवर्तित हो जाता है। ज—> ज :—जन्म से जनम (बो०), जम्बु से जामुन; ज—> व अथवा य :—राजा से राव अथवा राय।

टवर्ग :—सं० ट हिं० में ट, ड (ड़) में परिवर्तित हो जाता है। ट—> ट :—रोटिका से रोटी ; ट—> ड (ड़—ड का ड़ की भाँति उच्चारण बहुत प्राचीन काल में ही होने लगा था) :—कर्पट से कपड़ा, कटाह से कड़ाही, कीट से कीड़ा, वट से बड़, घट से घड़ा, खटिका से खड़िया, कटु से कड़वा, कर्कटी से ककड़ी।

सं० ठ हिं० में ठ ढ़ हो जाता है। ठ—> ठ :—शुण्ठि से सोंठ, कण्ठ से कंठ, ठ—> ढ :—पठन-पाठन से पढ़ना-पढ़ाना, मठिका से मढ़ी, पीठ से पीढ़ा।

सं० ड हिं० ड, ड़ र में परिवर्तित हो जाता है। ड—> ड :—डाकिनी से डाइन; ड—> ड़ :—सुण्ड से सूँड़, मुण्ड से मूँड़, पण्डित से पाँड़े; ड <— र :—पीडा से पीर।

सं० ण हिं० न में परिवर्तित हो जाता है, जैसे हरण से हरना, ऊर्ण से ऊन, निर्गुण से निर्गुन इत्यादि।

तवर्ग :—सं० त हिं० में त ट ड ल र व ई हो जाता है। त—> त :—दंत से दाँत, तंतु से ताँत; त—> ट :—कर्तन से काटना, वर्त्तिका से बटेर, मृत्तिका से मिट्टी, कैवर्त्त से केवट; त—> ड :—गर्त से गड्ढ ; त—> ल :—अतसी से अलसी; त—> र :—सप्तति से सत्तर ; त—> व :—घात से घाव ; त—> ई :—भ्राता से भाई, जामाता से जमाई, माता से माई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० थ हिं० थ, ह में परिवर्तित हो जाता है। थ—>थ :—साथी से साथ, कपित्थ से कैथ, कुलत्थ से कुलथी ; थ—>ह :—कथन से कहना, शपथ से सौंह।

सं० द हिं० द, ड में परिवर्तित हो जाता है। द—>द :—दान से देना, दश से दस, दक्षिण से दाहिना ; द—>ड :—दंड से डंड, दंशन से डसना, दोरक से डोरा।

सं० ध हिं० में ध, ह हो जाता है। ध—>ध :—धूम से धुआँ, धान्य से धान ; ध—>ह :—दधि से दही, साधु से साहु, वधू से बहू, गोधूम से गेहूँ।

सं० न हिं० में अपरिवर्तित रहता है, जैसे नासिका से नाक, निगरण से निगलना, गान से गाना। कभी कभी अल्पज्ञता के कारण न का ण हो जाता है, जैसे फाल्गुन से फाल्गुण*।

पवर्ग :—सं० प हिं० में प, व, ओ, औ, फ, य, आ में परिवर्तित हो जाता है। प—>प :—पितृ से पिता, पिप्पल से पीपल; प—>व :—ताप से ताव, सपा से सवा, कपाट से कवाड़, क्षेपन से खेवना; प—>ओ अथवा औ :—(चूँकि प का प्रायः व हो जाता है और अ व के ओ औ में परिवर्तित हो जाने का नियम है, अतः कभी कभी प से सीधा ओ, औ भी हो जाता है) जैसे वपन से बोना, स्वपन से सोना, कपर्द से कौड़ी, सपत्नी

---

* प्राचीन कविता में ण के स्थान में न प्रयुक्त होता था, परंतु आजकल गद्य तथा पद्य दोनों में शुद्ध तत्सम शब्द प्रयोग करने की प्रथा है। शुद्ध तत्सम की धुन में कभी कभी लोग न की जगह भी ण प्रयोग कर देते हैं। न तथा ण संबंधी एक निश्चित नियम है। यदि सस्वर 'न' ध्वनि के पूर्व ऋ, र, अथवा ष हो या इन दोनों के मध्य कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य अथवा ह हो, तो 'ण' आयगा, अन्यथा 'न'। 'फाल्गुन' में न के पूर्व ऋ, र, अथवा ष नहीं है, अतः फाल्गुण† अशुद्ध है।

† मिलाइए—'फाल्गुने गगने फेने णत्वमिच्छन्ति बर्बराः'।—सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सौत ; प—> फ :—प्लवंग से फलांग, पाश से फाँस, पोलिका से फुलका ; प—> य :—पिपासा से प्यास, दीप से दिया; प—> आ :—कूप से कुआँ।

सं० फ अपरिवर्तित रहता है, जैसे फलाहार से फलारी, फुल्ल से फूल।

सं० ब हिं० में ब, भ हो जाता है। ब > ब :—दुर्बल से दुबला, बर्कर से बकरा; ब—> भ :—बुभुक्षा से भूख, बाष्प से भाप।

सं० भ हिं० में भ, ह हो जाता है। भ—> भ :—भर्त्ता से भरता, भिक्षा से भीख; भ—> ह :—भू से हो (ना), शोभन से सोहना, भुण्ड से हुंडी, आभीर से अहीर, गभीर से गहिरा, सौभाग्य से सुहाग।

सं० म हिं० में म, व, ओ, औ, ब, भ हो जाता है। म—> म :—मूलिका से मूली, मयूर से मोर; म—> व :—ग्राम से गाँव, आमलक से आँवला, श्यामल से साँवला; म—> ओ, औ :—(क्योंकि म प्राय: व में परिवर्तित हो जाता है और अव के ओ औ में परिवर्तित हो जाने का नियम है, अतः कभी म से भी ओ औ हो जाता है) जैसे भ्रमर से (भँवर और भँवर से) भौंर, चमर से चौरी, गमन से गौना; म—> भ :—महिष से भैंस।

अंतस्थ :—सं० य हिं० में ज, ल में परिवर्तित हो जाता है। (तत्सम रूपों में य अपरिवर्तित रहता है जैसे युद्ध, यज्ञ, आर्य इत्यादि में।) य—> ज :—यम से जम, सूर्य से सूरज, यवनिका से जवनिका, यमुना से जमुना; य—> ल :—यष्टिका से लाठी, पर्य्याण से पलान, पर्यंक से पलँग।

सं० र हिं० में र, ल, ड़ हो जाता है। र—> र :—रथ से रथ, राज्ञी से रानी; र—> ल :—हरिद्री से हल्दी ; र—> ड़ :—मसूर से मसूड़।

सं० ल हिं० में ल, र हो जाता है। ल—> ल :—कज्जल से काजल, कोकिल से कोयल, लाजा से लावा, शलाका से सलाख; ल—> र :—महिला से महिरारु, प्रक्षालन से पखारना, हल से हर, स्थाली से थरिया।

सं० व हिं० में ब, भ, ओ, औ हो जाता है। व—> ब :—चर्वण से चबाना, व्रात से बरात, पूर्व से पूरब, विहार से बिहार ; व—> भ :—वेष से भेष, विभूति से भभूत; व—> ओ औ :—इसके उदाहरण अव के साथ ऊपर दिए जा चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊष्म :—सं० श हिं० में स, ह, छ हो जाता है। श—>स :—शत से सौ, शंख से संख, शून्य से सून अथवा सूना, वश से बस, वंश से बाँस, शाटिका से साड़ी, क्रोश से कोस; श—>ह :—पशु से पोहे, द्वादश से बारह, षोडश से सोलह, त्रयोदश से तेरह; श—>छ :—शल्कल से छिकला, शकट से छकड़ा।

सं० ष हिं० में श, स, ह, ख हो जाता है। ष—>श :—कृष्ण से किशन, विष्णु से विशन ; ष—>स :—शीर्ष से सीस, सर्षप से सरसों, आषाढ़ से असाढ़, वर्ष से बरस; ष—>ह :—पुष्प से पुहुप; ष—>ख :—भाषा से भाखा (बो०), मेष से मेख, वर्षा से बरखा (बो०), पुरुष से पुरखा; प्राचीन हिंदी में सर्वत्र ष का प्रयोग होता था, परंतु आजकल तत्सम शब्दों के अतिरिक्त और सब जगह प्राय: ख का प्रयोग होता है।

सं० स हिं० में स, ह, ष हो जाता है। स—>स :—सत्य से सत; स—>ह :—त्रिसप्तति से तिहत्तर; स—>ष :—वि + सम = विषम, अनु + संग = अनुषंग, नि + सिद्ध = निषिद्ध ।

सं० ह हिं० में अपरिवर्तित रहता है, जैसे हीरक से हीरा, हस्तिन् से हाथी, हस्त से हाथ।

सं० विसर्ग (:) हिं० में स हो जाता है, जैसे निःसंदेह से निस्संदेह, निःसंकोच से निस्संकोच, इत्यादि।

ऊपर के उदाहरणों को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि सं० क च ट त प य श हिंदी में क्रमशः ग ज ड द ब ल स में परिवर्तित हो जाते हैं अर्थात् संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, अंतस्थ तथा ऊष्म वर्गों का प्रथम वर्ण प्राय: अपने वर्ग के तृतीय वर्ण में परिवर्तित हो जाता है।

(आ) संयुक्त व्यंजन संबंधी :—संयुक्त व्यंजन तो अनेक हैं, मुख्य मुख्य ही यहाँ दिए जाते हैं।

सं० क्ष हिं० में ख, छ, झ हो जाता है। क्ष<—ख :—कुक्षि से कोख, द्राक्षा से दाख, तीक्ष्ण से तीखा, पक्ष से पंख अथवा पाख, क्षेप से खेप, अक्षोट से अखरोट, प्रक्षर से पाखर अथवा पाखड़, क्षीर से खीर, क्षार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खार, लक्ष से लाख ; क्ष—>छ :—क्षुर से छुरी, ऋक्ष से रीछ, क्षण से छन ; क्ष—>झ :—क्षाम से झामा।

सं० त्र हिं० में त, ट, ड़ हो जाता है। त्र—>त :—त्रीणि से तीन, रात्रि से रात, गात्र से गात, अंत्र से आँत, सूत्र से सूत, मूत्र से मूत ; त्र—>ट :—त्रुटि से टूटना; त्र—>ड़ :—गंत्री से गाड़ी।

सं० ज्ञ हिं० में ग, ज, न में परिवर्तित हो जाता है। ज्ञ—>ग :—ज्ञान से ग्यान, आज्ञा से आग्या ; ज्ञ—>ज :—यज्ञोपवीत से जनेऊ, ज्ञा से जा (नना) ; ज्ञ—>न :—राज्ञी से रानी।

सं० त्य हिं० में च हो जाता है, जैसे सत्य से साँच, नृत्य से नाँच, मृत्यु से मीच।

सं० द्ध हिं० में ढ़ हो जाता है, जैसे वृद्ध से बूढ़ा, वर्द्धकि से बढ़ई, इत्यादि।

सं० द्य हिं० में ज हो जाता है, जैसे अद्य से आज, वाद्य से बाजा, द्यूत से जुआ, विद्युत् से बिजली, अन्नाद्य से अनाज, इत्यादि।

सं० ध्य हिं० में झ, ढ़ हो जाता है। ध्य—>झ :—मध्य से मझोला, संध्या से साँझ, बंध्या से बाँझ, उपाध्याय से ओझा, युध्य (ति) से जूझ (ना), बुध्य (ति) से बूझ (ना) ; ध्य—>ढ़ :—क्रुध्य (ति) से कुढ़ (ना)।

सं० व्य हिं० में ब हो जाता है; जैसे व्यतीत से बीता, व्याघ्र से बाघ, व्यापारी से बैपारी, इत्यादि।

सं० श्च हिं० में च्छ, छ हो जाता है। श्च—>च्छ अथवा छ :—वृश्चिक से बिच्छू अथवा बीछू, पश्चिम से पच्छिम अथवा पछाँ।

सं० श्र श्व हिं० में स हो जाते हैं। श्र—> स :—श्रावण से सावन, आश्रय से आसरा ; श्व—>स :—श्वसुर से ससुर, श्वश्रू से सास।

सं० ष्क हिं० में ख हो जाता है, जैसे शुष्क से सूखा, पुष्कर से पोखर।

सं० ष्ट हिं० में ट, ठ हो जाता है। ष्ट—>ट :—उष्ट्र से ऊँट, इष्टका से ईंट ; ष्ट—>ठ :—दृष्टि से दीठ, मिष्टान्न से मिठाई, अष्ट से आठ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० ष्ठ हिं० में ट हो जाता है, जैसे कोष्ठ से कोट, षष्ठी से छटी, इत्यादि।

सं० स्त हिं० में थ हो जाता है, जैसे मस्तक से माथा, स्तंब से थंब, पुस्तक से पोथी स्तन से थन इत्यादि।

सं० स्थ हिं० में ठ हो जाता है, जैसे स्थग से ठग, स्थान से ठाँव, स्था से ठड़ा (बो०)

सं० स्प हिं० में फ हो जाता है, जैसे स्फुरण से फुरना, स्पन्दन से फाँदना इत्यादि।

सं० स्व हिं० में स हो जाता है, जैसे स्वामी से साईं, स्वांग से सांग, स्वर से सुर, इत्यादि।

सं० ह्व हिं० में भ हो जाता है, जैसे जिह्वा से जीभ, गोजिह्वा से गोभी इत्यादि।

(२) व्यंजन-लोप :--(अ) आदिव्यंजन-लोप :—संस्कृत शब्दों के आदि ज श स का प्रायः हिंदी में लोप हो जाता है, जैसे ज :—ज्वलन से बलना; श :--श्मशान से मसान, श्मश्रु से मूँछ; स:—स्थाली से थाली, स्थान से थान अथवा थाना, स्नेह से नेह, स्फूर्ति से फुर्ती।

(आ) मध्यव्यंजन-लोप :—संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले क ग च ज त द न प फ य र ल व ष विसर्ग (:) हिंदी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं, जैसे क :-चिक्कण से चिकना, कुक्कुर से कूकर, कोकिल से कोइल; ग :-दुग्ध से दूध, गुग्गुलु से गूगल; च :—सूची से सुई; ज :—लज्जा से लाज, कज्जल से काजल; त :—उत्पत्ति से उपज, कपित्थम् से कैथ; द :—उद्गार से उगाल, उद्धार से उधार, मुद्ग से मूँग, अर्द्ध से आधा; न :—ननांदा से ननद; प :—पिप्पल से पीपल; फ :—फुफ्फुस से फेफड़ा; य :—शय्या से सेज; र :—प्रणाली से पनाली, कार्तिक से कातिक, कर्पूर से कपूर; ल :—फाल्गुन से फागुन; वल्गा से बाग; ष :—निष्ठुर से निठुर, अंगुष्ठ से अंगूठा; विसर्ग, (:) :—दुःख से दुख।

(इ) अंत्यव्यंजन-लोप :—संस्कृत शब्दों के अंत में आनेवाले क य र विसर्ग आदि हिंदी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं, जैसे क :-हीरक से हीरा; य :—मूल्य से मोल, नित्य से नित, श्वशुराल से सुसराल; र :—आम्र से आम, व्याघ्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त शब्द क्रमशः अमरीका, बटर, आफिस, चाक, वाक, ला, स्टाल, लार्ड, कांग्रेस, वर्ड, थर्ड, लर्न, बर्थ, कालिज, बेंच, मैजिक, गैस आदि लिखे तथा बोले जाते हैं।

(आ) कभी कभी अँगरेजी शब्दों के हिंदी में आने में इ का उ, जैसे biscuit से बिस्कुट, gentleman से जंटुल्मैन इत्यादि तथा ए का अ ई जैसे engine से अंजन, appeal से अपील, April से अप्रेल, May से मई, Bombay से बम्बई इत्यादि हो जाते हैं।

(इ) संयुक्त स्वर :—ai (एइ)—> ए :—fail (फेइल) से फेल, jail से जेल, train से ट्रेन, इत्यादि। i (आइ अथवा ई)—> ऐ :— line (लाइन) से लैन, limejuice से लैमजूस, pice से पैसा, license से लैसंस, fire से फैर, type से टैप, quinine (कुनीन) से कुनैन, इत्यादि।

ia (इअ)—> य अथवा या :—material (मैटीरिअल) से मैटीरियल, India से इंडिया, malaria से मलेरिया, Hysteria से हिस्टिरिया, इत्यादि।

oa (ओउ)—> ओ :—coach (कोउच) से कोच, boat से बोट, coat से कोट, इत्यादि। ou अथवा ow (अउ)—> औ :— pound (पउंड) से पौंड, compounder से कंपौंडर, town-hall से टौनहाल, इत्यादि।

(२) स्वर-लोप :—अँगरेजी शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः स्वर-लोप हो जाता है, जैसे Italy से इटली, America से अमरीका, deputy से डिप्टी, cigarette से सिगरट, hotel से होटल, report से रपट, platoon से पल्टन, lamp से लम्प, bundle से बंडल, इत्यादि।

(३) स्वरागम :—अँगरेजी शब्दों के हिंदी में आने पर उनमें अ इ आदि का आगम हो जाता है, जैसे अ :—form से फारम, serge से सरज; इ :—glass से गिलास, blotting paper से ब्लाइटिंग-पेपर, School से इस्कूल (उच्च०), इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **मात्रा-भेद** :—कभी कभी अँगरेजी शब्दों के हिंदी रूपों में मात्रा-भेद हो जाता है, जैसे ह्रस्व से दीर्घ :—tin से टीन, mill से मील; दीर्घ से ह्रस्व :—foot से फुट ।

२—व्यंजन-विकार :—(१) **विशेष विकार** :-c (क)—> ग :—cork से काग, decree से डिगरी, recruit से रंगरूट; ch (च)—> त :—Portugese से पुर्तगीज, christian से क्रिस्तान ।

अं० d (ड) हिं० में द, ट हो जाता है। d—> द :—godown से गोदाम, December से दिसम्बर, orderly से अर्दली, dozen से दर्जन ; d—> ट :—forward से फरवट (बो०), lemonade से लमलेट, lord से लाट ; अं० f (फ़) हिं० में फ प हो जाता है। f—> फ :—fee से फीस, firm से फर्म, football से फुटबाल; f—> प :—half-side से हाप साइड, डच troop से तुरुप ; n (न)—> ल :—number से लंबर, note से लोट (बो०) ; r (र)—> ड़ :—rubber से रबड़ ; s (ज़)—> ज :—music से म्यूजिक, museum से म्यूजियम ; sh (श)—> स :—shilling से सिलिंग, shirting से सर्टिंग, shutle से सटिल अथवा सिटिल ; t (ट)—> त :—August से अगस्त, hospital से अस्पताल, pistol से पिस्तौल, bottle से बोतल, tobacco से तंबाकू, captain से कप्तान; v अथवा w (व)—> ब :—vote से बोट, wagon से बैगन, waistcoat से बास्कट ।

(२) **व्यंजन-लोप** :—अँगरेजी शब्दों के हिंदी रूपों में प्राय: किसी न किसी व्यंजन का लोप हो जाता है, जैसे September से सितंबर puncture से पंचर, pantaloon से पतलून, hundred-weight से हंडर वेट, receipt से रसीद, इत्यादि ।

(३) **व्यंजनागम** :—जैसे guinea से गिन्नी, dozen से दर्जन, summon से सम्मन, इत्यादि ।

(४) **व्यंजन-विपर्यय** :— प्राय: विदेशी शब्दों में उच्चारण की सुविधा के लिये व्यंजनों में हेर-फेर हो जाता है, जैसे desk से डेक्स,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

signal से सिंगल, general से जर्नल। कभी कभी अक्षर-विपर्यय भी हो जाता है, जैसे coal-tar से तारकोल।

(५) समीकरण तथा विषमीकरण :—विदेशी शब्दों के उच्चारण में प्राय: कठिनाई पड़ती है, अत: सुविधा के लिये उनमें कभी समीकरण और कभी विषमीकरण हो जाता है। (अ) समीकरण :—flannel से फलालेन, lantern से लालटेन, lemonade से लमलेट, collector से कलट्टर, secretary से सिकत्तर, long-cloth से लंकलाट, theatre, से ठेटर, इत्यादि। (आ) विषमीकरण :—पुर्त० lello से नीलाम, number से लंबर, इत्यादि।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाराशिकोह के फारसी उपनिषद्

[लेखक—श्री शालिग्राम श्रीवास्तव]

दाराशिकोह और औरंगजेब भाई भाई थे, पर दोनों के स्वभाव और प्रकृति में आकाश पाताल का अंतर था। जहाँ औरंगजेब कट्टर मुसलमान था और अन्य धर्म की पुस्तकों और सिद्धांतों को तुच्छ समझता था, वहाँ इसके विपरीत दारा सूफी संप्रदाय का अनुयायी और सत्य का जिज्ञासु था। सत्य जहाँ जिस धर्म-पुस्तक में मिले उसको ग्रहण करने में उसे संकोच न था।

यों तो दारा से पहले कई मुसलमान संस्कृतज्ञ हुए हैं। अलबेरूनी शायद सबसे पहला मुसलमान था जिसने यहाँ आकर संस्कृत पढ़ी थी। पर उसने केवल गणित और ज्योतिष ही की कुछ पुस्तकों का अरबी में भाषांतर किया था। उसके बाद हमें फैजी का नाम मिलता है। उसने भी नैषधचरित, गीता और महाभारत का फारसी में अनुवाद किया है। पर वेदांत को, जो किसी भी धर्म का प्राण-स्वरूप है, सिवा दाराशिकोह के किसी ने हाथ नहीं लगाया। उसकी कठिनाइयों पर ध्यान दीजिए। उसके संस्कृतज्ञ होने का कहीं उल्लेख नहीं है और न उस समय यहाँ के पंडित फारसी जानते थे। फिर भी उसने बड़े परिश्रम से ५० उपनिषदों का स्वयं अनुवाद किया है।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उसकी यह पुस्तक अभी तक कहीं छपी नहीं है। कहीं-कहीं लोगों के पास इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ पड़ी हुई हैं। मुझे ऐसी दो प्रतियों के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक तो अपूर्ण है पर दूसरी पूर्ण मिली है। इसी पिछली प्रति के आधार पर यह लेख लिखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें पहले एक छोटी सी भूमिका दी हुई है, जो पढ़ने योग्य है। उससे पता चलता है कि दारा कितने स्वतंत्र और उदार विचार का पुरुष था। उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"मैं सन् १०५० हिजरी (स० १६४० ई०) में काश्मीर गया। मुझे प्रत्येक संप्रदाय के महात्माओं और ब्रह्मज्ञानियों के दर्शन करने और उनके उपदेश सुनने की बड़ी अभिलाषा थी। अंत में वहाँ के एक बड़े प्रतिष्ठित संत मुल्लाशाह से मिला और उनसे आत्म-ज्ञान संबंधी बहुत सी बातें पूछीं तथा इस विषय की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। वेदांत एक अथाह सागर है। उसके जानने की उत्कंठा प्रतिक्षण बढ़ती गई। पर बिना दैवी पुस्तकों और गुरु की सहायता के उसके गूढ़ रहस्यों का समझना असंभव था।

"कुरान में ये बातें गुप्त रूप में हैं और अब उनके जाननेवाले भी बहुत कम हैं। इसलिये यह इच्छा हुई कि सभी संप्रदाय की ईश्वरीय पुस्तकों का अवलोकन किया जाय। कदाचित् उनमें इस विषय का वर्णन विशद रूप से मिले। अतः नई-पुरानी इंजील (बाइबिल) को देखा, पर वहाँ भी निराशा हुई। तब यह विचार हुआ कि हिंदुओं में, जो एक प्राचीन जाति है, वेदांत की चर्चा अधिक है और उसका उनमें बड़ा मान है। खोज से पता लगा कि उनके यहाँ चार आसमानी-पुस्तकें ऋक्, यजुर्, साम तथा अथर्व वेद के नाम से हैं, जो उनके पूर्वजों पर उतरी थीं। उनमें जितना आध्यात्मिक अंश था उसको उपनिषदों के नाम से पृथक् कर लिया गया है और उन पर विस्तृत भाष्य लिखे गए हैं। ये उपनिषद् आत्मज्ञान के भांडार हैं, पर उनके ज्ञाता हिंदुओं में भी कम हैं।

"मैं यह जानने के लिये बहुत उत्सुक हुआ कि इनको मुसलमानों से जो इतना गुप्त रखा जाता है, उसमें क्या भेद है। अतः सन् १०६७ हिजरी (१६५६ ई०) में काशी के प्रसिद्ध पंडितों और संन्यासियों को एकत्र करके उन (उपनिषदों) का यथातथ्य फारसी भाषा में अनुवाद किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जो मैं चाहता था, जिनकी मुझे खोज थी और नहीं मिलती थीं, वे निस्संदेह ये ही दैवी पुस्तकें हैं, जो सत्य की स्रोत और ब्रह्मज्ञान अथवा वेदांत की सागर हैं[1]। कुरान में वस्तुतः इसी गुप्त पुस्तक की ओर संकेत है[2]। अतः मैंने इस अनुवाद का नाम 'सिर्रे-अकबर' (महान् रहस्य) रखा है।

"इस भाषांतर करने से मेरा तात्पर्य यह है कि मेरी संतान, मेरे मित्रों तथा अन्य सत्य के जिज्ञासुओं में से जो भाग्यवान् इसको ईश्वरीय वाणी का अनुवाद जानकर निष्पक्ष भाव से पढ़ेगा और समझेगा, निस्संदेह उसकी मुक्ति हो जायगी।"

इस भूमिका के पश्चात् दारा ने १०० अध्यात्म-संबंधी पारिभाषिक शब्दों की एक सूची अर्थ-सहित दी है, जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं।

ओम् (الله و پر تو هم نام اوست یعنی قسم کننده سرها), ब्रह्म (آفریدگار), सच्चिदानंद (هستي و علم و سرور), ब्रह्मलोक (عالم ذات), माया (ارادت ازلی), यम (ضبط حواس بیروني), नियम (ضبط حواس اندرونی), आसन (طریق نشیستن وقت مشغولی), प्राणायाम (حبس نفس), प्रतिहार (دل را بازداشتن از خطره), ध्यान (تصور), धारणा (دانستن بیک چیز خاص), समाधि (استغراق) इत्यादि।

इसके आगे ५० उपनिषदों का अनुवाद किया गया है, जिनकी नामावली उसी क्रम से इस प्रकार है :—

(१) महोपनिषद्, (२) योग-शिखा, (३) ब्रह्मविद्या, (४) तेजोबिंदु, (५) ध्यानबिंदु, (६) अमृतबिंदु, (७) गर्भ, (८) तैत्रेय, (९)

१—मूल शब्द—

بے شک و شبه اولین کتاب سماوي سر چشمه تحقیق و بحر توحید است

२—यहाँ दारा ने कुरान के सूरे वाकिया की निम्नलिखित आयत उद्धृत की है:-

"في كتب مكنون لايمه الا المطهران تنزيل من رب العالمين"

अर्थात् एक गुप्त पुस्तक में (ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादन है) जिसको केवल पवित्र लोग ही छूते हैं और वह पुस्तक विश्वपति की ओर से उतरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंडक, (१०) छांदोग्य, (११) बृहदारण्यक, (१२) ईशावास्य, (१३) तदेव, (१४) आनंदवल्ली, (१५) भृगुवल्ली, (१६) पुरुषसूक्त, (१७) छागल्य, (१८) श्वेताश्वेतर, (१९) सत्यरुद्री, (२०) महानारायण, (२१) शिवसंकल्प, (२२) कौषीतकी, (२३) याष्कल, (२४) ऐतरेय, (२५) योगतत्त्व, (२६) कठवल्ली, (२७) चूलिका, (२८) अमृतनाद, (२९) तारक, (३०) शरभ, (३१) आत्मप्रबोध, (३२) कैवल्य, (३३) मांडूक्य, (३४) आत्मा, (३५) प्रश्न, (३६) अथर्वशिर, (३७) अथर्व-शिखा, (३८) केन, (३९) छुरिका, (४०) अरुणिका, (४१) नारायण, (४२) परमहंस, (४३) जाबाल, (४४) हंसनाद, (४५) पैंगल, (४६) मृत्युलांघन, (४७) अच्छि, (४८) प्रणव, (४९) शौनक, (५०) नृसिंहतापनी*।

यों तो छोटे-मोटे उपनिषदों की संख्या बहुत है। १०८ छपे हुए हमने देखे हैं। पर दारा ने उनमें से छाँटकर केवल इन्हीं ५० का अनुवाद किया है।

दाराशिकोह की इस फारसी पुस्तक का पूरा अनुवाद लैटिन भाषा में एक फ्रेंच विद्वान् Anquetil du Perron ने किया है। अँग्रेजी में हमें कोई अनुवाद नहीं मिला।

अब हम इस फारसी अनुवाद के विषय में कुछ लिखते हैं। दारा-शिकोह ने प्रत्येक मंत्र को अलग अलग करके अनुवाद नहीं किया है, वरन् हर एक उपनिषद् का भाषांतर आदि से अंत तक एक ही लपेट में किया है। हमने कई एक को मूल संस्कृत से मिलाया तो अनुवाद यथासंभव शुद्ध और लगभग शब्दार्थ के अनुसार पाया। अवश्य कहीं कहीं भाव स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्द बढ़ा दिए गए हैं। पर उनसे मूल के आशय में कुछ अंतर नहीं आया है।

---

* इनमें से अधिकांश उपनिषदों के नाम मूल पुस्तक में, फारसी अक्षरों में, बहुत ही अशुद्ध और अस्पष्ट लिखे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमूने के लिये हम केन उपनिषद् के कुछ मंत्रों के अनुवाद उपस्थित करते हैं। पहले मूल संस्कृत, फिर उसका दारा-कृत फारसी अनुवाद और उसके नीचे फारसी का हिंदी भाषांतर लिखते हैं। पाठक स्वयं देखें कि मूल और अनुवाद में कितना निकटतम सादृश्य है।

"केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोतं क उ देवो युनक्ति ॥" (१)

طالبان پرجاپت از پرجاپت پرسیدند که دل بحکم و خواهش که حرکت می کند و روانه می‌شود— پران که اصل همه است بحکم و خواهش که حرکت می کند و روانه می شود و گویائی بحکم و خواهش که کار خود می کند و گوش و چشم بگفته کدام موکل کار خود می کند؟

अर्थात् प्रजापति से उनके शिष्यों ने पूछा कि मन किसकी आज्ञा और इच्छा से चलायमान और प्रेषित होता है। प्राण, जो सबकी जड़ (अर्थात जीवन का मूल कारण) है, किसकी आज्ञा और इच्छा से चलायमान और प्रेषित होता है। वाणी किसकी आज्ञा और इच्छा से अपना काम करती है तथा कान और नेत्र किस देवता के कहने से अपना-अपना काम करते हैं?

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥" (२)

پرجاپت گفت که بحکم شنوزی‌ها 'دل بدل دلها' گویای بگویای گویای‌ها پران به پران پران‌ها و چشم بینائی بینائی‌ها—هر که این موکل همه کل‌ها که نور نورها ست بداند آن از عارفان راسخ، ثابت قدم است و او بعد از گذاشتن تن نروان و مکت درستگار می‌شود—

प्रजापति ने कहा, कानों के कान, मनों के मन, वाणियों की वाणी, प्राणों के प्राण और आँखों की आँख की आज्ञा से (ये सब इंद्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं)। जो इन सबों के देव को जो प्रकाशों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश है, जानता है वह दृढ़ और पक्का मुमुक्षु है और शरीर त्याग करने पर निर्वाण, मुक्त और (बंधन) रहित हो जाता है।

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥" (३)

آن ذاتے است کہ باو بینائی نمی رسد و گویائی باو نمی رسد
ہر گاہ کہ از دل فہمیدہ نشود و بعلم فہمیدہ نشود اورا چگونہ توان
فہمانید و او از دانستہا و نادانستہا بر تر است—از بزرگان سابق ہم
چنین شنیدہ ام—

वह ऐसी सत्ता है कि उस तक दृष्टि नहीं पहुँचती, उस तक वाणी नहीं पहुँचती। जब कि वह मन से नहीं समझा जाता, विद्या से नहीं जाना जाता तो उसको क्योंकर समझाया जाय? वह ज्ञान और अज्ञान से परे है,* ऐसा हमने पूर्व आप्त पुरुषों से सुना है।

"यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥" (४)

---

* ईरान के जगद्विख्यात कवि उमर खैयाम ने लगभग इसी भाव को इन शब्दों में छंदोबद्ध किया है:—

کنہ خردم در خور اثبات تو نیست
اندیشۂ من بجز مناجات تو نیست
من ذات ترا بواجبی کے دانم
دانندۂ ذات تو جدا ذات تو نیست

अर्थात् मेरी तुच्छ बुद्धि तेरे अस्तित्व को सिद्ध करने योग्य नहीं है। मेरा चिंतन केवल इतना ही है कि मैं तेरी प्रार्थना किया करूँ। मैं तेरी सत्ता को यथातथ्य क्योंकर जान सकता हूँ? क्योंकि तुझको जाननेवाला तुझसे पृथक् (अर्थात् तेरे सिवा और कोई) नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ذاتے کہ گویائی باؤ نمی رسد و أو بگویائی برسد همان را برهم
بدان و هرچه بگویائی در می آید آن برهم نیست و اوبے نهایت است
و انچه بگویائی در می آید نهایت دارد و انچه نهایت دارد برهم نیست

जिस तक वाणी नहीं पहुँचती और वह वाणी तक पहुँच जाता है, उसी को ब्रह्म जानो। जो वाणी में आ जाता है, वह ब्रह्म नहीं है, क्योंकि वह अनंत है और जो वाणी के अंतर्गत है वह सांत है और जो अंत वाला है वह ब्रह्म नहीं है।

टिप्पणी—मूल मंत्र के अंतिम पद का, जिसके नीचे लकीर खींच दी गई है, शब्दार्थ यह है—"न यह जिसकी (लोग सामान्यतया) उपासना करते हैं।" दारा ने इसका भावार्थ कुछ फैलाकर लिखा है। मिलान के लिये हमने उसके नीचे भी लकीर खींच दी है।

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" (५)

ذاتے کہ دل باؤ نمی رسد و أوبدل می رسد همان را برهم بدان—
هرچه بدل در آورده شود آن برهم نیست و او بے نهایت است و انچه در
دل در آید نهایت دارد وانچه نهایت دارد برهم نیست—

जिस तक मन नहीं पहुँचता और वह मन तक पहुँच जाता है, उसी को ब्रह्म जान (शेष पूर्ववत्)।

विस्तार-भय से हम और मंत्रों का अर्थ नहीं लिखते। नमूने के लिये इतना पर्याप्त है।

अंत में यह लिखकर ग्रंथ समाप्त किया गया है—"चारों वेदों के इन उपनिषदों का अनुवाद, जिसका नाम 'सिर्र-अकबर' रखा गया है और जो समस्त ज्ञान के प्रकाश का पुंज है, इस फकीर-महम्मद दाराशिकोह ने स्वयं सीधी-सादी इबारत (लेखन-शैली) में, छः महीने के अंदर, सोमवार के दिन, २६वीं रमजान, सन् १०६७ हिजरी (१६५६ ई०) को समाप्त किया। कहा जाता है कि (प्रलय के समय) वेद लुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाते हैं और (सृष्टि के आरंभ में) फिर उनका प्रादुर्भाव होता है। क्या संयोग है कि उनको परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से इस समय फिर इसी देश में प्रकट किया है।

"प्रार्थना है जगदीश्वर अपने जिज्ञासुओं को इस योग्य करे कि वे इस ज्ञान-निधि से लाभ उठाएँ और इस मायावी जीवन से छूटकर अमर पद को प्राप्त करें।"

इस पुस्तक की, जो हमारे सामने है, मुंशी उमाशंकरसहाय सक्सेना, जहानाबाद, जिला पीलीभीत निवासी ने सन् १८८४ ई०, तदनुसार १२९२ फसली में एक पुरानी किताब से नकल की थी, जो संवत् १८१८ विक्रमी की लिखी हुई थी।

सारी पुस्तक बड़े आकार के ३६१ पृष्ठों में समाप्त हुई है। अक्षर बड़े सुंदर (नस्तालीक) हैं। पर अशुद्धियाँ बहुत हैं, जिनके कारण अर्थ समझने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

परिशिष्ट

इस लेख को लिखने के पश्चात् हमें इन ५० उपनिषदों का एक और हस्तलिखित संग्रह देखने को मिला, जिसको प्रयाग के गुदड़ी बाजार से पं० अयोध्याप्रसाद वैदिक मिशनरी कलकत्ता-निवासी ने मोल ले लिया है। इसके लिपि-काल का पता नहीं लगा। यह सुलिखित नहीं है और इसलिये कहीं-कहीं इसके पढ़ने में बड़ी कठिनाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय गणित *

[लेखिका—कुमारी सुप्ति सिंह, एम० ए०, डी० टी०, रिसर्च स्कालर का० वि० वि०]

प्राचीन भारत में गणितशास्त्र की उत्पत्ति के दो मूल कारण थे—

(१) व्यावहारिक अथवा व्यावसायिक,

(२) धार्मिक।

पहला तो स्पष्ट है। दूसरा कुछ आश्चर्यकर है। प्रश्न होता है कि धर्म का गणित से क्या संबंध हो सकता है। भारतीय गणितज्ञों का ध्येय सदा ही उस अव्यक्त ईश्वर का अनुसंधान करना था जिसकी कृपा तथा शक्ति से सारा व्यक्त संसार परिचालित होता है। पहले पहल संख्या-शास्त्रों की उत्पत्ति हुई। पर केवल संख्या के सिद्धांतों से ही भारतीय ऋषि तृप्त न रह सके। तब बीजगणित (Algebra) का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें कतिपय व्यक्त वस्तुओं द्वारा अव्यक्त की खोज होती थी, जिसे आजकल की भाषा में समीकरण (equations) कहेंगे। इस गणित में यह चेष्टा निहित थी कि पृथ्वी की व्यक्त भौतिक वस्तुओं के पूर्ण ज्ञान द्वारा उस अव्यक्त परम ब्रह्म की शक्ति की झलक पाई जाय। यही कारण था कि भारत में रेखागणित (Geometry) अधिक फूला-फला नहीं। परंतु बीजगणित (Algebra) तथा ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सारे मूल सिद्धांतों के आविष्कारक भारतीय ही थे। आजकल न्यूटन और केपलर के नाम से जो सिद्धांत प्रसिद्ध हैं वे सब उनसे कई सौ वर्ष पहले यहाँ मान्यताओं के रूप में थे।

---

* ना० प्र० सभा की 'प्रसाद व्याख्यानमाला' में २ फाल्गुन '९८ को हुए लेखिका के व्याख्यान का लेख-रूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की ऐसी कितनी ही अमूल्य निधियाँ लुप्त हो गई हैं। इनके लुप्त होने के दो कारण थे। भारतीय गणित के आचार्यों ने वैज्ञानिक रूप से अध्ययन-अध्यापन करने की चेष्टा नहीं की। इससे उन्होंने गणित को कभी साधारण जन के समझने योग्य नहीं बनाया। ब्राह्मण वंश में ही इसकी चर्चा परंपरा से चली आती थी। जो नूतन अनुसंधान होते थे वे तो रह जाते थे, बाकी तख्तियों में ही मिट जाते थे। इनके विलीन होने का दूसरा कारण यह था कि सब गणित पद्य में ही लिखा जाता था और संख्या का प्रयोग कम था। वे शब्द द्वारा ही कविकल्पना को प्रस्फुटित करते थे। यथा :—यदि ८७१५१ लिखना हो तो निम्नलिखित रूप से लिखेंगे : ब्रह्म शुक्ल पर्वत वसु अर्थात् ब्रह्म १, शुक्लपक्ष १५, पर्वत ७, वसु ८। संख्या को दाएँ से बाएँ पढ़ने की रीति थी। इस प्रकार के श्लोकों को समझना सरल नहीं हो सकता।

भारत की सभ्यता वैदिक काल से आरंभ होती है। उस उन्नत सभ्यता के काल में गणित का क्या स्थान था, अब यह पूर्णतः प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। पर यह कहा जा सकता है कि गणित का प्रारंभ तब हो चुका था। सूर्य की पूजा करने के लिये दिशाओं के ज्ञान से तथा वेदी बनाने में जिन चित्रों की आवश्यकता होती थी उनसे रेखागणित (Geometry) की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मण-सभ्यता (संवत् २००० ई० पू०) में धार्मिक तथा दार्शनिक उन्नति काफी हो चुकी थी। यहीं से गणित तथा ज्योतिष का विकास आरंभ हुआ। इसके बाद २००० वर्षों तक क्रमानुसार उन्नति होती गई। यद्यपि भारत में बहुत बाहरी तथा भीतरी युद्ध होते रहे तथापि अध्ययन-अध्यापन में कोई बाधा न पड़ी। इसका कारण यह था कि अध्ययन-अध्यापन अथवा सरस्वती की सेवा के अधिकारी केवल ब्राह्मण ही थे। ये तन-मन से ज्ञान-पिपासा की तृप्ति में संलग्न रहते थे।

प्राचीन भारत में गणित के महत्त्व के विषय में यह स्मरण करना होगा कि छांदोग्य उपनिषद् में अपराविद्या पराविद्या की सहायिका मानी गई है। वेदांग ज्योतिष (१२०० ई० पू०) ने गणित को सर्वोच्च स्थान दिया है। पुनरुत्थान काल में निम्नलिखत विषयों पर ध्यान दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो गणित के अंतर्गत थे—परिकर्म (fundamental operations), व्यवहार (determination), रज्जू (geometry), राशि (rule of three), कला-सवर्ण (operations with fractions), यावत् तावत् ("as many as" or simple equations), वर्ग (quadratic equation), घन (cube), वर्ग वर्ग (biquadratic equations), विकल्प (permutation and combination) इत्यादि। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (४०० ई० पू०) से विदित होता है कि मुंडन संस्कार के बाद ही पठन-पाठन आरंभ होता था एवं छात्रों को लिपि तथा संख्या पढ़ाई जाती थी[१]। जैनियों की पुस्तकों से ज्ञात होता है कि धर्म-ग्रंथ का विषय चार विभागों में विभक्त होता था। उनमें से एक गणितानुयोग (exposition of the principles of mathematics) था। गणित (arithmetic and astronomy) जैन पुरोहितों के पूर्ण ज्ञान का एक आवश्यक अंग था। बौद्ध साहित्य में गणित को सब ज्ञानों में महत्त्वपूर्ण माना जाता था[२]। इन्हीं से विदित होगा कि प्राचीन भारत में गणित का कैसा गौरवपूर्ण स्थान था।

भारतीय गणित-काल को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) शुल्वसूत्र काल (८०० ई० पू० से २०० ई०)

(२) ज्योतिष काल (४०० ई० पू० से १२०० ई०)

शुल्वसूत्र का अर्थ है सूत्र के नियम (rule of cords)। वैदिक काल में जो अग्निहोत्र की वेदी बनाई जाती थी उसके चारों ओर रेखा-चित्रों से सजावट करने के लिये कल्पसूत्र की सहायता ली जाती थी। कल्पसूत्र के लिये शुल्वसूत्र आवश्यक था। इस काल में गणित का ध्येय केवल धार्मिक था। दूसरे काल में भारतीय गणित पर शायद पाश्चात्य ज्योतिष का कुछ प्रभाव पड़ा हो, क्योंकि उस समय सिकंदर का भारत पर आक्रमण

१—अर्थशास्त्र ed: by R. Samasastri pg 2 and 5. English Translation pg 10.

२—विनय पिटक ed: Oldenberg Vol IV pg 7. Kaye pg 93

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था। यह आजकल के विद्वानों का मत है, पर यह मत निश्चित नहीं है। उस समय भारतीय गणित उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच चुका था।

पाँचवीं शताब्दी का सूर्यसिद्धांत एक प्रामाणिक ग्रंथ हुआ। इसकी सूक्ष्म गणना में कहीं विदेशी प्रभाव नहीं है। छठी शताब्दी में वराहमिहिर ने पंचसिद्धांतिका में सूर्यसिद्धांत को संक्षेप में लिखा तथा अन्य चार पुस्तकें ज्योतिष विज्ञान पर लिखीं। १८८१ ई० में वक्षाली (जो उत्तर-पश्चिम भारत में है) में जमीन के अंदर से कुछ ईंटें निकलीं जिनमें अंकगणित किया हुआ था*। इसका काल ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दी माना जाता है। आर्यभट की आर्यभटि (४७६ ई०), जिसमें तीसरा अध्याय गणित का है, बहुत ही मूल्यवान् है। सौ वर्ष के बाद भारतीय गणित उन्नति के उत्तुंग शिखर तक पहुँच गया था। ५९८ ई० में ब्रह्मगुप्त हुए और उन्होंने ६२८ ई० में ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना की जिसमें १२वाँ और १८वाँ अध्याय गणित को अर्पित किए गए हैं। ९वीं शताब्दी में महावीर नामक प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए जिन्होंने साधारण सरल गणित लिखने का प्रथम प्रयास किया। आजकल इतिहास की गवेषणा में जो रुचि रखते हैं वे इनका अध्ययन करें तो अनेक लाभ हों। १० वीं शताब्दी में श्रीधर ने गणित-सार की रचना की तथा पद्मनाभ नामक गणितज्ञ प्रसिद्ध हुए। इसके उपरांत कुछ काल तक उन्नति कुछ धीमी पड़ गई। ११५० ई० में भास्कर ने सिद्धांतशिरोमणि की रचना की जिसमें दो अध्याय, एक लीलावती तथा दूसरा बीजगणित, मूल्यवान् हैं।

अब हम संख्यागणित, बीजगणित, रेखागणित, व्यास (π) का मूल्य, तथा ज्योतिषविज्ञान के इतिहास को सूक्ष्म दृष्टि से देखने का प्रयत्न करेंगे।

संख्या:—संख्या की उत्पत्ति बहुत ही प्राचीन है। पहले पहल वक्षाली लिपि द्वारा संख्या का लिखना आरंभ हुआ। अर्थात् ।, ।।, ।।।,...

---

* Vakshali Ms by Rodolf Hoernly in the Indian Antiquary. XVII 33—48, 275—279, Bomay 1888.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी रेखाओं द्वारा सब गणना होती थी। तत्पश्चात् इन रेखाओं के संयोग से आधुनिक रूप बने। यथा। से १, = से २, ☰ से ३ ‖ से ४, ‖ ; से ५। आश्चर्य यह है कि ये अंक अरबी अंक (Arabic notations) कहलाने लगे। परंतु अब सब विद्वानों ने मान लिया है कि ये अरब में आविष्कृत नहीं हुए, वरन् भारत में ही इनका जन्म हुआ था। अंकगणित में भारत का सब से महत्त्वपूर्ण दान शून्य को संख्या में स्थान देना था। तीसरी शताब्दी ई० पू० में शून्य का चिह्न बिंदु था। यूनानियों के प्रभाव से इसे चक्राकार लिखा जाने लगा। संख्या की लिपि में यूनानी झलक अवश्य है। इसी कारण इसे अरबी अंक न कहकर यदि यूनानी-हिंदु-संकेत (Babilonian Hindu notation) कहें तो अनुचित न होगा। तीसरी शताब्दी ईसा के पूर्व में ही संख्याशास्त्र काफी उन्नत था, जिससे कि आधुनिक लिपि निकली अर्थात् यदि ८७२५ लिखना हो तो लिखेंगे ८, १०००, ७,१००, २०,५। इससे विदित होता है कि इकाई दहाई के स्थान का ज्ञान भी हो चुका था। उस समय संख्याओं को शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता था। इससे सूत्र बनाने तथा याद रखने में आसानी होती थी। बुद्ध के समय संख्याशास्त्र बहुत उन्नत हो चुका था। इस प्रसंग में एक कहानी उल्लेखनीय है। जब बुद्ध भगवान् ने अध्ययन पूर्ण किया तो उनकी परीक्षा हो रही थी। वह इस कारण कि जिस लड़की से वे विवाह करना चाहते थे उसके पाने के लिये एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी थी। उनसे पूछा गया कि क्या तुम कोई एक संख्या बता सकते हो जिसके लिखने में एक मील स्थान की आवश्यकता हो। उन्होंने अणु-परमाणु द्वारा इसका उत्तर दिया अर्थात् $१०^{५३}$ तक की संख्या बताई। यह आरकेमिडीस (archimedes) की 'धूलि गणना' (sand counter) के समान है। इससे ज्ञात होता है कि संख्या-गणना किस उन्नति तक पहुँच चुकी थी। यहाँ गणित के दो-एक मनोरंजक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा।

उन दिनों आजकल के समान कागज कलम तो थे नहीं, इसी से उन लोगों को किफायत से काम चलाना पड़ता था। इसी कारण उन्होंने गणना की सरल प्रथा निकाली जिससे न तो अधिक स्थान लगे और न चूक ही होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संभावना रहे। जैसे यदि ७३५ को १२ से गुणा करना हो तो यों करेंगे—

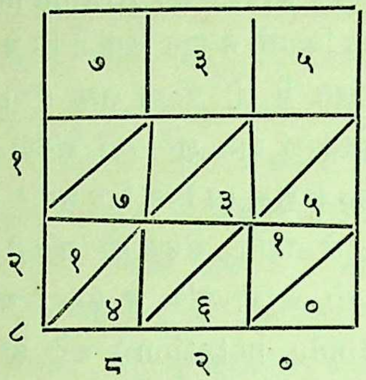

यह बड़ी ही सरल रीति है। बड़े बड़े गुणन में वे ९ (or rule of casting out nines) निकाल कर परीक्षा कर लेते थे कि ठीक है या नहीं। यह रीति अब स्कूल के बच्चे व्यवहार में लाते हैं। यह परीक्षा-रीति रोम के पादरियों को तीसरी शताब्दी में ज्ञात थी। शतरंज के खेल के प्रचलन से पता चलता है कि अंकगणित से किस प्रखरता से काम लिया जाता था।

बीजगणित :—अंकगणित को जब अव्यक्त रूप से देखने की आवश्यकता पड़ी तो बीजगणित की उत्पत्ति हुई। इसकी उत्पत्ति शुल्व-काल (८००-५० ई० पू०) में थी अथवा ब्राह्मण-काल (२००० ई० पू०) में भी इसका प्रथम प्रारंभ कह सकते हैं। अव्यक्त को भवभूति 'यावत् तावत्' कहने लगे थे। योग और वियोग की धारणा सम्पत्ति तथा ऋण से निकली। असल ऋणचिह्न (absolute negative quantity) की धारणा सबसे पहले भारतीय मस्तिष्क में ही आई। उन्होंने ही यह निकाला कि जोड़ना और घटाना एक ही वस्तु है। इसी को अँगरेजी में कहते हैं 'conception of algebraic addition and subtraction। इनके उदाहरण ब्रह्मस्फुटसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि, नारायणकृत बीजगणित, गणितसारसंग्रह, भास्करकृत बीजगणित, इत्यादि में पाए जाते हैं। डायफेनटस (Diophantus) एक महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी गणितज्ञ, से भास्कराचार्य जी बढ़े-चढ़े थे। पहले ने वर्गमूल (square root) निकाला, पर भास्कराचार्य जी ने कहा कि ऋणमूल (negative root) भी होता है। जैसे—

$$\text{क}^{\text{२}} - \text{४५क} = \text{२५०}$$

के मूल (roots) यूनानी गणितज्ञ देते हैं ५०, पर भास्कराचार्य जी देते हैं ५० तथा –५। वर्गमूल (square root), वर्ग-समीकरण (equation with rational and irrational quantities) का भी भास्कराचार्य को साफ साफ ज्ञान था। यथा :—

$$\sqrt{\text{क} \times \sqrt{\text{ख}}} = \sqrt{\frac{\text{क} + \sqrt{\text{क}^{\text{२}} - \text{ख}}}{\text{२}}} + \sqrt{\frac{\text{क} - \sqrt{\text{क}^{\text{२}} - \text{ख}}}{\text{२}}}$$

इसी से ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज बीजगणित के असल आविष्कारक थे। बीजगणित में भारतीयों का अमूल्य दान था अनंतता की कल्पना (conception of infinity)। आर्यभट के उद्धरण से ज्ञात होगा कि बीजगणित में अनंतता (infinity) की कल्पना को किस प्रकार धार्मिक रंग दिया गया था। "यदि किसी भिन्न के नीचे शून्य हो तो उस संख्या में चाहे जितना भी जोड़ो या घटाओ उसे सीमित नहीं कर सकता है। ठीक उसी प्रकार अनादि तथा अनंत ईश्वर में कोई भी भिन्नता नहीं आ जाती चाहे पृथ्वी की उत्पत्ति हो या विनाश हो, चाहे ससीम व्यक्तियों का जन्म हो अथवा मरण।" किन्हीं किन्हीं वस्तुओं को भारतीयों ने यूनानियों से लिया, फिर भी उन्नति का श्रेय भारतीयों को प्राप्त है। सरल समीकरण (linear equations) का डायफेनटस ने पहलेपहल आविष्कार किया था, पर ब्रह्मगुप्त ने वर्ग-समीकरण (quadratic equation) के तीनों समाधानों (solutions) को एक में किया। जैसे—

$$\text{य क}^{\text{२}} + \text{र क} + \text{ल} = \text{०}$$

डायफेनटस ने इसको तीन समीकरणों में दिया था। यथा—

$$\text{अ क}^{\text{२}} + \text{ब क} = \text{स},$$

$$\text{ब क} + \text{स} = \text{अ क}^{\text{२}}$$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ क^2 + स = ब क

(अ, ब, स सब योग चिह्न के हैं)

हिंदू गणितज्ञों ने साधारण समीकरण (determinant equations) पर अधिक ध्यान नहीं दिया। उनके गणित का महत्त्व है अनिश्चित समीकरण (indeterminate equations) के समाधान में। इसी विषय में डायफेनटस की भी रुचि थी, पर भारतीयों ने इसका समाधान बड़ी ही सूक्ष्मता से किया था। हिंदुओं की विशेषता केवल उनकी समाधान की रीति में ही नहीं थी बल्कि उद्देश्य में भी थी। यूनानी रीति इनके सामने हीन प्रतीत होती है। हिंदुओं का वर्ग-समीकरण (quadratic equations) का महत्त्वपूर्ण समाधान उसकी रीति में था। जैसे—

अ क^2 = ब ख^2 + स

को उन्होंने चक्रीय विधि (cyclic method) से किया था। इस सिद्धांत का आविष्कार कई सौ वर्ष बाद लेगरांज (Lagrange) ने किया जिनके नाम से वे आज भी प्रचलित हैं। आजकल कितने बड़े बड़े समीकरण (equations) Lagrange's equations के नाम से प्रचलित हैं, पर कौन जानता है उन मूक भारतीय विद्वानों को जो संसार के ज्ञान को इतना बड़ा दान देकर स्वयं अंतर्धान हो गए!

जहाँ भारतीयों में अनंतता की कल्पना थी वहाँ शून्य तथा अतिसूक्ष्म (infinitesimal) की धारणा भी उनमें उतनी ही प्रखर थी। भास्कर द्वितीय के कार्यों से प्रतीत होता है कि शून्य को अतिसूक्ष्म (infinitesimal) ही मानते थे। आजकल उच्च गणित में भी यही धारणा रखी जाती है। शून्य अर्थात् 'कुछ नहीं' कोई वस्तु ही नहीं है। मानव-बुद्धि किसी आधार पर ही सोचती है, इसी से 'कुछ नहीं' बुद्धि के अगोचर है। इसी कारण शून्य को सूक्ष्म माना है। भास्कराचार्य के गणित में एक बड़ी भारी आश्चर्यजनक वस्तु चलन गुणक (differential coefficient) है। इससे पता चलता है कि उन्हें अति सूक्ष्म उन्नति (infinitesimal increment) का पूर्ण ज्ञान था। आजकल सारा calculus अँगरेजी में होता है। यहाँ मैं भास्कराचार्य के छोटे छोटे दो एक उदाहरणों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर बीजगणित के विषय को समाप्त करूँगी। ब्रह्मगुप्त ने लिखा था $\frac{०}{०}=०$ जो कि गलत है। भास्कराचार्य जी ने इसे ठीक किया जो अँगरेजी में इस प्रकार होगा—

$$\lim_{\epsilon \to 0} \frac{a\epsilon}{\epsilon} = a$$

उनकी भाषा दोषजनक अवश्य है, क्योंकि वे शून्य को अतिसूक्ष्म शून्य (infinitesimal zero) कहते हैं*, पर रीति में उनकी ठीक धारणा का पता चलता है। इसी सिलसिले में वे देते हैं :—

$$१.\ \frac{\left(क \times ० + \frac{क \times ०}{२}\right)}{०} = ६३$$

उत्तर क = १४

$$२.\ \left\{ \left(क + \frac{क}{२}\right) ० \right\}^{२} + २ \left\{ \frac{क + क}{२} \times ० \right\} \div ० = १५$$

उत्तर क = २

$$३\quad अ\, क^{२न+२} + ब\, क^{२न} = ख^{२}$$

द्वितीय का उत्तर कुछ दोषजनक प्रतीत होता है। उसका कारण यह है कि यहाँ $०^{२} = ०$ माना गया है। शून्य किसे कहते हैं। अ—अ = ०,† अ × ० = ० पर ० × ० ≠ ० क्योंकि यदि ० को बहुत छोटी संख्या मानी जाय अर्थात् ϵ मानी जाय और ϵ को $\frac{१}{१०००}$ माना जाय तो

$$० \times ० = \frac{१}{१०००} \times \frac{१}{१०००} \neq \frac{१}{१०००}$$

---

* बापूदेव शास्त्री : बीजगणित । बनारस १८७५, पृ० १७१ ।

† ब्रह्मगुप्तः ब्रह्मस्फुटसिद्धांत : पृ० ३०६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी यह समाधान चेष्टा कि ०/० क्या है बहुत ही प्रशंसनीय है। यही गलती (कि ०/० = ०) हम पश्चिमीय गणितज्ञों में ९वीं श० में पाते हैं।[1]

भास्कराचार्य ने न केवल दिखलाया कि

(अ + ब)² = अ² + ब² + २ अ ब

बल्कि उसे उच्च कोटि (generalise करके) का बनाकर दिखलाया यथा

(अ + ब + स + ...)² = अ² + ब² + स² ... + २ अ ब + २ ब स + ...उनके लिखने का ढंग अत्यंत मनोरंजक था। यथा यदि लिखना हो—

८ या³ + ८ या² + १० का² या = ४ य³ + ० या² + १२ का² या

तो लिखेंगे—

या घ ८ या व ८ का व या भा १०

या घ ४ या व ० का व या भा १२

(घ cube है, व square है)

Smith[2] का कहना है कि यह रीति सब रीतियों से अच्छी है। यहाँ योग और वियोग चिह्न की गड़बड़ी नहीं हो सकती है। कहना तो यह उचित होगा कि यहाँ ऋण-चिह्न का प्रयोजन ही नहीं पड़ता था।

बीजगणित में आर्यभट प्रथम (४९९ ई०), ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०), श्रीधर (७५० ई०), महावीर (८५० ई०), आर्यभट द्वितीय (९५० ई०), श्रीपति (१०३९ ई०), भास्कर द्वितीय (११५० ई०), ज्ञानराज (१५०३ ई०), तथा कमलाकर (१६५४ ई०) ने अनेक प्रकार के दान समय समय पर दिए।

रेखागणित (geometry and trigonometry) :—रेखा में कभी भी भारतीयों की रुचि नहीं थी। इसका आकर्षण यूनानियों को ही था। भारत में रेखागणित वेद के समय से आरंभ हुआ। हवन-कुंड

---

१ Martin Ohm in Lebrbuch der Niedern analysis Vol : I Berlin. 1828 pg 110, 112.

२ Smiths' History of mathematics II. page 425—426 ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चारों ओर की वेदी बनाने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के चित्रों की आवश्यकता होती थी। यहीं चक्र इत्यादि (circle, quadrilateral, rectangles etc) बनाए जाते थे। भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न प्रकार के चित्र बनाए जाते थे। भिन्न भिन्न लोगों के यहाँ भिन्न भिन्न परिमाण के चित्र अंकित किए जाते थे। इसी कारण यदि किसी में त्रिकोण बनाने की प्रथा हो तो दूसरे स्थान में जाकर दूसरा त्रिकोण दूसरे परिमाण का बनाना पड़ता था। इन्हीं में यूक्लिड (Euclid) के सारे theorems on triangles, और area of triangles आ जाते हैं। पर जो इतने प्राचीन काल ही में भारत में आविष्कृत हो चुके थे वे सब आज विदेशी नाम से प्रचलित हैं। भारत का नाम इनमें से मिट गया है।

वराहमिहिर की पंचसिद्धांतिका (६ठी श० ई०) में trigonometry के अच्छे अच्छे उदाहरण दिए हुए हैं। ज्योतिष (astronomy) में गणितज्ञों को समतल तथा गोलाकार trigonometry की आवश्यकता होती थी और उसका उन्होंने समाधान किया[१]। आज जो Pythogorous theorem के नाम से इतना प्रसिद्ध है उसका ब्रह्मगुप्त ने सब से पहले आविष्कार किया था[२]। जैसे $क^2 + ख^2 = ग^2$ का समाधान संख्या (integral numbers) में उन्होंने ही दिया था। उसे महावीर ने रेखा में प्रस्फुटित किया। ब्रह्मगुप्त के महत्त्वपूर्ण दान का इससे बढ़कर उदाहरण और क्या दिया जा सकता है कि उन्होंने वह निकालने की चेष्टा की जिसको अँगरेजी में कहेंगे—'To find all quadrilaterals which will be inscribed within a given. circle, certain properties of the circle being given.' ज्योतिष के कारण ही हम यह देखते हैं कि भारत में बीजगणित का स्थान कितना महान् हो गया।

---

१ Arneth Gesehichte der reinen Mathematic Stuttgart 1852) pg 174.

२ ब्रह्मस्फुटसिद्धांत अ० १८ पृ० ६३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष (astronomy) :—ज्योतिष वैदिक शिक्षा का एक प्रधान अंग माना जाता था। भास्कराचार्य जी ज्योतिष की मुख्यता को इस प्रकार बताते हैं—शब्द-शास्त्र वेद भगवान् का मुख है, ज्योतिषशास्त्र आँख है, कल्प हाथ हैं...। इस लिये जैसे आँख अंगों में श्रेष्ठ है वैसे ही सब वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र श्रेष्ठ है। ज्योतिषशास्त्र प्रयोगात्मक विज्ञान है, इसीसे इसमें प्रयोगात्मक भूल भी होती है। प्रति वर्ष यह होती है और सैकड़ों वर्षों में एक महान् रूप धारण कर लेती है।

ज्योतिषशास्त्र का सबसे बड़ा संबंध काल से है। काल दो प्रकार का है। एक प्रकार का काल संसार को नाश करता है और दूसरे प्रकार का काल कलनात्मक है, अर्थात् जाना जा सकता है। एक स्थूल है और दूसरा सूक्ष्म है। स्थूल नापा जा सकता है; सूक्ष्म नापा नहीं जा सकता। पहला अखंड, कल्पनातीत और व्यापक है। इसके उपस्थित रहते ही लोक का अंत हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, सृष्टि रचते तथा लय करते हैं, पर काल बना रहता है। इसी लिये मृत्यु को भी काल कहते हैं।

ज्योतिषशास्त्र प्राचीन भारत में जितना बढ़ा चढ़ा था आज उतना बढ़ा चढ़ा नहीं है। पश्चिमी विद्वान् अभी भी भारतीय गणना की सूक्ष्मता को सराहते हैं। यदि भृगुसंहिता को अब भी आप देखें तो उसकी काया की स्थूलता तथा गणना की सूक्ष्मता की बिना प्रशंसा किए नहीं रह सकते। मैं पहले कह चुकी हूँ कि सूर्यसिद्धांत नामक ग्रंथ बहुत ही गंभीर तथा रोचक है। उसमें काल को संक्षेप में इस प्रकार विभक्त कर रखा है :—

एक गुरु अक्षर (अर्थात् विसर्गांत अथवा सानुस्वार अक्षर) के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे मूर्त कहते हैं। उसके दस गुण समय को प्राण कहते हैं।

६ प्राणों का एक पल
६० पलों का एक विपल
६० विपलों का एक नाक्षत्र अहोरात्र
अथवा १८ निमेष का एक काष्ठ
२० काष्ठ की १ कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० कला = १ घटिका
२ घटिका = १ मुहूर्त्त
३० मुहूर्त्त = १ दिन
३६५ दिन = १ वर्ष
१ वर्ष = १ दिव्य दिन
३६० वर्ष = १ दिव्य वर्ष
४८०० दिव्य वर्षों का १ सत्य युग
३६०० " " = एक त्रेता युग
२४०० " " = एक द्वापर
१२०० " " = एक कलियुग
१२००० " " = एक महायुग
१००० महायुगों का = १ कल्प
१ कल्प ब्रह्मा का एक दिन।

इतनी ही की एक ब्रह्मरात्रि होती है, जिसमें सृष्टि का लय हो जाता है। महायुग का यह मान मनुस्मृति इत्यादि में पाया जाता है, परंतु आर्यभट ने कुछ भिन्न मत प्रकट किया है। सूर्यसिद्धांत में सृष्टि के आरंभ से विनाश तक के सारे समय को विभक्त कर रखा है। उन्होंने सृष्टि हो चुकने के बाद से ग्रहों के स्थान का निर्णय किया। भास्कराचार्य ने आदि सृष्टि से किया ॥२५-२७॥ तक गति के सिद्धांत बताए गए हैं। यह रेखात्मक (linear) तथा कोणात्मक (angular) होते हैं। यहाँ यह अवश्य भूल हो गई है कि प्रत्येक ग्रह की रेखात्मक गति को समान माना है। अब सूक्ष्म यंत्रों की सहायता से जाना गया है कि यह बात भ्रमात्मक है। पृथ्वी तथा चंद्रमा की कक्षा (orbit) एक तल पर नहीं है, वरन् ५° के अंतर में है। सूर्यसिद्धांत में चंद्रोच्च तथा नीच (apogee and perigee) की गति की ठीक ठीक गणना की गई है। ये कक्षा दीर्घवृत्ताकार (elliptic) होते हैं। इसी सिलसिले में दीर्घवृत्ताकार के सारे गुण (properties of ellipse) दिए गए हैं। उच्च स्थान (apogee) पर गति तीव्र तथा नीच (perigee) पर गति मंद होती है, इसका कारण आकर्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति की घटती-बढ़ती है। केपलर के सारे सिद्धांत यहीं आ जाते हैं। इसी प्रकार सूर्य और चंद्र की कक्षा के तल के मिलन-बिंदुओं को उत्तर-पात और दक्षिण-पात (ascending node and descending node) कहते हैं। इन्हें राहु और केतु भी कहते हैं। ये पात भी स्थिर नहीं वरन् पश्चिम की ओर खिसकते रहते हैं। इनके भगण की गति २५०० वर्ष में एक बार परिक्रमा की है। इस गणना में यह महत्त्व है कि जब सब बातें वेध (observation) द्वारा ही निश्चित की जाती थीं उस समय ऐसे बिंदुओं की गति का एक कील द्वारा वेध और गणना करना, जो दृष्टिगोचर नहीं हो सकती हैं और बहुत सूक्ष्म भी हैं, बहुत ही प्रशंसनीय है। इनमें जो दोष होता था वह बार बार तथा भिन्न भिन्न लोग देख कर ठीक करते थे। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह के पात (nodes) प्रत्येक तारे का स्थान, प्रत्येक ग्रह का प्रभाव, इत्यादि बड़ी सूक्ष्मता से दिए गए हैं। इन पातों की गति को कल्प में दिया है। क्योंकि इनकी कोई गणनशैली (method of calculation) नहीं दी गई है इस कारण लोग कहते हैं कि यह यूनान से लिया गया है। पर भारतीयों की सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से की गई सारिणी (tables) के देखने से यह भ्रम दूर हो जायगा। ग्रहों का इष्ट समय तथा उनके प्रभाव के कारण ही वार का नाम मिला। फिर प्रत्येक मास के पहले के ग्रह-स्वामी निकालकर महायुग तक के प्रत्येक मास की पंजिका बनाई गई है।

इसी समय एक महत्त्वपूर्ण गवेषणा हुई। वह है व्यास (π) तथा परिधि (circumference) का संबंध निकालना। लीलावती के ॥ ४० ॥ में भास्कराचार्य ने इसका मूल्य = ३.१४२८ दिया है।

ब्रह्मस्फुटसिद्धांत के सिवा औरों में π = ३·१४१३६ हैं।

आधुनिक मूल्य है = ३·१४१५९२७...। इसमें भी कई विद्वानों का मत है कि यह यूनानी आविष्कार है। पर समय समय पर भारतीयों ने भिन्न भिन्न रीतियों से इसका मूल्य दिया, यहाँ तक कि मालाओं (series) में भी इसका मूल्य दिया है। यह एक अलग ही विषय है। इतना कह देना अनुचित न होगा कि आर्यभट ने इसका सबसे पहले ठीक मूल्य दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) सभा अपने कला-भवन के संग्रह को सर्वांगपूर्ण बनाना चाहती है जिससे भारतीय-कला का सांगोपांग अध्ययन एक केंद्र में किया जा सके।

(च) भारत के बाहर उपनिवेशों में जो भारतीय बसे हैं, वे हिंदी को भूल रहे हैं। उनमें हिंदी का प्रचार करना अत्यावश्यक है। सभा इसके लिए भी उपयुक्त आयोजन करना चाहती है।

इन सब कार्यों के लिए सभा को निम्न-लिखित धन की अत्यंत आवश्यकता है—

१. स्थायी कोश	१ लाख रुपए
२. प्राचीन ग्रंथ-प्रकाशन	१ लाख ,,
३. अनुशीलन कार्य के लिए संग्रहालय	१ लाख ,,
४. उपनिवेशों में हिंदी-प्रचार...	१ लाख ,,
५. कला-भवन	२ लाख ,,
	योग ६ लाख ,,

ये कार्य हमारे देश, जाति, राष्ट्रीयता और आत्म-गौरव के लिये कितने अमूल्य सिद्ध होंगे, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। अब हिंदी-प्रेमी सज्जन स्वयं अपने कर्त्तव्य का निर्धारण कर सकते हैं। उनसे हमारा नम्र निवेदन यही है कि वे इस बात का स्वयं निश्चय करें कि वे अपने लिये कौन सा कार्य चुनते हैं और किस रूप में सभा को इस विशाल आयोजन की सफलता के लिये सहयोग और सहायता प्रदान कर सकते हैं; और तब तुरंत अर्द्ध-शताब्दी कार्यालय को अपना निश्चय सूचित करने की कृपा करें। सभा की इस अपूर्व विशाल योजना को सफल बनाने के लिये देश के विद्वानों और श्रीमानों की उदार सहायता और पूर्ण हार्दिक सहयोग अपेक्षित है।

सम्पूर्णानन्द
सभापति

रामनारायण मिश्र
रामदेव चोखानी
उप-सभापति

रामचन्द्र वर्मा
प्रधान मंत्री

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस. ४८६ (ब)–४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) "वर्तमान हिंदी लेखक और उनकी कृतियाँ" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जायगी। इसमें लेखकों के नाम, पूरे पते, जन्म-संवत्, जन्म-स्थान और कृतियों की सूची रहेगी।

(३) हिंदी तथा भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं में, जिनमें उर्दू भी सम्मिलित है, व्यक्तियों तथा संस्थाओं के द्वारा जो विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियाँ बनी हैं, उनका एक संग्रह तैय्यार करने का प्रयत्न किया जायगा। संगृहीत शब्दों में से जिनको सभा सर्वोत्तम समझेगी, उन्हें अन्य शब्दों की अपेक्षा कुछ मोटे टाइप में दिया जायगा; और यह वैज्ञानिक शब्दकोश विभिन्न प्रांतों से आमंत्रित विद्वानों की परिषद् में निर्णयार्थ उपस्थित किया जायगा।

(४) महाराज विक्रमादित्य की द्वि-सहस्राब्दी के अवसर पर सभा ने इस विषय के दो महत्वपूर्ण कार्य करने का निश्चय किया है :—

(क) विक्रमाब्द और उसके इतिहास के संबंध में जितने लेख और निबंध आदि अबतक प्रकाशित हुए हैं, उन सबकी सूची और इस विषय के निर्णयार्थ इतिहासज्ञों के नए सिद्धांतों के सारांश एकत्र करके प्रकाशित किये जायँगे।

(ख) पंचांगों की तिथियों और दृश्य गणित की तिथियों आदि में कभी कभी अंतर पड़ जाता है; और पुराने ज्योतिष ग्रंथों में ग्रहों की गति-विधि के संबंध में दी हुई सारणियों के अनुसार ग्रहों के जो स्थान आते हैं, वे उन स्थानों से भिन्न होते हैं, जहाँ ग्रहों की वास्तविक स्थिति होती है। इस प्रकार के अंतरों को दूर करने अर्थात् काल-गणना के सिद्धांतों तथा वस्तुस्थिति में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जायगा। अर्द्ध-शताब्दी के अवसर पर इसके लिये विद्वानों की एक सभा होगी और इसका प्रामाणिक निर्णय प्रकाशित किया जायगा।

(५) संयुक्त प्रांत, बिहार और मध्य प्रदेश की अदालतों में नागरी का प्रचार करने के लिए एक "नागरी प्रचार सप्ताह" मनाया जायगा।

(६) नागरीप्रचारिणी पत्रिका का अर्द्ध-शताब्दी विशेषांक प्रकाशित किया जायगा।

(७) अर्द्ध-शताब्दी के उत्सव तक सभा के १०००० सदस्य बनाने का आयोजन किया जायगा।

(८) सभा के भारतीय कला-भवन की रजत-जयंती भी इस अवसर पर मनाई जायगी।

(९) इन कार्यों के अतिरिक्त इस शुभ अवसर पर कतिपय अन्य आवश्यक कार्यों का आरंभ भी सभा करना चाहती है :—

(क) सभा वर्षों से प्राचीन ग्रंथों का प्रकाशन कर रही है। किंतु इसके लिये धन का कोई स्थायी प्रबंध नहीं है। सभा का विचार है कि अर्द्ध-शताब्दी के अवसर पर इसके लिये स्थायी कोश की स्थापना हो।

(ख) सभा ने जो "अनुशीलन विभाग" खोला है, उसके लिये ऐतिहासिक ग्रन्थों के एक अच्छे संग्रह का प्रबंध।

(ग) सभा के 'भारतीय कला-भवन' के लिये एक समुचित भवन, उसकी साज-सज्जा, एक कला पुस्तकालय और फ़ोटोग्राफ़ी विभाग का प्रबंध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. सभा के ५० वर्षों के मुख्य कार्यों का विवरण।

४. सभा की वर्त्तमान आवश्यकताएँ।

५. सभा का भविष्य।

(ख) गत ५० वर्षों की हिंदी की प्रगति का वर्णन रहेगा जिसमें निम्नलिखित बातें होंगी :—

१. भारतेंदु काल से लेकर सभा की स्थापना तक की हिंदी की दशा का विस्तृत वर्णन।

२. गत ५० वर्षों की हिंदी की प्रगति।

३. हिंदी का गद्य साहित्य, जिसके अंतर्गत उपन्यास, नाटक, इतिहास और विज्ञान आदि विभिन्न विषयक ग्रंथों के वर्णन के साथ पत्र-पत्रिकाओं का भी वर्णन होगा।

४. हिंदी पद्य साहित्य।

५. हिंदी-प्रचार, जिसके अंतर्गत कचहरी, देशी-राज्यों, शिक्षा-विभाग और अ-हिंदी प्रांतों में होनेवाले प्रचार-कार्य का वर्णन होगा।

६. अ-हिंदी प्रांतों में हिंदी-प्रचार के वर्णन के साथ वहाँ की प्रांतीय भाषाओं की प्रगति का इतिहास भी दिया जायगा और उनसे हिंदी का जो विशिष्ट संबंध होगा, उसका भी वर्णन रहेगा। इसमें बँगला, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ी, पंजाबी, सिंधी, मारवाड़ी, उड़िया, नेपाली और उर्दू आदि देश-भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास भी दिया जायगा।

७. भारत के बाहर उपनिवेशों तथा विदेश के अन्य स्थानों में हिंदी का जो प्रचार हुआ है, उसका भी वर्णन रहेगा।

(ग) इसमें चित्र भी पर्याप्त संख्या में रहेंगे। [जो सज्जन अर्द्ध-शताब्दी के आयोजन के लिये ५००) या अधिक सहायता देंगे, उनके भी चित्र दिये जायँगे।]

(घ) इस परिशिष्ट विभाग में निम्नलिखित बातें रहेंगी :—

१. सौ रुपये या अधिक की सहायता देनेवाले सज्जनों की नाम-सूची।

२. सभा के समस्त प्राप्य और अप्राप्य प्रकाशनों की काल-क्रम और माला-क्रम से सूची।

३. काल-क्रम से सभा के विशेष कार्यों और घटनाओं की सूची।

४. प्रांत-क्रम से हिंदी संस्थाओं की सूची।

५. काल-क्रम से सभा के पहले वर्ष और ५० वें वर्ष के सभासदों की सूची।

६. निधियों की सूची।

७. सभा का पचास वर्षों का आय-व्यय।

दूसरा भाग—हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० होगी।

तीसरा भाग—सभा के 'आर्यभाषा पुस्तकालय' की पुस्तकों की सूची (प्रायः १००० पृष्ठ) रहेगी।

चौथा भाग—सभा के 'भारतीय कला भवन' की वस्तुओं की सूची (प्रायः १००० पृष्ठ) रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

की

अर्द्ध-शताब्दी

सभा अपने जन्म-काल से लेकर अब तक हिंदी भाषा, नागरी लिपि और हिंदी साहित्य की जो सेवा निरन्तर करती आ रही है, वह हिंदी जगत् को अविदित नहीं है। अपने जीवन के इस दीर्घ काल में सभा गत वर्ष के अंत तक ८॥ लाख रुपए व्यय कर चुकी है, जिनमें १ लाख रुपए प्रांतीय सरकार से मिले हैं। हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज और सुरक्षा, "वैज्ञानिक कोश" और "हिंदी-शब्द-सागर" जैसे विशाल ग्रंथों का निर्माण, अनेक पुस्तक-मालाओं के अंतर्गत विविध विषयों के सैकड़ों ग्रंथों का प्रकाशन, हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिये सभा की ओर से दिये जानेवाले अनेक पदक और पुरस्कार, अदालतों, देशी रियासतों, अ-हिंदी प्रांतों और शिक्षा-विभाग में सभा के द्वारा किये गये हिंदी-प्रचार, सभा का 'आर्यभाषा पुस्तकालय', 'भारतीय कला-भवन', संकेत लिपि विद्यालय और अनुशीलन विभाग आदि सभा के द्वारा की गई हिंदी जगत् की ठोस सेवाओं के उज्वल प्रतीक हैं।

सौभाग्यवश सभा के जीवन के ५० वर्ष विक्रम संवत् २००० के साथ ही पूरे हो रहे हैं। इस सुयोग के अवसर पर सभा ने अपनी अर्द्ध-शताब्दी और विक्रमादित्य की द्विसहस्राब्दी एक साथ ही मनाने का निश्चय किया है। इस अवसर पर सभा कई कार्य विशेष रूप से कर रही है; और हिंदी साहित्य तथा भाषा की उन्नति और प्रचार के हेतु कई महत्वपूर्ण नई योजनाओं की व्यवस्था की गई है :—

(१) इस अवसर पर सभा की ओर से एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की जायगी जो चार भागों में होगी। इनकी पृष्ठ संख्या लगभग ३००० होगी। इन भागों का विषय-क्रम इस प्रकार होगा:—

पहला भाग—प्रस्तावित रूप-रेखा के अनुसार पहले भाग (लगभग ६०० पृष्ठ) में—

(क) सभा का गत ५० वर्षों का कार्य-विवरण रहेगा, जिसमें निम्नलिखित बातों का समावेश होगा :—

१. सभा की स्थापना से पूर्व हिंदी की अवस्था।

२. सभा की स्थापना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ॥ ४१ ॥ में योजन (measurement) का मूल्य दिया गया है। आज-कल का योजन आर्यभट के योजन से मिलता है। आजकल जैसे Standarrd Meridian Greenwich तथा Standard time के अनुपात से समय तथा भूपरिधि नापी जाती है उसी प्रकार भास्कराचार्य के अनुसार लंका की उत्तर-दक्षिण रेखा Standard Meridian तथा लंका की अर्धरात्रि को प्रामाणिक (standard) माना गया था। सूर्य-सिद्धांत में उज्जैन की वारप्रवृत्ति को माना है पर भास्कराचार्य[1] ब्रह्मगुप्त[2] इत्यादि ने लंका की वारप्रवृत्ति को माना। आजकल इसी सिद्धांत को मानते हैं। आज कल अर्धरात्रि से तारीख बदलती है, इससे कहते हैं कि यह मत अँगरेजों से लिया गया है। पर यह प्रथा यहाँ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थी। ॥ ६७ ॥ में ग्रहों के विक्षेप (orbital angle) की सूची दी गई है। इससे जब ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत[3], महासिद्धांत[4], सिद्धांतदर्पण[5] तथा आधुनिक सूची[6] की तुलना की जाय तो बहुत ही अंतर पाया जाता है। इसका कारण यह था कि पहले मान भूकेंद्रगत (geocentric) और अब विक्षेपमान रविकेंद्रगत (heliocentric) माना जाता है। सूर्यसिद्धांत के द्वितीय ग्रंथ में trigonometry के प्रायः सारे मूल सिद्धांत कुछ सारिणी तथा ज्या (sine) सारिणी ॥ १७–२१ ॥ तक में दिए गए हैं। उस समय केवल ज्या तथा कोटिज्या (sine and cosine) का ही व्यवहार था। सूर्यसिद्धांत के दूसरी पुस्तक के ॥ ३–११ ॥ श्लोकों से ज्ञात होता है कि ज्योतिषियों को आकर्षण शक्ति का पूर्ण ज्ञान था। इसी के आधार पर कह सकते हैं कि आकर्षण शक्ति के सिद्धांत के आविष्कारक न्यूटन (Newton) नहीं कहे जा सकते, बल्कि प्राचीन ज्योतिषाचार्य ही कहे जा सकते हैं। उन्हें चाहे यह ठीक ठीक विदित न हो कि पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ में यह आकर्षण शक्ति

---

१ सिद्धांतशिरोमणि ॥ १५ ॥ २ ब्रह्मस्फुटसिद्धांत ॥ ३३ ॥

३ पृ० १७५, २१२, ४ ॥ ३९ ॥ ५ ॥३२–३३ ॥

६ Sir Robert Ball's Spherical Astronomy pg 491.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम करती है या केवल ग्रहों से ही इसका संबंध है। आकर्षण सिद्धांत के व्यापक नियम के आविष्कारक न्यूटन (Newton) थे। हमारे यहाँ यह मान्यता के रूप में ही रह गया, न्यूटन ने इसे सिद्धांत रूप दिया। केपलर ने १६०९-१६१९ ई० में तीन नियम दिए थे। ७५ वर्ष के बाद न्यूटन ने केपलर के नियमों का मौलिक कारण आकर्षण शक्ति बताया। न्यूटन के सारे सिद्धांत केपलर के सिद्धांत के अंतर्गत हैं। आचार्यों को यह भी पता था कि ग्रहों की गति के बदलने का कारण केवल आकर्षण शक्ति ही नहीं है, बल्कि वृत्त (orbit) की च्युति (eccentricity and obliquity) भी है। इतनी सूक्ष्म गणना दृक्तुल्यता से की जाती थी। दृक्तुल्यता का अर्थ केवल दृष्टि द्वारा वेध (observation) ही नहीं, वरन् अदृश्य दृष्टि से भी है। अदृश्य वेध ऋषियों ने अपने योगबल से निकाला था। द्वितीय ग्रंथ के ॥ २८ ॥ में नेपियर (Nepier) के नियम दिए गए हैं। यह नियम नेपियर के कम से कम एक हजार वर्ष पहले भारतीयों को विदित था। इसी से पता चलता है कि spherical Trigonometry कितना उन्नत था। उस समय का एक और महत्त्वपूर्ण दान था वसंत संपात (vernal equinox) की गति की गणना करना। ब्रह्मांड को यदि एक महान् गोलक (sphere) माना जाय और उसके बीच रेखा (equatorial orbit) को सदा एक ही तल में माना जाय तो उसके साथ किसी भी ग्रह के वृत्ततल (orbital plane) के मिलन बिंदुओं में से एक बिंदु को वसंत संपात कहेंगे, जैसे—

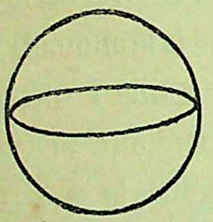

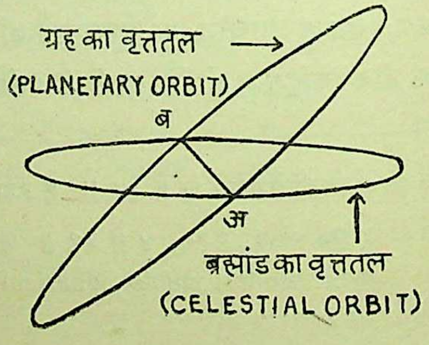

अ बिंदु को वसंत संपात कहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरायण तथा दक्षिणायन (winter and summer solistice) इसी संपात के कारण होता है। भास्कराचार्य ने precession of equinox को अयन चलन कहा है। अयन चलन के संबंध में प्राचीन ज्योतिषियों में बड़ा ही मतभेद है। सूर्यसिद्धांत का मत है कि नक्षत्र-चक्र का आदि बिंदु (first point of aris) लोलक (pendulum) की तरह वसंतसंपात के दोनों ओर २७° में आंदोलित (oscilate) होता है[1] और १८०० सौर वर्षों (solan year) में पूर्ण आंदोलित होता है। अयन चलन का कारण कहीं नहीं दिया गया है। आर्यभट[2] तथा पराशर[3] ने कुछ भिन्न अंश बताए। ब्रह्मगुप्त ने इसका उल्लेख भी नहीं किया, इसका कारण भास्कराचार्य यह बताते हैं कि उस समय इसका अंतर बहुत कम था। इसकी गणना यूनानी ज्योतिषी Hipparchus ने विक्रम संवत् के ७० वर्ष में की थी। उन्होंने इसे ३६ विकला की बताई[4]। टोलमी[5] (Ptolemy) ने विक्रम की तीसरी शताब्दी के आरंभ में संपात की गति का निश्चय किया था। अल-बटानी नामक अरब के राजकुमार ने ९३७ विक्रम में इसे ५५·५ विकला की बताई। इसके बाद नासिरुद्दीन[6] ने, जो ईरान में १४वीं शताब्दी में हुआ था, इसे ५१ विकला की बताई। आधुनिक गणितज्ञों ने १८८२ ई० में इसे ५०″२ का बताया। हमारे ज्योतिषियों ने इसे एक कला या ६० विकला की बताई है। अर्थात् इसमें केवल १·५६८ विकला का ही दोष है। इससे प्रकट होता है कि हमारे आचार्यों ने अपने स्वतंत्र ढंग से अयन (precession) की गति इतनी सूक्ष्म निकाली थी कि उसमें इतनी कम मात्रा का ही दोष (error) रह

---

१ गोलाध्याय पृ० ५५।

२ भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ० ३२८।

३ महासिद्धांत पृ० ६,४५, ५७।

४ Bevryjs' short history of astronomy p 51-52

५ " " " " 68-69

६ " " " " 81-82

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। इसी प्रकार अक्ष-विचलन (nutation) के कारण न जानते हुए भी उसकी सूक्ष्म गति बता दी गई। भास्कराचार्य ने लंबन (parallax) निकालने की जो रीति दी है वह बहुत ही सरल है और आज-कल के नियम से मिलती है। भूल उनकी यह थी कि वे ग्रहों की रेखात्मक गति को समान मानते थे। यद्यपि भास्कराचार्य की सारिणी (table) में और आज-कल के लंबन की सारिणी में बहुत अंतर है, फिर भी सिद्धांत में वह ठीक है। यह सूर्य और चंद्र ग्रहण निकालने के लिये प्रयुक्त होता था पर आज कल ग्रहों की दूरी भी नापी जाती है।

इस प्रकार के कितने ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं सूक्ष्म आविष्कारों का भारत में जन्म हुआ परंतु उनको सुरक्षित रखने की चेष्टा नहीं हुई तथा विषय की दृष्टि से गंभीर अध्ययन-अध्यापन न होने के कारण भारत का गौरव काल के विकराल ग्राल में पड़ गया। हमारा अब यह ध्येय होना चाहिए कि भारत की खोई हुई निधियों को निकाल कर उनकी उज्ज्वलता से भारत का मुख उज्ज्वल करें और संसार का उपकार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की प्रगति

सभा के सभासद

सभा को प्रसन्नता है कि पिछले कई वर्षों से उसके सभासदों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। आशा है, कृपालु सभासद अपने हिंदी-प्रेमी मित्रों को सभासद बनाकर तथा हिंदी-प्रेमी सज्जन अधिक से अधिक संख्या में सभासद बनकर वृद्धि का यह क्रम जारी रखेंगे। बीकानेर के उत्साही सभासद अध्यापक रामलौटनप्रसाद जी की प्रेरणा और प्रयत्न से पिछले दो-तीन वर्षों में ही वहाँ लगभग २५० सभासद बन गए हैं तथा उत्तरोत्तर नवीन सभासद बनते जा रहे हैं। इस छमाही में ५४ नवीन सभासद बने। इस सद्भाव के लिये सभा अध्यापक जी को हार्दिक धन्यवाद एवं उनकी अनुकरणीय लगन तथा सफलता के लिये उन्हें बधाई देती है। अपने अन्य शुभेच्छु सभासदों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए सभा आशा करती है कि उनका क्रियात्मक सहयोग उसे शीघ्र प्राप्त होगा और देश की हिंदी-प्रेमी जनता अधिकाधिक संख्या में सभासद बनकर उसका हाथ बटाएगी।

पुस्तकालय

माघ १९९८ के अंत में हिंदी की मुद्रित पुस्तकों की संख्या १६२५४ थी। श्रावण १९९९ के अंत में १६३६१ हो गई। फाल्गुन १९९८ से श्रावण १९९९ तक ६ मास की अवधि में ३३ नए सहायक बने और ४१ सहायकों ने अपना नाम कटा लिया। इस प्रकार श्रावण के अंत में सहायकों की संख्या १४२ रही। इस अवधि में पुस्तकालय १४९ दिन और वाचनालय १८३ दिन खुला रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र तथा पुस्तकें भेंट करने के लिये लेखकों, प्रकाशकों आदि को ६८ पत्र लिखे गए जिनमें २२ में सफलता प्राप्त हुई। जिन कृपालु सज्जनों ने पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता की, सभा उन सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है। इस वर्ष १०७=) की पुस्तकें क्रय की गईं।

श्री गोपालदास, अन्हरी कोठी, काशी ने संस्कृत, हिंदी आदि की कई हस्तलिखित पुस्तकें सभा को प्रदान कीं। श्री महादेवप्रसाद रामगरीबलाल बरनवाल, घोसिया, पो० औराई, जिला मिरजापुर ने २३ हस्तलिखित पुस्तकें भेंट कीं जिनमें कई पुस्तकें विशेष महत्त्व की हैं। इनके अतिरिक्त डा० हीरानंद शास्त्री महोदय ने अपने बहुमूल्य पुस्तक-संग्रह का एक विशेष अंश, जिसमें २५५ हस्तलिखित और ४४० मुद्रित पुस्तकें हैं, सभा को प्रदान करने की कृपा की है। इन उदार दाताओं के प्रति सभा हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

हिंदी-विभाग में संवत् १९९७ तक प्राप्त पुस्तकों की विषयानुसार दाशमिक वर्गीकृत सूची छपने के लिये प्रस्तुत हुई थी। अब संवत् १९९८ में प्राप्त पुस्तकें भी उक्त सूची में यथास्थान जोड़ दी गई हैं। कागज न मिलने के कारण इस सूची की छपाई में हाथ नहीं लग सका था। अब शीघ्र ही छपाई आरंभ हो जायगी।

श्री सेठ रामकृष्ण डालमिया जी ने अपने यहाँ का बना ८० रीम न्यूजप्रिंट कागज पुस्तकालय की सूची प्रकाशित करने के लिये प्रदान करने की कृपा की है। श्री डालमिया जी की इस कृपा के लिये सभा उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती है। उनकी अनुमति से इस कागज के परिवर्तन में और अच्छा कागज प्राप्त करने का उद्योग किया जा रहा है।

खोज विभाग

इलाहाबाद नगर में खोज का कार्य समाप्त करने के उपरांत इस क्षेत्र के कार्यकर्त्ता श्री महेशचंद्र गर्ग, एम० ए०, इलाहाबाद जिले में खोज का कार्य करने के लिये भेजे गए थे, किंतु २० आषाढ़ तक कार्य करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपरांत उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर नवीन कार्यकर्ता नियुक्त करने का प्रबंध किया जा रहा है और आशा है, वहाँ शीघ्र पुनः कार्य आरंभ हो जायगा। श्री दौलतराम जुयाल आजमगढ़ में कार्य कर रहे हैं।

सभा की प्रबंध-समिति के २ श्रावण के अधिवेशन में इस वर्ष के लिये प्रांतीय संग्रहालय (लखनऊ) के संग्रहाध्यक्ष डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, सभा के खोज-विभाग के निरीक्षक तथा काशी-विश्वविद्यालय के अध्यापक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र संयुक्त निरीक्षक चुने गए।

भारत कला-भवन

राजघाट (काशी) की खोदाई में प्राप्त वस्तुओं के प्रदर्शन के लिये जो कमरा बन रहा था वह पूरा हो गया है और उसमें उक्त वस्तुएँ सजाई जा रही हैं। मोहें जो दड़ो से प्राप्त वस्तुएँ प्रदर्शनार्थ अलग सुंदर आलमारियों में सजा दी गई हैं। पहाड़ी चित्रों का संग्रह बढ़ाने का उद्योग जारी है।

रावबहादुर श्री के० एन० दीक्षित (पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेक्टर-जनरल) तथा श्री माधोस्वरूप वत्स (पुरातत्त्व-विभाग के उत्तरी क्षेत्र के सुपरिंटेंडेंट) ने ३० आषाढ़ को कलाभवन का निरीक्षण किया। इस छमाही में कला-भवन को २५) वा उससे अधिक की सहायता प्रदान करनेवाले सज्जनों के नाम आगे दाताओं की सूची में दिए हुए हैं।

प्रकाशन

तर्कशास्त्र भाग २, गोस्वामी तुलसीदास तथा हिंदी निबंधमाला भाग १, ये तीन पुस्तकें पुनर्मुद्रित हुईं एवं प्रकीर्णक पुस्तकमाला में भारतीय सृष्टि-क्रमविचार, बालाबक्ष राजपूत चारण पुस्तकमाला में राजरूपक तथा नवभारतीय ग्रंथमाला में हिंदू राज्य-तंत्र भाग २, ये तीन नवीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 'रत्नाकर' सस्ते रूप में पुनर्मुद्रित हो रहा है जिसका एक भाग प्रकाशित हो गया; कागज के अभाव में अभी दूसरा भाग। नहीं छप सका। हिंदी-साहित्य का इतिहास छप गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवभारतीय ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिये श्री सेठ बाबूलाल राजगढ़िया ने सभा में १००१) की एक निधि स्थापित कर दी है। हिंदू राज्य-तंत्र भाग २ इस माला का प्रथम ग्रंथ है।

श्री राजगढ़िया जी के प्रस्ताव पर सभा ने वर्तमान हिंदी-लेखकों और उनकी रचनाओं की एक सूची प्रकाशित करना स्वीकार किया है। इसके आरंभिक व्यय के लिये श्री राजगढ़िया जी ने ५०) प्रदान किया है। इसके लिये सामग्री-संकलन का कार्य आरंभ हो गया है।

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर का संशोधन समाप्त हो गया है, किंतु जो संस्करण छप रहा है उसमें विशेष कारणों से संशोधनों का समावेश नहीं हो सका। केवल नए शब्द अंत में परिशिष्ट के रूप में दिए जायँगे। अगला संस्करण संशोधित और प्रवर्धित रूप में प्रकाशित होगा।

हिंदी शब्दसागर का संशोधन हो रहा है।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकों का प्रकाशन सभा ने स्वीकार किया है—

(१) पृथ्वीराज रासो (बीकानेरवाली प्रति), संपादक श्री दशरथ शर्मा और श्री मीनाराम रंगा।

(२) वास्तु-कला, ले० श्री परमेश्वरीलाल गुप्त।

(३) नंददास ग्रंथावली, सं० श्री व्रजरत्नदास।

(४) हिंदी शब्दसागर, दूसरा भाग (संशोधित और प्रवर्धित रूप में)।

पुरस्कार और पदक

निर्णायकों की सम्मति के अनुसार सभा ने निम्नलिखित पुरस्कार और पदक नीचे लिखी रचनाओं पर उनके रचयिताओं को प्रदान करना स्वीकार किया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कार-पदक	पुस्तक	रचयिता
(१) द्विवेदी-स्वर्ण पदक (सं० १९९७)	भारत की चित्रकला	श्री राय कृष्णदास
(२) बिड़ला-पुरस्कार और रेडिचे-पदक (सं० १९९७)	बाल-मनोविज्ञान	पं० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०
(३) बटुकप्रसाद पुरस्कार और सुधाकर-पदक (सं० १९९८)	नारी	श्री सियारामशरण गुप्त

भारतीय संस्कृति के परम उपासक स्व० श्री विनायक नंदशंकर मेहता की स्मृति में सभा ने एक पुरस्कार देने का निश्चय किया है। द्रव्य का प्रबंध हो जाने पर यह पुरस्कार भी दिया जाने लगेगा।

वार्षिक अधिवेशन

१ ज्येष्ठ सं० १९९९ को सभा का ४९वाँ वार्षिक अधिवेशन संपन्न हुआ। रायबहादुर साहित्यवाचस्पति बाबू श्यामसुंदरदास को काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टर अव लेटर्स' की उपाधि से विभूषित किए जाने के उपलक्ष्य में उनका अभिनंदन किया गया। कोटा के स्वर्गीय नरेश श्रीमान् महाराज लफ्टिनेंट कर्नल उम्मेदसिंह जी बहादुर सभा के पुराने और बड़े ही शुभेच्छु संरक्षक थे। उनका सा हिंदी-प्रेम इने-गिने नरेशों में ही देखने को मिलता है। अनेक अवसरों पर उन्होंने खुले दिल से सभा की सहायता की थी। सभा को इस बात का संतोष है कि वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज महाराज महिमहेंद्र महाराव राजाजी श्री भीमसिंह जी साहब बहादुर हिंदी के प्रति वैसे ही कृपालु और सदय हैं। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक सभा का संरक्षक होना स्वीकार कर लिया और वार्षिक अधिवेशन में वे सर्वसम्मति से संरक्षक चुने गए। उनके लिये एवं श्रीमन्महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह जी (सीतामऊ) के लिये, जिनकी सत्प्रेरणा से श्रीमान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोटा-नरेश ने सभा का संरक्षक होना स्वीकार किया, धन्यवाद के प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

उक्त अधिवेशन में निम्नलिखित सज्जन सभा के पदाधिकारी और प्रबंध समिति के सदस्य चुने गए—

पदाधिकारी

सं० १९९९

सभापति	श्री बाबू संपूर्णानंद
उपसभापति	श्री पं० रामनारायण मिश्र
उपसभापति	श्री रायबहादुर सेठ रामदेव चोखानी
प्रधान मंत्री	श्री बाबू रामचंद्र वर्मा
साहित्य मंत्री	श्री बाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़
अर्थ मंत्री	श्री बाबू जीवनदास
आय-व्यय-निरीक्षक	श्री बाबू गुलाबदास नागर

प्रबंध-समिति के सदस्य

सं० १९९९ से सं० २००१ तक

१. श्री बाबू बैजनाथ केडिया, साक्षी विनायक, काशी।

२. श्री पं० केशवप्रसाद मिश्र, भदैनी, काशी।

३. श्री बाबू ठाकुरदास, ऐडवोकेट, बी० ए०, एल-एल० बी०, राजा दरवाजा, काशी।

४. श्री राय साहब ठाकुर शिवकुमारसिंह, बैजनत्था, काशी।

५. श्री बाबू व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील, सुड़िया, काशी।

६. श्री शंकरदेव विद्यालंकार, गुरुकुल विद्यामंदिर, सूपा, वाया नवसारी, सूरत।

७. श्री व्योहार राजेंद्रसिंह, एम०-एल० ए०, साठिया कुआँ, जबलपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. श्री रावबहादुर सरदार माधवराव विनायक किबे, सी० आई० ई०, इंदौर।

९. श्री पं० श्यामसुंदर उपाध्याय, सेक्रेटरी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, बलिया।

१०. श्री पं० अमरनाथ काक, एम० ए०, एल-एल० बी०, ऐडवोकेट, श्रीनगर, कश्मीर।

११. श्री ना० नागप्पा, एम० ए०, ९४४ चामुंडी बढावण, मैसूर।

१२. श्री डा० हीरानंद शास्त्री एम० ए०, पुष्पबाग, बड़ोदा।

१३. श्री सत्यनारायण, दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा, पो० त्यागरायनगर, मद्रास।

सं० १९९९ से २००० तक

१४. श्री अशोकजी, एम० ए०, ११, बुलानाला, काशी।

१५. श्री राय कृष्णदास, शांतिकुटीर, काशी।

१६. श्री बाबू मुरारिलाल केडिया, नंदन साहु की गली, काशी।

१७. श्री पं० विद्याभूषण मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०, मामूरगंज, काशी।

१८. श्रीमती कमलाकुमारी, सराय गोवर्द्धन, काशी।

१९. श्री डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ।

२०. श्री पं० अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०, सनातनधर्म इंटर० कालेज, कानपुर।

२१. श्री पं० रामेश्वर गौरीशंकर ओझा, एम० ए०, ढड्ढों की हवेली, अजमेर।

२२. श्री पुरोहित हरिनारायणजी शर्मा, बी० ए०, विद्याभूषण, तहबीलदार का रास्ता, जयपुर।

२३. श्री स्वामी हरिनामदास उदासीन, श्री साधुवेला तीर्थ, सक्खर, सिंध।

२४. श्री पं० दशरथ ओझा, माडर्न हाई स्कूल, नई दिल्ली।

२५. श्री सत्यनारायण लोया, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील हाई कोर्ट, रेजिडेंसी रोड, हैदराबाद, दक्षिण।

२६. श्री जी० सच्चिदानंद, १०५५, नंजराज अग्रहर, मैसूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १९९९

२७. डा० राजेंद्रनारायण शर्मा, सराय गोवर्द्धन, काशी।

२८. श्री बाबू सहदेव सिंह, ऐडवोकेट, बड़ी पियरी, काशी।

२९. श्री राय सत्यव्रत, लहरतारा, बनारस छावनी।

३०. श्री कृष्णानंद, एम० ए०, बी० टी०, ३/१७८ अर्दली बाजार, बनारस छावनी।

३१. श्री पं० चंद्रबली पांडे, एम० ए०, ठि० मुंशी महेशप्रसाद आलिम फाजिल, नगवा, बनारस।

३२. श्री मूलचंद्र अग्रवाल, विश्वमित्र कार्यालय, १४/१ शंभू चटर्जी स्ट्रीट, पो० बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

३३. डा० सच्चिदानंद सिनहा, बार-ऐट-ला, एल-एल० डी०, पटना।

३४. श्री पं० जगद्धर शर्मा गुलेरी, एम० ए०, एल-एल० बी०, पंजाब कृषि महाविद्यालय, लायलपुर।

३५. श्री रायबहादुर पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, दारागंज, प्रयाग।

३६. श्री पं० भोलानाथ शर्मा, एम० ए०, बरेली कालेज, बरेली।

३७. श्री पं० विद्याधर शास्त्री, एम० ए०, प्रोफेसर, डूँगर कालेज, बीकानेर।

३८. श्रीमती रमादेवी जैन, डालमियानगर, बिहार।

सभा की अर्द्धशताब्दी

और

महाराज विक्रम की द्विसहस्राब्दी

उपर्युक्त आयोजनों की तैयारी हो रही है। इस अवसर पर प्रकाशित होनेवाली रिपोर्ट की रूपरेखा तथा आयोजनों की कार्यसूची इस अंक के साथ है। तदनुसार अर्द्धशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित होनेवाली रिपोर्ट के प्रथम भाग की तैयारी के लिये, जिसमें आवश्यक परिशिष्टों सहित सभा का ५० वर्षों का कार्य-विवरण आदि रहेगा, एक उपसमिति बना दी गई है जो इसका आवश्यक प्रबंध कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ ज्येष्ठ की साधारण सभा के निश्चय के अनुसार सभा की अर्द्ध-शताब्दी और महाराज विक्रम की द्विसहस्राब्दी का कार्य सुचारु रूप से करने के लिये सभा में एक अलग अस्थायी विभाग खोल दिया गया है। इस विभाग में एक योग्य वैतनिक कार्यकर्ता की नियुक्ति कर ली गई है और कार्य नियमित रूप से हो रहा है। पंचांग शोध समिति भी अपने कार्य में संलग्न है। इस विषय में अब तक जो कार्य हुआ है उससे आशा की जाती है कि इस जटिल समस्या को सुलझाने में अंततः सफलता प्राप्त होगी।

स्थायी कोष

श्रावण १९९९ के अंत में सभा के स्थायी कोष में जो धन जमा रहा, उसका ब्योरा निम्नलिखित है :—

१७०००) के स्टाक सर्टिफिकेट, ट्रेजरर, चैरिटेबल एंडाउमेंट्स, संयुक्त प्रांत के पास
६१०।।।) बनारस बंक में
१५५।।।=) ५ इलाहाबाद बंक में
२५२२।।।-) ५ पोस्ट आफिस सेविंग बंक में

२०२८९।।) १०

१ फाल्गुन १९९८ से ३१ श्रावण १९९९ तक सभा को २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन-प्रयोजन
४ फाल्गुन ९८	श्री कुँवर लाल रत्नाकर सिंह, काशी	१००) स्थायी कोष
४ ,, ,, २५ वैशाख ९९ १५ ज्येष्ठ ,, ८ आषाढ़ ,,	श्री राय कृष्णदास जी, काशी	२३२) कलाभवन
१२ फाल्गुन ९८	श्री किशनलाल पोद्दार, काशी	५१) हिंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति तिथि	दाता का नाम	धन-प्रयोजन
१८ फाल्गुन ९८	श्री रंजन जी, प्रयाग	२५) कलाभवन
२२ ,, ,,	श्री रावबहादुर माधवराव विनायक-राव किबे, इंदौर	१००) स्थायी कोष
२३ ,, ,,	श्री बनारसीदास केडिया, कलकत्ता	३१) नागरी प्रचार
२५ ,, ,,	श्रीमती रमादेवी जैन, डालमियानगर	५००) अर्द्धशताब्दी
२८ ,, ,, ५ चैत्र ,,	म्युनिसिपल बोर्ड, बनारस	१८०) पुस्तकालय
३० फाल्गुन ९८	वेदशास्त्र संरक्षक मेहता श्री मुरारीलाल जी, काशी	१०१) कलाभवन
१३ चैत्र ,,	श्री श्यामलाल बाँठिया, बीकानेर	१०१) स्थायी कोष
१६ ,, ,,	श्री सीताराम खेमका, दिल्ली	१००) स्थायी कोष
१८ ,, ,,	श्री बा० ठाकुरदास वकील, काशी	६०) फुटकर
२६ ,, ,,	श्री रा० ब० कौशलकिशोर जी, प्रयाग	१००) स्थायी कोष
२८ ,, ,,	श्री बदरीदास गोयनका, कलकत्ता	५००) कलाभवन
१० वैशाख ९९	श्री रेव० पं० अयोध्याप्रसाद, बी० ए०, कलकत्ता	१००) स्थायी कोष
११ ,, ,,	श्री बाबूलाल राजगढ़िया, कलकत्ता	१००१) नवभारतीय ग्रंथमाला तथा ५०) वर्तमान लेखक और उनकी कृतियाँ
१४ ,, ,,	श्री प्यारेलाल गर्ग, कानपुर	५००) महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रंथावली
१७ ,, ,, २८ ,, ,, १३ श्रावण ,, १९ ,, ,,	प्रांतीय सरकार	२५००) कलाभवन १०००) हिंदी पुस्तकों की खोज तथा ५००) पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति-तिथि		दाता का नाम	धन-प्रयोजन	
२२ वैशाख	९९	श्री ब्रजलाल अष्ठाना, गोरखपुर	१००)	स्थायी कोष
२८ ,,	,,	श्री श्रीप्रकाशजी तथा श्री चंद्रभालजी, काशी	१००)	कलाभवन
२९ ,,	,,	श्री रा० ब० हिम्मतसिंह के० माहेश्वरी, जम्मू	१००)	स्थायी कोष
१ ज्येष्ठ , ५ ,,	,,	श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, काशी	५०)	छपाई, प्रकाशन
८ ,,	,,	श्री के० एन० वांचू, आई० सी० एस०, जज, बनारस	१००)	स्थायी कोष
८ ज्येष्ठ	,,	श्री राव साहब केसरी सिंह पचौली, दीवान किशनगढ़, राजपूताना	१००)	स्थायी कोष
१४ ,,	,,	श्री रतनचंद कालिया, कानपुर	५००)	अर्द्धशताब्दी
२१ ,,	,,	श्री महाराजकुमार दिग्विजय सिंह, सैलाना	५००)	कलाभवन
२५ ,, १२ श्रावण	,,	श्री मूलचंद्र अग्रवाल, कलकत्ता	२००) २००)	अर्द्धशताब्दी कलाभवन
२७ ज्येष्ठ	,,	श्री श्रीविलास जी, काशी	२५)	,,
,, ,, १५ आषाढ़	,,	श्री सियारामशरण गुप्त, झाँसी	२२५)	,,
२७ ज्येष्ठ	,,	श्री राय कृष्णदास जी के द्वारा	२५)	,,
१ आषाढ़	,,	श्री रामनाथ सिंह, जबलपुर	१००)	स्थायी कोष
८ ,,	,,	श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया, कलकत्ता	५०)	कुएँ की मरम्मत
१५ ,,	,,	श्री बी० मलिक, प्रयाग	२५)	कलाभवन
२० ,,	,,	श्री सेठ रामप्रसाद भालोठिया, गोरखपुर	१००)	स्थायी कोष
२३ ,,	,,	श्री दुर्गाप्रसाद, डिप्टी कलक्टर, कानपुर	१००)	,, ,,
३२ ,,	,,	श्री प्रो० लालजीराम शुक्ल, काशी	९८॥≡)	छपाई, प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन	प्रयोजन
१ श्रावण ९९	श्री उमराव सिंह जी	१००)	कलाभवन
,, ,, ,,	श्री सीताराम शाह, काशी	५०)	,, ,,
,, ,, ,,	श्री श्रीनिवास शाह, काशी	२५)	,, ,,
७ ,, ,,	श्री सतीशचंद्र, आई० सी० एस०, प्रयाग	१००)	स्थायी कोष
८ ,, ,,	श्री श्रीनाथ शाह, काशी	५०)	कलाभवन
,, ,, ,,	श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता	२५०)	,, ,,
१३ ,, ,,	श्री डा० सद्गोपाल जी, प्रयाग	१००)	स्थायी कोष
१४ ,, ,,	श्री रा० ब० रामदेव चोखानी, काशी	२५)	कलाभवन
२० ,, ,,	श्री सर राधाकृष्णन्, काशी	५०)	,, ,,
२१ ,, ,,	श्री कृष्णाराम मेहता, प्रयाग	५०)	,, ,,
२३ ,, ,,	श्री रामकुमार भुवालका, कलकत्ता	१००)	,, ,,
२७ ,, ,,	श्री रामरत्न गुप्त, कानपुर	१०१)	अर्द्धशताब्दी

——

टि०—जिन सज्जनों के चंदे किस्त से आते हैं, उनके नाम पूरी रकम प्राप्त हो जाने पर प्रकाशित किए जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बाघ; विसर्ग :—यह तो संस्कृत में शब्दांत में प्रायः होता ही है, परंतु हिंदी में वह सदैव लुप्त हो जाता है, जैसे कसेरुः से कसेरु, बाहुः से बाँह, शिरः से सिर, चरणः से चरन।

(३) व्यंजनागम :—(अ) आदिव्यंजनागम :—ह :—ओष्ठ से होठ, अस्थि से हड्डी, इत्यादि।

(आ) मध्यव्यंजनागम :—प्राय: 'क' का हिंदी में आगम हो जाता है, जैसे सुख से सुक्ख, दुःख से दुक्ख (उच्च०)। कभी कभी अकारण ही संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में अनुस्वार का आगम हो जाता है जैसे, श्वास से साँस, उष्ट्र से ऊँट, अश्रु से आँसू।

(इ) अंत्यव्यंजनागम :—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों के अंत में प्रायः क व ल ह ड़ का आगम हो जाता है। क :—अमूल्य से अमोलक; व:—वीरुत् से बिरवा; ल:—बक से बगुला; ह :—भ्रू से भौंह, चिल्ल से चील्ह; ड़ :—अंक से आँकड़ा, पत्र से पंखड़ी। कभी कभी अकारण ही (ं) का आगम हो जाता है, जैसे यूका से जूं, भ्रू से भौं इत्यादि।

(४) व्यंजन-विपर्यय :—हिंस्र से सिंह, लघुक से हलुक, परिधान से पहिरना, ब्राह्मण से बाम्हन (बो०), गृह से घर, चिह्न से चिन्ह, इत्यादि।

(५) समीकरण :—पक्व से पक्का, धूर्त से धुत्ता, सक्तु से सत्तू, तप्त से तत्ता, उज्ज्वल से उज्जल इत्यादि।

(६) विषमीकरण :—मत्त से मस्त, काक से काग, दरिद्र से दलिद्र (बो०), नवनीत से लौनी, इत्यादि।

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि उक्त विकार-संबंधी नियम सर्वत्र और सदैव ही लगें। अन्य ध्वनि-नियमों की भाँति इनकी भी सीमाएँ हैं जो अपवाद-स्वरूप प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ शब्दांत में आनेवाले 'अ' का हिंदी उच्चारण में लोप हो जाने का नियम है, परंतु उसके साथ यह भी उपनियम है कि यदि 'अ' के पूर्व संयुक्त व्यंजन हो, जैसे हस्त, अम्ल, कृष्ण आदि में, अथवा अ, य से युक्त हो और उसके पूर्व इ ई ऊ हो जैसे प्रिय, तृतीय, सूर्य आदि में, तो 'अ' का उच्चारण में लोप नहीं होता। इसी प्रकार ष के ख हो जाने का नियम है, परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके साथ यह भी प्रतिबंध है कि जिन शब्दों के मूल धातुओं में ष् होता है उनमें वह अपरिवर्तित रहता है, जैसे पुष् धातु से निर्मित पुष्ट, पौष आदि तथा शिष् धातु से निर्मित शिष्य, शेष आदि शब्दों में ष अविकृत रहता है।

फारसी

भारत में मुसलमानी शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत में आने पर ११-१२ वीं शताब्दी में हुआ। अरबी-तुर्की शब्द सीधे हिंदी में नहीं आए। वे सब फारसी में से हो कर आए हैं। ७ वीं शताब्दी में ईरानियों के अरबियों द्वारा पराजित होने पर ईरान राज्य में अरबी सभ्यता के साथ साथ इस्लाम धर्म का प्रचार भी हुआ। इस धार्मिक आंदोलन के कारण सहस्रों अरबी-तुर्की शब्द फारसी में आ गए। अतः हिंदी में आने के पूर्व अरबी-तुर्की शब्दों की मूल-ध्वनियाँ नष्ट-प्राय हो चुकी थीं और उनका रूप फारसी के समान हो गया था। अतः हम समस्त मुसलमानी शब्दों को व्यावहारिक दृष्टि से फारसी मान-कर फारसी-हिंदी संबंधी ध्वनि-परिवर्तनों का विवेचन करेंगे।

हिंदी और फारसी में कुछ ध्वनियाँ तो समान हैं, परंतु कुछ में भेद है। संस्कृत में फारसी خ ژ (ز ض ظ) ع غ ف ق आदि के लिये कोई ध्वनि न थी, परंतु हिंदी में उनके लिये क्रमशः ख़ ज़ अ़ ग़ फ़ क़ आते हैं। प्रत्येक विदेशी भाषा की ध्वनियों को अपनी ग्राहक भाषा की ध्वनियों के अनुसार परिवर्तित होना पड़ता है, अतः कुछ फारसी शब्द तो तदनुसार विकृत हो ही जाते हैं। परंतु अनेक इस कारण भी परिवर्तित हो जाते हैं कि हिंदी विद्वानों का मत है कि फारसी आदि विदेशी शब्दों को हिंदी रूप देकर प्रयुक्त किया जाय और यह ठीक भी है। इस प्रकार फारसी शब्दों के हिंदी में आने पर उनमें अनेक ध्वनि-परिवर्तन हो जाते हैं।

१—स्वर-विकार :—(१) विशेष विकार :—अ (´, ज़बर) :—फारसी विवृत अग्रस्वर 'अ' हिंदी में अर्द्ध-विवृत अर्द्धस्वर 'अ' हो जाता है, जैसे نوکر (नौकर) से नौक´र, هنر (हुनर) से हुनर, इत्यादि। यह भेद इतना सूक्ष्म है कि भाषावैज्ञानिकों तथा ध्वनितत्त्व के ज्ञाताओं के अतिरिक्त अन्य साधारण व्यक्ति इसे शीघ्र नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। कभी कभी 'अ', आ उ में परिवर्तित हो जाता है, जैसे अ—>आ :—تلاش (तलाश) से तालाश, دوات (दवात) से दावात, اسامي (असामी) से आसामी; अ—>उ :—پلاو (पलाव) से पुलाव, محاورہ (महावरह्) से मुहावरा।

अ़ (ع) :—फा० अ़ हिं० में प्रायः अ आ हो जाता है, जैसे अ़—>अ :—عقل (अ़क्ल) से अक्ल अथवा अकल, عرق (अ़रक़) से अर्क, عطار (अ़त्तार) से अत्तार; अ़—>आ :—تعصب (तअ़स्सुब) से तास्सुब, تعلق (तअ़ल्लुक़) से ताल्लुक, تعداد (तअ़दाद) से तादाद, معاملہ (मुआ़मलह) से मामला, इत्यादि।

आ (ا) :—फ़ा० आ प्रायः अपरिवर्तित रहता है, जैसे تاج (ताज) से ताज, راے (राए) से राए, جاجم (जाजम) से जाजम, इत्यादि। कभी कभी आ का अ हो जाता है, जैसे آچار (आचार) से अचार, مالیدہ (मालीदह) से मलीदा, داروغہ (दारोग़ा) से दरोगा, باورچي (बावर्ची) से बवर्ची इत्यादि।

इ (ِ, ज़ेर) :—फा० इ प्रायः अपरिवर्तित रहती है, जैसे رياست (रियासत) से रियासत, حصہ (हिस्सा) से हिस्सा, इत्यादि। कभी कभी इ का अ हो जाता है जैसे محنت (मिहनत) से महनत, صاحب (साहिब) से साहब, इत्यादि।

ई (ي) :—फा० ई अपरिवर्तित रहती है, जैसे ايمان (ईमान) से ईमान, دليل (दलील) से दलील। परंतु कभी कभी उच्चारण में ई का इ हो जाता है, जैसे ديوانہ (दीवाना) से दिवाना, ديوار (दीवार) से दिवाल, ديوان خانہ (दीवानख़ाना) से दिवानखाना, इत्यादि।

उ (ُ पेश) :—फा० उ हिं० में उ, अ, ऊ, ओ हो जाता है, जैसे उ—>उ :—منشي (मुंशी) से मुंशी, فرصت (फ़ुर्सत) से फ़ुर्सत; उ—>अ :—محکمہ (मुहकमा) से महकमा, حکومت (हुकूमत) से हकूमत, زبان (ज़ुबान) से जबान; उ—>ऊ :—دکان (दुकान) से दूकान; उ—>ओ :—مہرہ (मुहरा) से मोहरा, محبت (मुहब्बत) से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहब्बत, مہر (मुहर) से मोहर, محمد (मुहम्मद) से मोहम्मद, محلہ (मुहल्ला) से मोहल्ला, محتاج (मुहताज) से मोहताज इत्यादि।

ऊ (اُ) :—फा० ऊ प्रायः अपरिवर्तित रहता है, जैसे خون (.खून) से खून, خوب (.खूब) से खूब; परंतु कभी कभी ह्रस्व हो जाता है, जैसे صابون (साबून) से साबुन।

फा० अइ अउ हिंदी में क्रमशः ऐ औ हो जाते हैं, जैसे अइ—>ऐ :—طیار (तइयार) से तैयार, شیطان (शइतान) से शैतान; अउ—>औ :—اوسط (अउसत) से औसत, موسم (मउसम) से मौसम।

(२) स्वर-लोप :—फा० अ उ व का हिं० में प्रायः लोप हो जाता है। अ :—امیر (अमीर) से मीर, احاطہ (अहाता) से हाता, شاباش (शाबाश) से शाबश, خشخاش (खशखाश) से खशखश, حوالدار (हवालदार) से हवलदार, مرض (मरज़) से मर्ज, غرض (ग़रज़) से गर्ज; उ: —ترک (तुरुक) से तुरक अथवा तुर्क, کمک (कुमुक) से कुमक; अर्द्ध स्वर व् :—موافق (मुवाफ़िक़) से माफिक, خوان (.ख्वान) से (दस्तर-)खान।

(३) स्वरागम :—फारसी शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः अ उ का आगम हो जाता है। अ :—عمر (उम्र) से उमर, صبر (सब्र) से सबर, ختم (खत्म) से खतम; उ :—حکم (हुक्म) से हुकुम।

(४) स्वर-विपर्यय, जैसे پاسنگ (पासंग) से पसंगा।

(५) मात्रा-भेद :—अ इ उ के दीर्घ अथवा आ ई ऊ के ह्रस्व होने के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

२—व्यंजन-विकार :—(१) विशेष विकार :—(अ) फा० क़ (ق), ख़ (خ), ग़ (غ), ज़ (ز ذ ض), फ़ (ف), श (ش) हिंदी रूप देने की धुन में क्रमशः क ख ग ज फ स कर दिए जाते हैं। क़—>क :— قلم (क़लम) से कलम, قینچی (.कैंची) से कैंची, قیمت (क़ीमत) से कीमत, چاقو (चाक़ू) से चाकू ; कभी कभी क़ ग में परिवर्तित हो जाता है, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

تقاضا (तक़ाज़ा) से तगादा, نقد (नक़द) से नगद, بقچہ (बुक़चा) से बुगचा ; ख़—> ख :—اخبار (अख़बार) से अखबार, خط (ख़त) से खत ; ग़—> ग :—بغل (बग़ल) से बगल, غریب (ग़रीब) से गरीब, باغ (बाग़) से बाग; ज़—> ज :—زلیبی (ज़लेबी) से जलेबी, زمین (ज़मीन) से जमीन ; कभी कभी ज़ द में भी बदल जाता है, जैसे کاغذ (काग़ज़) से कागद ; फ़—> फ :—فرصت (.फ़ुर्सत) से फुर्सत, فقیر (फ़क़ीर) से फकीर, فوج (फ़ौज) से फौज ; श—> स :—यद्यपि फा० श अपरिवर्तित रहता है, परंतु कभी कभी श का स हो जाता है, जैसे شربت (शर्बत्) से सर्बत, شیرہ (शीरा) से सीरा, پشہ (पश्शा) से पिस्सू।

(आ) फ़ारसी में शब्दांत में आनेवाली अनुच्चरित ہ (.ह) ध्वनि हिंदी में आ हो जाती है, जैसे اللہ (अल्लह्.) से अल्ला, راستہ (रास्तह.) से रास्ता, کنارہ (किनारह) से किनारा, آوارہ (आवारह) से आवारा, برادہ (बुरादह.) से बुरादा, इत्यादि ।

(इ) फा० क ग ज द न प ब र व कभी कभी हिं० में क्रमशः ख क ग त (ं) फ म ल म में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे क—> ख :—زکام (.ज़ुकाम) से जुखाम ; ग—> क :—چگن (चिगन) से चिकन, ज—> ग :—نارنج (नारंज) से नारंगी ; द—> त :—پلید (पलीद) से पलीत, مسجد (मसजिद) से मसीत (बो०), مردود (मरदूद) से मरदूत; शब्दांत में आनेवाला न अनुस्वार में परिवर्तित हो जाता है, जैसे خان (ख़ान) से खाँ, جوان (जवान) से जवाँ- (मर्द), میان (मियान) से (दर-) मियाँ; प—> फ :—پلیتہ (पलीता) से फलीता ; ब—> म :—بالائی (बालाई) से मलाई ; र—> ल :—دیوار (दीवार) से दीवाल, مرہم (मरहम) से मलहम ; व—> म :—پیوند (पैवंद) से पैमद, دیوانہ (दीवाना) से दिमाना (बो०), دیوان‌خانہ (दीवान-खाना) से दिमान-खाना (बो०); कभी कभी फा० न भी ल में बदल जाता है, जैसे ناچار (नाचार) से लाचार ।

(२) व्यंजन-लोप :—फारसी व्यंजनों के हिंदी में लुप्त होने के अनेक उदाहरण पाए जाते हैं, जैसे چبوترہ (चबूतरा) से चौतरा, مزدور

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मजदूर) से मजूर, زیادتی (ज़्यादती) से जात्ती (बो०), صاحب साहिब से (भाई) साब (बो०), ضد (ज़िद) से जिद, इत्यादि ।

(३) व्यंजनागम :—कभी कभी फारसी शब्दों के हिंदी रूपों में किसी किसी व्यंजन का आगम भी हो जाता है, जैसे الچی (इलाची) से इलायची, کمک (कुमुक) से कुम्मक, इत्यादि ।

(४) व्यंजन-विपर्य्यय :—कभी कभी फारसी शब्दों के हिंदी रूपों में व्यंजन-विपर्य्यय हो जाता है, जैसे تمغا (तमग़ा) से तगमा, امانت (अमानत) से अनामत, فتیلہ (फ़तीलह) से फलीता, इत्यादि ।

अँगरेजी

भारत में अँगरेजी राज्य होने तथा अँगरेजी के अंतर्राष्ट्रीय तथा भारत की भाषा होने के कारण अनेक अँगरेजी शब्द हिंदी में आ गए हैं। यद्यपि हिंदी में law तथा alone के 'a' के सूक्ष्म भेदों के द्योतक ध्वनि-चिह्न ऑ तथा अ' तक निर्मित हो गए हैं, तथापि अँगरेजी ध्वनियाँ विदेशी होने के कारण अपनी ग्राहक भाषा हिंदी के अनुसार कुछ न कुछ परिवर्तित हो ही जाती हैं।

१—स्वर-विकार:— (१) विशेष विकार : –(अ) u (अ), a (आ), i (इ), ee (ई), u अथवा oo (उ) तथा oo अथवा u (ऊ) का उच्चारण तो हिंदी में ठीक प्रकार हो जाता है, जैसे club, master, bill, speech, jubilee, boot आदि का उच्चारण हिंदी में क्रमशः क्लब, मास्टर, बिल, स्पीच, जुबली, बूट आदि की भाँति होता है; परंतु America के a अथवा butter के u, office के o अथवा chalk, walk आदि के a, law stall आदि के a अथवा lord, congress आदि के o, bird third आदि की i, learn के ea अथवा berth की e, college की प्रथम e अथवा bench की e, और magic gas आदि के a का द्योतन ठीक प्रकार नहीं होता। यद्यपि इनके निकटतया द्योतक क्रमशः अ॓ अ॑ ऑ ए' ऍ ऐ॑ आदि निर्मित हो गए हैं, परंतु ये अभी अप्रचलित हैं। इनके स्थान में प्रायः अ आ ए ऐ ही (अ' ए के स्थान में अ, अ॑ ऑ के स्थान में आ, ऍ के स्थान में ए अथवा इ और ऐ॑ के स्थान में ऐ) प्रयुक्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णविकार के तो न जाने कितने उदाहरण संस्कृत में विद्यमान हैं। र के स्थान में ल आदेश होना मागधी प्राकृत का एक विशेष लक्षण माना गया है। इसी से अशोक के लेखों में राजा के स्थान पर लाजा पाया जाता है। इस रूप को कोई संस्कृतज्ञ संस्कृत में स्वीकार नहीं करेगा। पर शायद वह यह नहीं जानता कि रोम और लोम, पिंगर (?) और पिंगल, रेखा और लेखा आदि एक दूसरे के विकृत रूप ही हैं, तो भी दोनों शुद्ध संस्कृत माने जाते हैं। संस्कृत कोषों में तरुण और तरुणी के लिये तलुन और तलुनी भी पाए जाते हैं जिनकी व्युत्पत्ति तल् धातु से लगाई जाती है। किंतु स्पष्टतः वे तरुण और तरुणी के ही मागधी रूप हैं। धातुपाठ में बहुत सी धातुएँ ऐसी हैं जो एक दूसरे से केवल इसी वर्णविकार के रूप में पृथक् हुई हैं, जैसे श्रथ—श्लथ; क्रथ—क्लथ, क्रुप-क्लृप आदि। पलायन शब्द पलाय् धातु से बनाते हैं, किंतु यथार्थतः पलाय् कोई मूल धातु नहीं है। यह शब्द परा + अयन का मागधी रूप है।*

प्राकृत भाषा का बहुत साधारण वर्णविकार है ष और श के स्थान पर स का आदेश। मागधी प्राकृत में केवल श ही होता है। मनुष्य का प्राकृत में मणुस तथा मागधी में मणुश होता है। संस्कृत के अनेक शब्दों में भी यह सकार-परिवर्तन पाया जाता है। मुषल और मुसल, शूकर और सूकर, शृगाल और सृगाल, शूर और सूर†, कलश और कलस, श्वशुर और स्वशुर (?) शंकर और संकर†, वेष और वेश, बुष और बुस, षण्ड और शण्ड आदि दोनों प्रकार के रूप संस्कृत में प्रचलित हैं जो निस्संदेह एक दूसरे के विकृत रूप हैं।

प्राकृत में न के स्थान में ण प्रायः सर्वत्र होता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप संस्कृत के लवण में न के स्थान पर 'ण' हो गया है जिसे निपात

---

* पलायन परा + अयन से ही निष्पन्न है। दे०—पाणि० ८।२।१६—सं०।

† दोनों के अर्थ में भेद है।—सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर स्वीकार किया जाता है क्योंकि वहाँ न के ण होने का कोई कारण ही दृष्टिगोचर नहीं होता। तो भी किसी ने शुद्ध लवन का आदेश करने का प्रयत्न नहीं किया।

प्राकृत में वर्णों का असवर्ण संयोग सवर्ण संयोग में परिवर्तित हो जाता है, जैसे भक्ति का भत्ति, सत्य का सच्च आदि। संस्कृत में जो पिच्छ, कच्छ, लाञ्छन आदि शब्द प्रचलित हैं वे यथार्थतः पक्ष, कक्ष, लक्षण आदि के ही प्राकृत रूप हैं। प्राकृत में य और ध के स्थान में ज होता है, जैसे यश-जश, विद्युत्-विज्जू। संस्कृत में भी यातुधान और जातु-धान, द्योतिः और ज्योतिः दोनों चलते हैं।

प्राकृत में स्वरों का बहुधा परिवर्तन हो जाता है, जैसे पुरुष का पुरिस, गुरुत्व का गरुयत्त, पद्म का पोम्म या पउम आदि। इसी प्रकार संस्कृत में मुकुट और मकुट, सुकृत और सूकृत (?), पुरुष और पूरुष, महिला, महीला, और महेला, अंतरिक्ष और अंतरीक्ष दोनों प्रकार के रूप पाए जाते हैं। परिवाद और परीवाद, प्रतिघात और प्रतीघात, प्रतिहार और प्रतीहार, यथार्थतः इसी दीर्घत्व की ओर प्रवृत्ति के फल हैं जिन्हें पाणिनि ने 'उपसर्गे घञ्यमनुष्ये बहुलम्' द्वारा नियमबद्ध या अनियमित बताने का प्रयत्न किया है।

प्राकृत में मध्यवर्ती कुछ अल्पप्राण वर्णों, जैसे क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, य् ब् का लोप और उनके स्थान पर कहीं कहीं य् अथवा व् का आदेश कर दिया जाता है जैसे कृत का क अ या कय, मृग का मि अ या मय, कोप का कोव आदि। संस्कृत में भी इस प्रकार से बने हुए शब्दों का प्रचार है, जैसे, कपिल और कविल, कपाट और कवाट, करपाल और करवाल। आदत्त का एक विकल्प रूप आत्त भी यथार्थतः इसी प्रवृत्ति से 'द्' का लोप करके और य श्रुति का आदेश न करके बना है। किंतु इस सीधे साधे रूप को सिद्ध करने के लिये पाणिनि को एक अलग ही सूत्र की रचना करनी पड़ी है (अ च उपसर्गात्तः)।

शब्द के मध्य में जहाँ कहीं ऋ या र् आता है तो प्राकृत में उसका निराकरण करके समीपवर्ती व्यंजन को मूर्धन्य रूप दे दिया जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कहीं पूर्ववर्ती स्वर का अनुस्वार कर दिया जाता है। जैसे वट्टदि (वर्तते), वुड्ढ (वृद्ध), गण्ठि (ग्रन्थि), मट्टिका (मृत्तिका), दंसण (दर्शन), अंसु (अश्रु), फंस (स्पर्श) आदि। संस्कृत कण्टक कर्तक से, विकट विकृत से, पुंख पक्ष से, लाञ्छन लक्षण से, नट् नृत् से, उद्भट उद्भृत से इसी नियम के अनुसार बने समझना चाहिए। कहीं कहीं प्राकृत में र् का सिर्फ लोप कर देते हैं, जैसे प्राण का पाण। संस्कृत का शाप भी श्राप से र् का लोप करके बना समझना चाहिए।

प्राकृत में व्यंजनांत शब्द होते ही नहीं हैं। संस्कृत के व्यंजनांत शब्दों में कहीं अंत्य व्यंजन का लोप करके और कहीं उनमें अकारादि स्वर जोड़कर उन्हें स्वरांत बना लिया जाता है। संस्कृत में भी यह प्रवृत्ति थोड़ी बहुत पाई जाती है। जरस् का जरा (?) और जटायुस् का जटायु रूप भी खूब प्रचलित हैं। हलंत स्त्रीलिंग शब्दों को आकारांत बना लेना तो प्राय: एक नियम सा हो गया है। भागुरि आचार्य ने तो इसका विधान ही कर दिया है—

> वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयो: ।
> आपं चापि हलन्तानां यथा वाचा निशादिशा ॥

इस नियम के अनुसार आपद्, विपद्, वाच् आदि के अतिरिक्त आपदा, विपदा, वाचा, आदि भी प्रचलित हैं।

संस्कृत के धातुपाठ में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जहाँ इन्हीं प्राकृत प्रवृत्तियों के कारण एक ही धातु ने अनेक रूप धारण कर लिए हैं। जैसे, श्रथ् श्लथ् क्रथ क्लथ हिंसार्था ; उर्वी तुर्वी थुर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसार्था: ; घिणि घुणि घृणि ग्रहणे ; कदि क्रदि क्लदि आह्वाने ; आदि। इनमें का प्रत्येक धातुसमूह यथार्थत: एक ही धातु से उत्पन्न हुआ है और जिन विकारों से उनके रूप अलग अलग हो गए हैं उन सब के नियम प्राकृत व्याकरण में मिलते हैं। उदाहरणार्थ, तुर्वी धातु में से त् का लोप होकर उर्वी रह जाना महाराष्ट्री प्राकृत की ओर प्रवृत्ति कही जा सकती है। पैशाची प्राकृत में त का थ हो जाता है, तदनुसार थुर्वी बन जाता है। त के स्थान में द आदेश शौरसेनी प्राकृत का नियम है, तदनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्वी हो सकता है। र् के स्थान पर ल् मागधी प्राकृत का नियम है, तदनुसार श्रथ और श्लथ, क्रथ और क्लथ अच्छी तरह समझ में आ जाते हैं। इत्यादि। उसी प्रकार शकन्धु, कर्कन्धु, मनीषा आदि शब्दों की संधियों में जो अपवाद पाया जाता है वह भी प्राकृत का ही प्रभाव समझना चाहिए। उणादि प्रकरण में जो वर्णविकार का विधि-बाहुल्य पाया जाता है वह भी प्राकृत के नियम समझ लेने से बहुत सुगम हो जाता है।

भाषा की ये प्रवृत्तियाँ सार्वत्रिक हैं। थोड़े-बहुत अंश में वे सभी भाषाओं में पाई जाती हैं और इन्हीं के प्रभाव से धीरे धीरे एक ही भाषा से दो, और दो से चार भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह बड़े महत्त्व की बात है कि इन प्रवृत्तियों को संस्कृत के विज्ञानी अध्येताओं ने बहुत प्राचीन काल में समझ लिया था। धन्य है उनकी शोधक बुद्धि को। किंतु दुर्भाग्यतः संस्कृत व्याकरण के पठन-पाठन में ऐसे रूप भाषाशास्त्र के नियमों का विचार न करके अपवाद रूप से समझे समझाए जाते हैं जिससे इनके समझ और स्मरण रखने में बड़ी कठिनाई होती है, और भाषा के मर्म का जैसा चाहिए वैसा ज्ञान नहीं हो पाता। यदि संस्कृत व्याकरण के पढ़ाने में ये नियम खोलकर समझा दिए जायँ तो विद्यार्थियों की दृष्टि एकदम बहुत विशाल हो जाय, और उन्हें बहुत शीघ्र समस्त सभ्य संसार की भाषाओं के बंधुत्व का बोध होने लगे। संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन साथ साथ होना अत्यंत आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी तथा विदेशी हिंदी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

[लेखक—श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए०]

हिंदी में दो प्रकार के शब्द हैं, स्वदेशी तथा विदेशी। स्वदेशी के अंतर्गत आर्य तथा अनार्य शब्द और विदेशी के अंतर्गत मुसलमानी तथा यूरोपीय शब्द हैं। स्वदेशी में अनार्य शब्दों की संख्या तो अति न्यून है, परंतु आर्य (संस्कृत) शब्दों की अधिक। इसी प्रकार विदेशी मुसलमानी में फारसी शब्दों की और यूरोपीय में अँगरेजी शब्दों की संख्या अधिक है। अतः हम संस्कृत, फारसी तथा अँगरेजी भाषाओं से आए हिंदी शब्दों के ध्वनि-विकारों का ही विवेचन करेंगे।

जब एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में गृहीत होते हैं, तो प्रायः उनमें कुछ न कुछ ध्वनि-विकार हो जाता है, क्योंकि ग्राहक भाषा को गृहीत भाषा का उच्चारण अपने अनुकूल करना पड़ता है; यद्यपि कभी कभी गृहीत शब्द तत्सम रूप में भी रहते हैं। वे नियम जिनके अनुसार ये ध्वनि-विकार होते हैं उस भाषा के विशेष ध्वनि-नियम कहे जा सकते हैं। विषय बहुत विस्तृत है, अतः प्रत्येक प्रकार के दो तीन उदाहरणों से अधिक देना कठिन होगा।

संस्कृत

१—स्वर-विकार :—(१) विशेष विकार :— (अ) मूल-स्वर संबंधी—

(क) सं० 'अ' हिं० में अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ में परिवर्तित हो जाता है। अ—> अ :—भक्त से भगत, प्रथर से पहिला ; अ—> आ :—कर्म से काम, सप्त से सात ; अ—> इ :—घर्षण से घिसना, अम्लिका से इमली, पंजर से पिंजड़ा ; अ—> ई :—अतसी से तीसी ; अ—> उ :—अंगुली से उंगली, खर्जू से खुजली, स्मरण से सुमरन ; अ—> ऊ :—श्मश्रु मूछ ; अ—> ए :—संधि से सेंध, छगली से छेरी, बदर से बेर, कदली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से केला ; अ—> ऐ :—रजनी से रैन, गंडक से गैंडा, पंचत्रिंशत् से पैंतीस ; अ—> ओ :—मयूर से मोर, चंचु से चोंच, जलूका से जोंक ; अ—> औ :—चतुर्थ से चौथा, चतुर्दश से चौदह।

(ख) सं० 'आ' हिं० में अ आ ई ए औ हो जाता है। आ—> अ :—मार्ग से मग, कासीस से कसीस, मार्जन से मंजन, चामर से चमर ; आ—> आ :—कार्य से कारज, द्राक्षा से दाख, जागरण से जागना ; आ—> ई :—पान से पीना ; आ—> ए :—दान से देना ; आ—> औ :—भ्रातृजाया से भौजाई।

(ग) सं० 'इ' हिं० में अ इ ई ऊ ए हो जाता है। इ—> अ :—विभूति से भभूत, वारिद से बादल, कुट्टिनी से कुटनी ; इ—> इ :—किरण से किरन, वधिर से बहिरा, भगिनी से बहिन ; इ—> ई :—इक्षु से ईख, चिल्ल से चील, निद्रा से नींद, भित्ति से भीत, मित्र से मीत; इ—> ऊ :—शिङ्घन से सूँघना, बिन्दु से बूँद, गैरिक से गेरू ; इ—> ए :—शिम्बा से सेम, बिल्व से बेल, सिंदूर से सेंदुर, तिक्त से तेज।

(घ) सं० 'ई' हिं० अ इ ई ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है। ई—> अ :—परीक्षा से परख, गर्भिणी से गाभिन, सर्पिणी से साँपन ; ई—> इ :—चीत्कार से चिंघाड़, दीपावली से दिवाली, दीपक से दिया ; इ—> ई :—शीर्ष से सीस, कीट से कीड़ा ; ई—> ए :—क्रीडा से खेल ; ई—> ऐ :—कीदृश से कैसा, ईदृश से ऐसा।

(ङ) सं० 'उ' हिं० अ ई उ ऊ ए ओ में परिवर्तित हो जाता है। उ—> अ :—तनु से तन, कर्बुर से कबरा, विद्युत् से बिजली; उ—> ई :—वायु से बाई, बिंदु से बिंदी; उ—> उ :—दुर्बल से दुबला, उज्ज्वल से उजला, कुंचिका से कुंजी; उ—> ऊ :—उष्ट्र से ऊँट, पुत्र से पूत, मुषल से मूसल, उपरि से ऊपर; उ—> ए :—फुप्फुस से फेफड़ा; उ—> ओ :—कुष्ठ से कोढ़, मुक्ता से मोती, तुन्द से तोंद, तु से तो, पुस्तक से पोथी।

(च) सं० 'ऊ' हिं० में अ उ ऊ ए ओ औ हो जाता है। ऊ—> अ :—यूथ से जथा अथवा जत्था; ऊ—> उ :—कूप से कुआ, सूची से सुई, पूप से पुआ, मधूक से महुआ; ऊ—> ऊ :—ऊर्ण से ऊन, दूर्वा से दूब;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊ—>ए :—नूपुर से नेउर; ऊ—>ओ :—कूष्माण्ड से कोहड़ा; इ—>औ :—भ्रू से भौं।

(छ) सं० 'ए' हिं० इ ई ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है। ए—>इ :—एला से इलायची, लेखन से लिखना; ए—>ई :—लेपन से लीपना, पेषण से पीसना; ए—>ए :—एक से एक, कसेरु से कसेरू, क्लेश से कलेस; ए—>ऐ :—फेनिका से फैनी।

(ज) सं० 'ऐ' हिं० ई ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है। ऐ—>ई :—धैर्य से धीरज; ऐ—>ए :—गैरिक से गेरू, कैवर्त्त से केवट, तैलिक से तेली; ऐ—>ऐ :—चैत्र से चैत, वैराग्य से वैराग, वैर से बैर।

(झ) सं० 'ओ' हिं० ए ओ में परिवर्तित हो जाता है। ओ—>ए :—गोधूम से गेहूँ; ओ—>ओ :—रोदन से रोना, त्रोटन से तोड़ना, गोधा से गोह।

(ञ) सं० 'औ' हिं० में ओ हो जाता है। औ—>ओ :—गौर से गोरा, पौत्र से पोता।

(ट) सं० 'ऋ' हिं० में अ आ इ ई ऊ हो जाता है। ऋ—>अ :—मृत से मरा; ऋ—>आ :—शृंखला से साँकर, कृष्ण से कान्ह, नृत्य से नाच; ऋ इ :—गृध्र से गिद्ध, कृषाण से किसान, तृण से तिनका, शृगाल से सिआर; ऋ—>ई :—घृत से घी, भ्रातृज से भतीजा, शृंग से सींग; ऋ ऊ :—वृद्ध से बूढ़ा, पृच्छति से पूछे, वृक्ष से रूख।

(आ) संयुक्त स्वर-संबंधी :—(क) अ इ हिं० में ए ऐ में बदल जाता है। अ इ—>ए :—प्रा० चलइं से चलें, प्रा० थइर से थेर; अइ—>ऐ :—प्रा० मइं से मैं, अप० वइन से वैन; (ख) अउ हिंदी में ऊ औ में परिवर्तित हो जाता है। अउ—>ऊ :—अप० चलउँ से चलूँ; अउ—>औ :—प्रा० मउड से मौर, प्रा० णउल से नौला। (ग) अय हिंदी में ऐ हो जाता है। जैसे नयन से नैन, समय से समै, निश्चय से निहचै, इत्यादि। (घ) अव हिंदी में ओ औ हो जाता है। अव—>ओ :—लवण से नोन; अव—>औ :—लवंग से लौंग, व्यवहार से व्यौहार, अवतार से औतार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **स्वरलोप** :—(अ) आदिस्वरलोप :—संस्कृत शब्दों के आदि अ उ ए प्रायः हिंदी में लुप्त हो जाते हैं, जैसे अ :—अस्ति से है, अश्ववार से सवार, अभ्यटन से भिड़ना; उ :—उद्धार से डकार, उपायन से वायन, उपविष्ट से बैठा; ए :—एकादश से ग्यारह ।

(आ) मध्यस्वरलोप :—संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले 'अ' का उनके उच्चरित हिं० रूपों में प्रायः लोप हो जाता है, जैसे सं० तोलन नरक आदि के हिंदी रूप क्रमशः तोलना, नरक आदि हैं, परंतु इनका उच्चारण तोल्ना, नर्क आदि की भाँति होता है। कभी कभी लिखित रूपों में भी 'अ' का लोप हो जाता है, जैसे अरथी से अर्थी ।

(इ) अंत्यस्वरलोप :—शब्दांत में आनेवाले सं० अ आ इ ई उ ए का प्रायः हिं० उच्चारण में लोप हो जाता है, यथा अ :—सं० शीतल, तत्सम आदि का उच्चारण शीतल्, तत्सम् आदि की भाँति होता है; आ :—वार्त्ता से बात, टंकशाला से टकसाल ननान्दा से ननद; इ :—विपत्ति से विपत, जाति से जात, तित्तिरि से तीतर, ज्ञाति से नात; ई :—भगिनी से बहिन; उ :—बाहु से बाँह; ए :—पार्श्वे से पास, अभ्यंतरे से भीतर ।

(३) **स्वरागम** :—(अ) आदिस्वरागम :—अ :—लोप से अलोप । इसके अतिरिक्त संयुक्त 'स' से आरंभ होनेवाले शब्दों के आदि में उच्चारण में प्रायः अ अथवा इ का आगम हो जाता है जैसे स्मरण, स्त्री, स्थान, स्तुति आदि का उच्चारण क्रमशः इस्मरण, इस्त्री, अस्थान, अस्तुति आदि की भाँति होता है ।

(आ) मध्यस्वरागम :—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः अ इ उ का आगम हो जाता है। अ :—कर्म से काम, पूर्व से पूरब; इ—मिश्र से मिसिर; उ :—स्मर से सुमर, बक से बगुला ।

(इ) अंत्यस्वरागम :—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों के अंत में प्रायः आ उ—का आगम हो जाता है। आ :—गुरु से गरुआ, गल से गला, उ :—जी से जीउ (बो०) ।

(४) **स्वरविपर्य्यय**—सं० अ इ उ ए हिं० में प्रायः उलट पुलट हो जाते हैं। अ :—जंघा से जाँघ; इ :—अम्लिका से इमली, उ—उल्का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लूका, विंदु से बूँद, शकुन से सुगन, श्वसुर से सुसर, अंगुली से उंगली; ए :—एरंड से रेंड।

(५) मात्राभेद :—संस्कृत शब्दों के हिंदी में आने पर प्रायः उनमें मात्राभेद हो जाता है। अनेकों शब्द दीर्घमात्रिक से ह्रस्वमात्रिक और ह्रस्वमात्रिक से दीर्घमात्रिक हो जाते हैं। ह्रस्व—>दीर्घ :—चंद्र से चाँद, चित्रक से चीता, मुष्टिका से मूठ, मुद्ग से मूँग, प्रा० एरिसो से ऐसा, प्रा० केरिसो से कैसा; दीर्घ—>ह्रस्व :—प्लीहा से पिलही, कील से किल्ला, भूपाल से भुआल, भूमि से भुइँ, तैल से तेल, चौर्य से चोरी।

२—व्यंजन-विकार :—(१) विशेष विकार (अ) मूल-व्यंजन संबंधी :- यदि संस्कृत शब्दों में कोई अनुनासिक व्यंजन (ङ ञ ण न म) होता है और हिंदी में उसका लोप हो जाता है, तो उसके पूर्व का अथवा पूर्व के स्थान में आगंतुक स्वर सानुस्वार या सानुनासिक हो जाता है, जैसे गङ्गा से गंगा, जङ्गल से जंगल, चञ्चल से चंचल, पञ्च से पंच, कण्टक से काँटा, रण्डा से राँड, बन्धन से बाँधना, अन्धकार से अँधेरा, चन्द्र से चाँद, कम्पना, से काँपना, कुमार से कुँवर अथवा क्वाँरा, स्वामी से साँईं।*

कवर्ग :—सं० क हिं० में क, ख, ग हो जाता है। क—>क :- कारवेल्ल से करेला, काञ्चनार से कचनार, कोद्रव से कोदों; क—>ख :—

---

* वास्तव में बात यह है कि आजकल हिंदी में अनुनासिक व्यंजन के स्थान में अनुस्वार लगाने की प्रवृत्ति चल पड़ी है और उसका उच्चारण प्रायः 'न' की भाँति होता है, अतः कुछ लोग भ्रमवश अनुस्वार के स्थान में अर्द्ध 'न' भी लिखते हैं जैसे चन्चल, घन्टा, सन्मुख आदि में। अनुनासिक व्यंजन के स्थान में (ं) लगाना तो प्रचलित हो गया है, परंतु 'न' लिखना ठीक नहीं। संभवतः लोग यह समझते हैं कि कोई भी अनुनासिक व्यंजन कहीं भी लिखा जा सकता है, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। इनके प्रयोग का यह निश्चित नियम है कि अनुस्वार के पश्चात् जिस वर्ग का वर्ण होगा, उसी वर्ग का पाँचवाँ वर्ण अनुनासिक व्यंजन स्वरूप आयगा अर्थात् यदि अनुस्वार के परे कवर्ग का

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृशर से खिचड़ी, कर्षण से खींचना, कास से खाँसी ; क—> ग :—काक से काग, शाक से साग, मकर से मगर, कंकाल से कंगाल, कंकण से कंगन।

सं० ख हिं० में ख, ह हो जाता है। ख—> ख :—खादन से खाना, खट्वा से खाट ; ख—> ह :—नख से नह, मुखं से मुँह, आखेट से अहेर।

सं० ग हिं० में ग, घ, ह हो जाता है। ग—> ग :—गर्दभ से गधा, गृध्र से गिद्ध अथवा गीध; ग—> घ :—गुंजा से घुँघची, गृह से घर; ग—> ह :—भगिनी से बहिन।

सं० घ हिंदी में घ, ह हो जाता है। घ—> घ :—घर्म से घाम, घृणा से घिन; घ—> ह :—मेघ से मेह, प्राघूर्ण से पाहुना, अरघट्ट से रहटा, श्लाघा से सराहना।

कोई वर्ण होगा तो ङ, जैसे लङ्का, चवर्ग का कोई वर्ण होगा तो ञ, जैसे पञ्जर, तवर्ग का कोई वर्ण होगा तो न, जैसे कान्ति, टवर्ग का कोई वर्ण होगा तो ण, जैसे दण्ड और पवर्ग का कोई वर्ण होगा तो म, जैसे कुम्भ आयगा। अतः तवर्ग के संयोग के अतिरिक्त अन्य किसी जगह अनुस्वार के स्थान में 'न' लिखना ठीक नहीं। अतएव उपर्युक्त चन्चल, घन्टा, सन्मुख आदि रूप नितांत अशुद्ध हैं। परंतु इधर, संभवतः सं० ण के स्थान में हिंदी में न लिखने की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही प्रचलित होने के कारण, टवर्ग के साथ अनुस्वार की जगह 'न' लिखने की प्रवृत्ति अशुद्ध होने पर भी नित्यप्रति बढ़ती जा रही है और पन्डा, मुन्डन, टन्डन आदि अनेक शब्द इस प्रकार लिखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी मूल अनुस्वार को अनुनासिक व्यंजन का स्थानापन्न जानकर उसकी जगह भी 'न' 'म' आदि लिख देते हैं, जैसे सन्स्कृत, सम्वत् आदि में। परंतु, अंतस्थ (य र ल व) तथा ऊष्म (श ष स ह) वर्ग के पूर्व अनुस्वार मूल अथवा आदिष्ट अनुस्वार होता है अनुनासिक व्यंजन का स्थानापन्न नहीं, अतः उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता और सम्वत् आदि रूप नितांत अशुद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

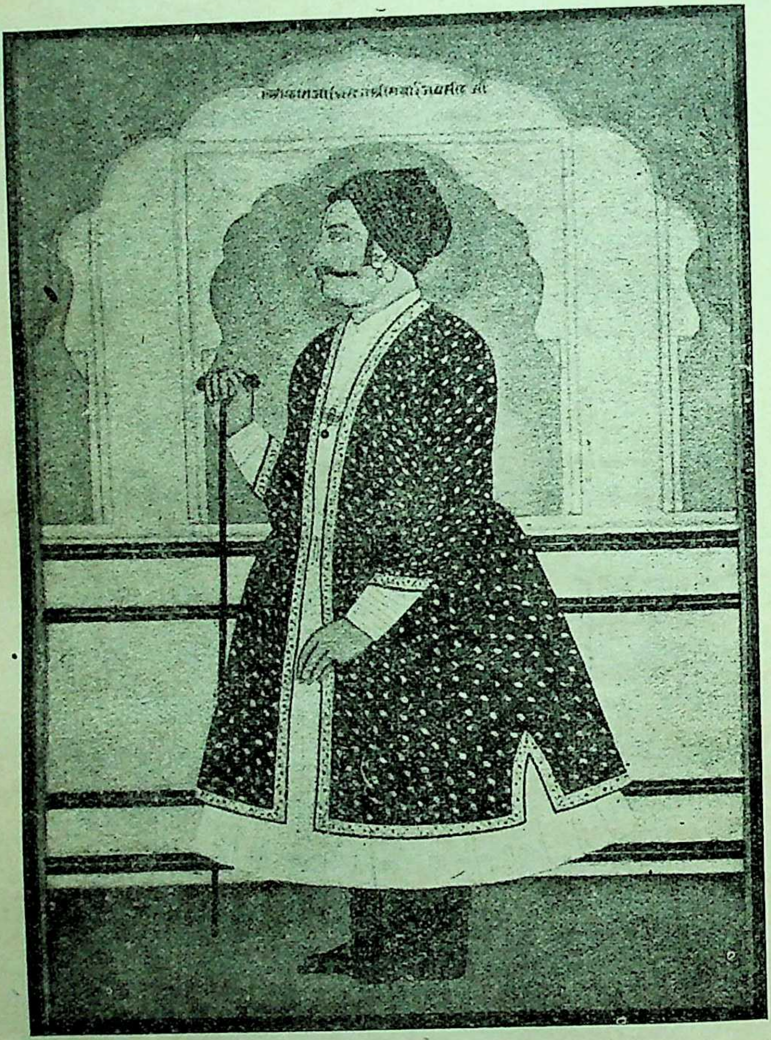

जयपुर-नरेश महाराज सवाई जयसिंहजी द्वितीय
(१६८६—१७४३ ई०)

चित्र १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४७-अंक ३-४ [नवीन संस्करण] कार्तिक-माघ १९९९

मानमंदिर बनारस *

[लेखक—प्रो० चंडीप्रसाद]

यह प्रसिद्ध भवन बनारस के मणिकर्णिका घाट के दक्षिण ओर दशाश्वमेध घाट के पास है। गंगाजी से मानमंदिर तक पत्थर की सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। १७वीं शताब्दी के आरंभ में आमेर के राजा मानसिंह ने यह 'मॉन-मंडल' साधुओं और यात्रियों के ठहरने के लिये बनवाया था। सन् १६१४ ई० में राजा साहब की मृत्यु हो गई। सवा सौ वर्ष बाद उनके वंश के महाराजा सवाई जयसिंह[1] ने इस मकान की छत पर ज्योतिष के कई

---

* नागरीप्रचारिणी सभा की 'प्रसाद व्याख्यानमाला' में २९ चैत्र '९८ को हुए लेखक के व्याख्यान का लेख-रूप।

१—जयसिंह जब १३ वर्ष के बालक थे तभी गद्दी पर बैठे। उन्हें बादशाह औरंगजेब के यहाँ सलाम करने जाना था। वहाँ उनसे जिन प्रश्नों के किए जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यंत्र बनवाए। महाराज जयसिंह को इस विद्या से बड़ी रुचि थी। उन्होंने कई विद्वानों को इस काम में लगाया जो वेध किया करते थे। एक हजार अट्ठारह तारों की स्थितियाँ लिखी गई हैं। उन्होंने ज्योतिष के अध्ययन के लिये कई विद्वानों को भारत के बाहर भी भेजा और दूर दूर से जानकारों को बुलवाया था। दो फ्रांसीसी पादरी चंदरनगर से सन् १७३० ई० में जयपुर बुलाए गए थे। दिल्ली में सन् १७१० ई० और जयपुर में सन् १७२६-३४ ई० में वेधशालाएँ बनवाई गईं और ये बनारस, उज्जैन तथा मथुरा में भी बनीं। जयनगर या जयपुर स्वयं जयसिंह ने बसाया था। इस शहर का नकशा बंग-प्रदेश-निवासी विद्याधर नामक व्यक्ति ने बनाया था। बनारस की वेधशाला

की संभावना थी उनके उत्तर मंत्रियों और उनकी माँ ने बताए। बालक ने कहा कि यदि मुझसे इनमें से कुछ न पूछा जाय तो मैं क्या करूँगा। माँ ने कहा—ईश्वर और गुरु पर विश्वास करके जो मुँह से निकले, कह देना। दर्बार पहुँचने पर औरंगजेब क्रोध से आँखें लाल कर, तुरत तख्त से उतर पड़ा और राजा के दोनों हाथ पकड़कर बोला—तुम्हारे पिता और पितामह ने मुझे बहुत हानि पहुँचाई थी, अब मुझे तुम्हारे साथ क्या करना चाहिए? बालक ने शांति-पूर्वक उत्तर दिया—"जहाँपनाह! भारत में विवाह के समय जब कोई आदमी एक हाथ पकड़ लेता है तो उसको आजन्म निर्वाह करना पड़ता है, अब तो दिल्ली के छत्रपति ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए हैं तो अब मुझको किससे भय है और मैं क्या माँगूँ?" इस उत्तर से बादशाह ऐसा प्रसन्न हुआ कि गद्दी पर उसने उन्हें अपने बगल में आसन दिया और कहा कि तुम अपने पिता से बहुत बढ़कर हो इसलिये तुम्हें आज से 'सवाई' का खिताब दिया जाता है।

एक बार की घटना है कि बादशाह ने उनकी राजधानी आमेर देखने की इच्छा प्रकट की। इनके महल के लाल पत्थर के खंभे इतने सुंदर थे कि इन्होंने उस पर शीघ्र ही पलस्तर करा दिया कि बादशाह की दृष्टि उस पर न पड़े। इन्होंने अपना तुला-दान एक बार सोने से और दस बार चाँदी से कराया था। अश्वमेध-यज्ञ भी किया और हिंदू त्योहारों पर एक पुस्तक 'कल्प-द्रुम' लिखवाई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदाचित् सन् १७३७ ई० की है। समरथ जगन्नाथ[1] ने, जो राजा साहब के साथ इस विषय का काम करते थे, इस वेधशाला का नकशा बनवाया था और सदाशिव ममकाजीन के निरीक्षण में सर्दार महोन ने, जो जयपुर के एक कुम्हार थे, यह वेधशाला तैयार की।

दिगंश-यंत्र—सीढ़ियाँ तै करने के बाद छत पर पहुँचने पर सामने पहले दिगंश-यंत्र मिलता है।

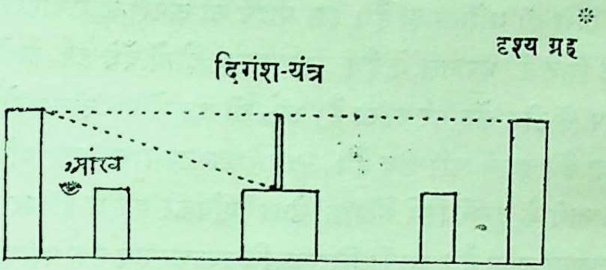

चित्र सं० १

दो गोलाकार दीवारें हैं और प्रत्येक के ऊपरी सिरे पर सिरे की पूरी लंबाई भर ० से ३६०° अंश तक के चिह्न पत्थर पर खुदे हुए हैं। एक अंश दस हिस्सों में और ये हिस्से दो-दो टुकड़ों में बँटे हैं। इस प्रकार छोटा हिस्सा ३ मिनट (कला) का हुआ। बाहरी गोलाकार दीवार ३१⅓ फुट व्यास के घेरे में, ८ फुट ४ इंच ऊँची है। इसी के अंकों पर दिगंश पढ़ा जाता है। भीतरी गोल दीवार २१ फुट के व्यास में है और ४ फुट २ इंच अर्थात् बाहरी दीवार की आधी ऊँची है। इसके पास आँख लगाकर द्रष्टव्य पिंड पर, जो सूर्य्य, चंद्र या तारा हो, दृष्टि लगाते हैं।

१—जगन्नाथ मरहठा ब्राह्मण थे। ये अरबी के भी विद्वान् थे। इन्होंने महाराज जयसिंह के लिये कई अरबी पुस्तकों का अनुवाद संस्कृत में किया। यूक्लिड की रेखागणित का और टाल्मी के अल्मजेस्ती (=राजश्री-युक्त) का, जिसका नाम सम्राट्-सिद्धांत रक्खा, इन्होंने अनुवाद किया। आज से १८०० वर्ष पहले टाल्मी यूनान का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी था। इस पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ था। यह प्रसिद्ध पुस्तक एक हजार वर्ष से अधिक समय तक योरप और अरब के प्रदेशों में प्रचलित रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहरी दीवार के ऊपर चारों प्रधान दिशाओं में चार काँटे लंबरूप में जड़े हैं। उनमें एक तार पूर्व से पश्चिम और दूसरा उत्तर से दक्षिण कसकर बँधा था। अब ये टूटकर निकल गए हैं। इस प्रकार दोनों तार एक दूसरे से उन दोनों गोल दीवारों के केंद्र पर मिलते हैं। उसके नीचे एक गोल खंभा ३ फुट ७½ इंच व्यास का और ४ फुट २ इंच ऊँचा है। इस पर भी अंशों के चिह्न बने हैं और इसके बीच में एक जस्तेदार लोहे का २ इंच मोटा गोल पाइप (नल) खंभे की भाँति गड़ा है। इस पाइप का ऊपरी छोर बाहरी बड़ी गोल दीवार के सिरे के धरातल में है। इस प्रकार दोनों बँधे हुए तारों का छेदन बिंदु पाइप के ठीक केंद्र पर रहता है। खंभे की जड़ में एक ढीला लोहे का छल्ला लगा हुआ है। इसमें चार छेद हैं। उसमें एक तागा कसकर बाँधा जाता है और इस तागे के दूसरे सिरे में एक ढेला बाँधकर बाहरी दीवार के ऊपर से बाहर लटकाया जाता है। इसको खिसका-खिसकाकर तब तक परीक्षा की जाती है जब तक आँख से द्रष्टव्य पिंड उस तागे की ओट में इस तरह दिखाई पड़े कि बीच का केंद्र भी उसी तागे की ओट में हो। तब दिगंश पढ़ लिया जाता है। इस प्रयोग में तागा और आँख दोनों को बराबर बराबर हटाना पड़ता है। तागे को दूसरा आदमी हटाता है।

जयपुर के दिगंश-यंत्र में, जिसका वर्णन पं० गोकुलचंद्रजी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, उपर्युक्त गोल पाइप नहीं है। केवल एक छोटा सछिद्र शंकु सूत्र बाँधने के लिये है और उसके ऊपर जहाँ दोनों तार एक दूसरे को काटते हैं एक गोल पत्र बँधा है। इस पत्र के बीच में एक छेद है, जिसके भीतर से सूर्य की रोशनी जाकर दूसरी तरफ धरती या भीत पर पड़ती है। यदि तारा या ग्रह देखना हो तो दूसरी तरफ एक आदमी अपनी एक आँख लगाकर उस वस्तु पर छेद के भीतर से देखता रहता है। आँख आवश्यकतानुसार दूसरी भीत से भीतर या बाहर रहती है। चित्र में आँख बाहर है। इस रीति से जो सीधी लकीर दृश्य वस्तु से उस छेद में गिरती है, उसका दूसरी तरफ निकलने का पथ ठीक मिल जाता है। अब वह तागा, जिसमें ढेला बँधा होता है, दूसरा आदमी खिसका खिसकाकर ठीक इस पथ के बीच में लगाता है और धूप में तागे की छाया को दूसरी गोल भीत पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगमता से पढ़ लेता है। बाहरी भीत पर भी वही अंक पढ़े जाते हैं। तागा खिसकाकर सूर्य की किरण के पथ को ठीक बीच में लाना एक मनुष्य भी कर सकता है और तागे की परछाहीं धूप में दूसरी भीत के ऊपर स्पष्ट पड़ती है, और पढ़ी जाती है। केवल पाइप के व्यवहार से उतना सूक्ष्म ज्ञान न होगा। छाया-मध्य से पूर्व अथवा पश्चिम बिंदु तक दिगंश है और उत्तर अथवा दक्षिण बिंदु तक दिगंश कोटयंश है।

दिगंश-यंत्र की बाहरी भीत में पूर्व ओर एक छोटी सी खिड़की है। विषुवद् दिनों में बीचवाली भीत पर आँख लगाकर इस (खिड़की) में से सूर्योदयकालिक दिगंश का ज्ञान किया जा सकता है।

चक्र-यंत्र—दिगंश यंत्र से पश्चिम छोटा सम्राट् यंत्र है जिसके उत्तर में चक्र यंत्र है। यह लोहे का एक भारी गोलाकार छल्ला है। इसका व्यास

चक्रयंत्र

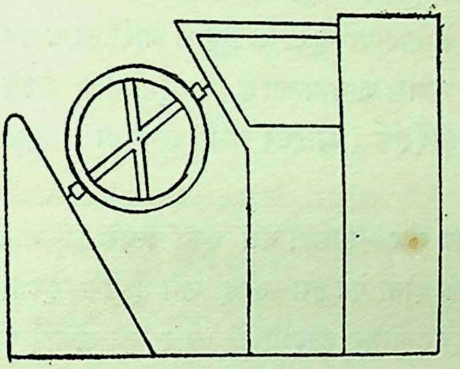

चित्र सं० २

३ फुट ७ इंच है, और यह १ इंच मोटा तथा २ इंच चौड़ा है। इसके ऊपर पीतल की $\frac{1}{4}$ इंच मोटी चद्दर जड़ी है, जिस पर अंश, अर्धांश और चतुर्थांश के चिह्न क्रांति पढ़ने के लिये चारों ओर बने हैं। इस छल्ले के एक व्यास के सिरों पर एक एक खूँटी जड़ी है। ये खूँटियाँ उत्तर और दक्षिण दीवार के छेदों में कसकर घुमती हैं। दीवारों के छेद ऐसी स्थिति में हैं कि ये खूँटियाँ ठीक पृथ्वी की धुरी (अक्ष) की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीध में हैं, जिससे कि छल्ला सदैव पृथ्वी की धुरी के समानांतर धुरी के बल घूम सके। निशाना ठीक करने के लिये यंत्र के केंद्र में पीतल की एक खोखली पतली नलिका ऐसी लगी है कि चारों तरफ घूम सकती है। इस नली के भीतर से दृश्य-वस्तु देखकर और उसे ठीक बीचोबीच रखकर क्रांति पढ़ सकते हैं। जब सूर्य्य की रोशनी इसके बीच से निकलती है तो दूसरी ओर कागज पर गोलाकार धूप दीख पड़ती है। तारा देखने के लिये तारे को आँख से ठीक नलिका के बीचोबीच में लाते हैं और क्रांति पढ़ लेते हैं। यह नली छल्ले के बीच में एक पिन द्वारा ढीली जड़ी है। इस पिन के एक सिरे पर घोड़े के मुँह का चिह्न[1] बना है, जैसा कि मुसलमानी देशों की वेधशालाओं में पाया जाता है। मिस्टर के कहते हैं कि राजा साहब पर समरकंद के बादशाह उलुग बेग[2] (तैमूर लंग के पौत्र) का यथेष्ट प्रभाव था। उलुग बेग भी राजा जयसिंह की तरह गणित-ज्योतिष के प्रेमी थे। इनका एक पाद-यंत्र लगभग १८० फुट ऊँचा था।

दक्षिण की दीवार पर खूँटी के छेद के चारों तरफ एक वृत्त, माप-रेखा सहित, खुदा है। इससे जान पड़ता है कि घूमनेवाले छल्ले में कभी एक समय बतानेवाला निर्देशक (प्वाइंटर) भी लगा था। इस ओर छल्ले में एक छेद भी है।

नाड़ी-वलय यंत्र—तीसरा यंत्र एक पत्थर का गोला ४ फुट ७ इंच व्यास का है। इसके दोनों पेटे इस तरह लगे हैं कि पृथ्वी के विषुवत् के समानांतर रहें। यह पत्थर आदमी की कमर की ऊँचाई पर खंभों से जड़ा है। उत्तरीय निरक्ष-तल पर चारों ओर अंशों और घंटा, मिनट के चिह्न

१—ज्योतिष शास्त्र का प्रधान देव सूर्य है। सूर्य का वाहन अश्व है। क्या इसी आधार पर प्राचीन आचार्यों ने अश्वमुखाकृति की कल्पना की है?

२—उलुग बेग ने टालमी के 'अल्मजेस्ती' का अनुवाद किया था। उसकी हत्या सन् १४४६ ई० में हुई। उसने १०१८ तारों की सूची बनाई थी। कहा जाता है कि मुहम्मदशाह ने जयसिंह को इस सूची को शुद्ध वर्तमान रूप में लाने के लिये नियुक्त किया था। जयसिंह ने ७ वर्ष के परिश्रम के बाद सन् १७२८ ई० में 'जिज मुहम्मदशाही' नामक पुस्तक प्रकाशित की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुदे हुए हैं और ठीक केंद्र पर एक लोहे की खूँटी (५ इंच लंबी और पौन इंच मोटी) जड़ी है जिसकी परछाहीं से घंटा, मिनट, जब सूर्य्य उत्तरी अक्षांश में हो, पढ़ सकते हैं। परछाहीं की मध्य रेखा की स्थिति पढ़नी चाहिए। नक्षत्र या तारे जब दक्षिण से उत्तर अक्षांश में आवें तो देखे जा सकते हैं। सायन मेष की संक्रांति से सूर्य्य पत्थर के इस तल से उत्तर और तुला की संक्रांति से दक्षिण हो जाता है। इस पत्थर के दक्षिण तल पर भी एक छोटा २ फुट ४ इंच व्यास का वृत्त अंकों सहित खुदा है और बीच में एक खूँटी परछाहीं डालने के लिये लगी है।

नाड़ीवलय यंत्र

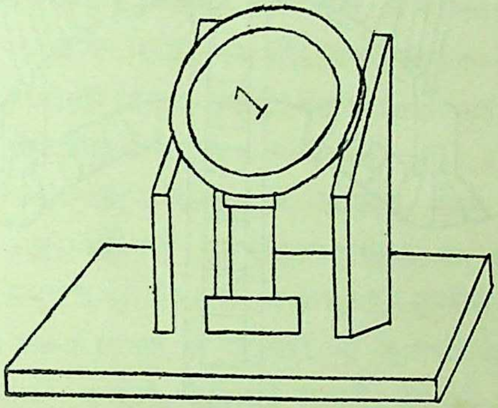

चित्र सं० ३

इस यंत्र के दक्षिण ओर उसी चबूतरे पर एक चौकोर पत्थर का खंभा ५$\frac{1}{8}$″ × ५$\frac{3}{8}$″ मोटा खड़ा है। खंभे के दक्षिण पृष्ठ में इसके मस्तक पर एक छिद्र है, जिसमें संभवतः खूँटी रही होगी। इस बात का निश्चय करना कि खंभा किस लिये बनाया गया था, कठिन है। क्या इस खूँटी से सेकेंड दोलक लटकाया जाता था? इस खूँटी की ऊँचाई ऐसी है कि दोलक लंबे क्लाक के दोलक की भाँति एक सेकेंड में एक ओर से दूसरी ओर तक पहुँचता।

इस खंभे के पश्चिम तरफ ऊपरी भाग में एक रेखा भूमि की धुरी के ठीक समानांतर है। नाड़ी-वलय में जो लोहे की खूँटी है यदि वह कभी टूट जाय तो इस रेखा से ठीक की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट्-यंत्र[१]—दो सम्राट् यंत्र हैं। दिगंश-यंत्र के पश्चिम में उसके निकट तो एक छोटा और दूर पर एक बड़ा। बड़े सम्राट् यंत्र में बीच में दो ढालू दीवारें ५ फुट ६ इंच के अंतर पर हैं। इनकी चोटी ठीक आकाशीय ध्रुव को सूचित करती है। दोनों दीवारों के बीच में ऊपर चढ़ने के लिये पत्थर

सम्राट्-यंत्र

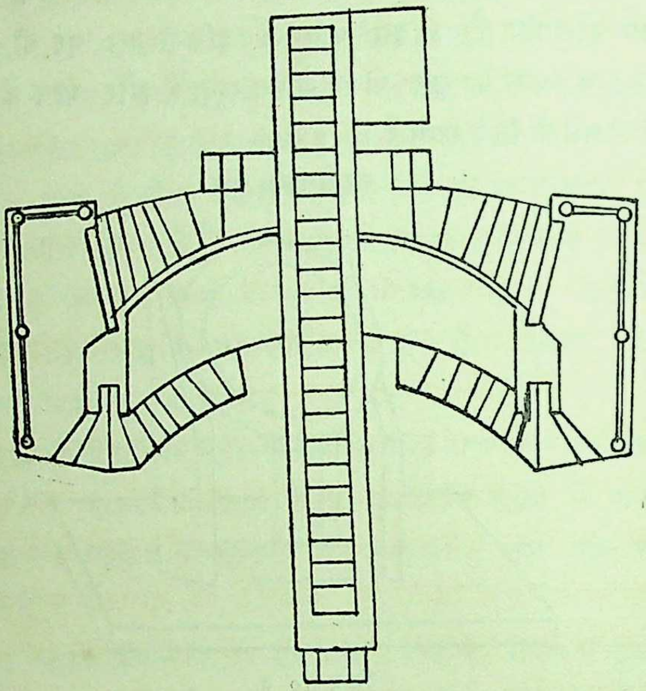

चित्र सं० ४

की सीढ़ियाँ लगी हैं। इन दोनों दीवारों के बाहरी किनारे पृथ्वी की धुरी (अक्ष) के समानांतर हैं और इनकी परछाहीं से प्रातःकाल तो पश्चिमी और दोपहर के उपरांत पूर्वी भुजाओं पर—जिन पर घंटे, मिनट, चौथाई मिनट, घड़ी और पल के चिह्न बने हुए हैं—समय पढ़ा जा सकता है। ये

१—सम्राट् की अपेक्षा सम-रात शब्द अधिक उपयोगी होता। यह यंत्र विषुव पर निर्भर है। अँगरेजी में Equinox शब्द का अर्थ सम-रात है। परंतु संभवतः अपने बृहत् आकार या अधिक उपयोगिता के कारण जयसिंह ने इसे यंत्रों में सम्राट् की पदवी दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों भुजाएँ विषुववृत्त के समानांतर चौथाई गोल, बेलनाकार रूप में हैं और इनके उत्तरी और दक्षिणी किनारों पर एक ही तरह के चिह्न खुदे हुए हैं।

अब हम ढालू दीवारों के ऊपर के चिह्नों को देखें तो इन दोनों भुजाओं के केंद्रों से, जो शंकु के किनारे पर हैं, दो माप के चिह्न ऊपर और नीचे की ओर ढालू दीवार के ऊपरी तल पर बने हैं जिसमें अंश और दशमांश (६ पल) खुदे हैं। जो निशान ऊपर गए हैं वे नीचे के केंद्र से हैं और जो नीचे गए हैं वे ऊपर के केंद्र से हैं। ऊपरवाला चिह्न लगभग ६९° ३५′ है और नीचेवाला ६६° २४′ है। इन चिह्नों से उत्तर दक्षिण क्रांति को ठीक ठीक पढ़ सकते हैं।

सूर्य्य की क्रांति पढ़ने के लिये यदि सीधे किनारेवाला एक पोस्ट कार्ड दीवार के ऊपर चपटा रखा जाय और उसके किनारे की परछाहीं नीचे की भुजाओं पर डाली जाय ते सुगमता होगी। इस परछाहीं का कोना भुजा के पत्थर के ठीक किनारों पर पड़ना चाहिए।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य्य एक चमकदार गोला है जिसकी चौड़ाई आधे अंश से कुछ अधिक है। पूर्व से मध्याह्न वृत्त को पार करने में लगभग २ मिनट का समय लगता है। सूर्य्य की माप सदैव सूर्य्य के केंद्र से की जाती है। इसलिये शंकु के किनारे की परछाहीं, जो भुजाओं पर पड़ती है, पतली नहीं बल्कि मोटी (अस्फुट) सी दिखाई पड़ती है। इसलिये इस परछाहीं का मध्य पढ़ना चाहिए। समय या क्रांति पढ़ने में एक कठिनाई होती है जो अपनी भूल से होती है और निजी भूल कहलाती है। हर एक देखनेवाला अपना अपना मध्य मानता है और उसी को पढ़ता है। क्रांति पढ़ने के लिये यदि कार्ड को एक बार नीचे से ऊपर धीरे धीरे दीवार पर खिसकाएँ और दूसरी बार ऊपर से नीचे को और दोनों बार की क्रियाओं में जब कार्ड की परछाहीं पत्थर के किनारे पर आ जाय, तब पढ़ लें तो हमको दो माप मिलेंगे। इन मापों का मध्यमान (औसत) ठीक ठीक क्रांति बता देगा।

इस रीति से कोई भी मनुष्य अपनी भूल का अंदाजा कर सकता है। दोनों मापों का अंतर, जो हम ऊपर की रीति से मालूम कर सकते हैं, आधे अंश से जितना कम हो, वही हमारी निजी भूल होगी। मेरे देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो साधारणतः दोनों मापों का अंतर ½ अंश आता है, जो कि वस्तुतः आधा अंश होना चाहिए।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य्य की चौड़ाई के कारण मध्याह्न के पहिले का माप लगभग १ मिनट अधिक और मध्याह्न के बाद का माप लगभग १ मिनट कम होता है। पढ़े हुए माप में यह संशोधन करने के बाद एक और संशोधन करना पड़ता है जिसको काल-समीकरण[१] कहते हैं। यह भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न होता है। यह मुख्यतः दो बातों पर निर्भर है, (१) पृथ्वी की कक्षा की उत्केंद्रता, जिसके कारण पृथ्वी की गति जाड़े में अधिक तथा गरमी में कम हो जाती है और (२) रवि की परम क्रांति। इन दोनों संशोधनों को सम्राट् यंत्र के पढ़े हुए समय में जोड़-कर हम वह भारतीय प्रामाणिक समय (I. S. T.) मालूम कर सकते हैं जो ग्रीनिच से ५ घंटा ३० मिनट तेज है।

बनारस के लिये काल-संशोधन की निम्नलिखित तालिका है जो आज-कल के लिये उपयुक्त है—

जनवरी	१	+ १ मिनट	जुलाई	१	+ १ मिनट
जनवरी	१५	+ ७ "	जुलाई	१५	+ ४ "
फरवरी	१	+१२ "	अगस्त	१	+ ४ "
फरवरी	१५	+१२ "	अगस्त	१५	+ २ "
मार्च	१	+११ "	सितंबर	१	— २ "
मार्च	१५	+ ७ "	सितंबर	१५	— ७ "
अप्रैल	१	+ २ "	अक्तूबर	१	—१२ "
अप्रैल	१५	— २ "	अक्तूबर	१५	—१६ "
मई	१	— ५ "	नवंबर	१	—१८ "
मई	१५	— ६ "	नवंबर	१५	—१७ "
जून	१	— ५ "	दिसंबर	१	—१३ "
जून	१५	— २ "	दिसंबर	१५	— ७ "

१—नियमानुसार कालसमीकरण की परिभाषा इस प्रकार है—कालसमीकरण वह संशोधन है जिसे मध्य समय में जोड़ने से स्पष्ट समय निकलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

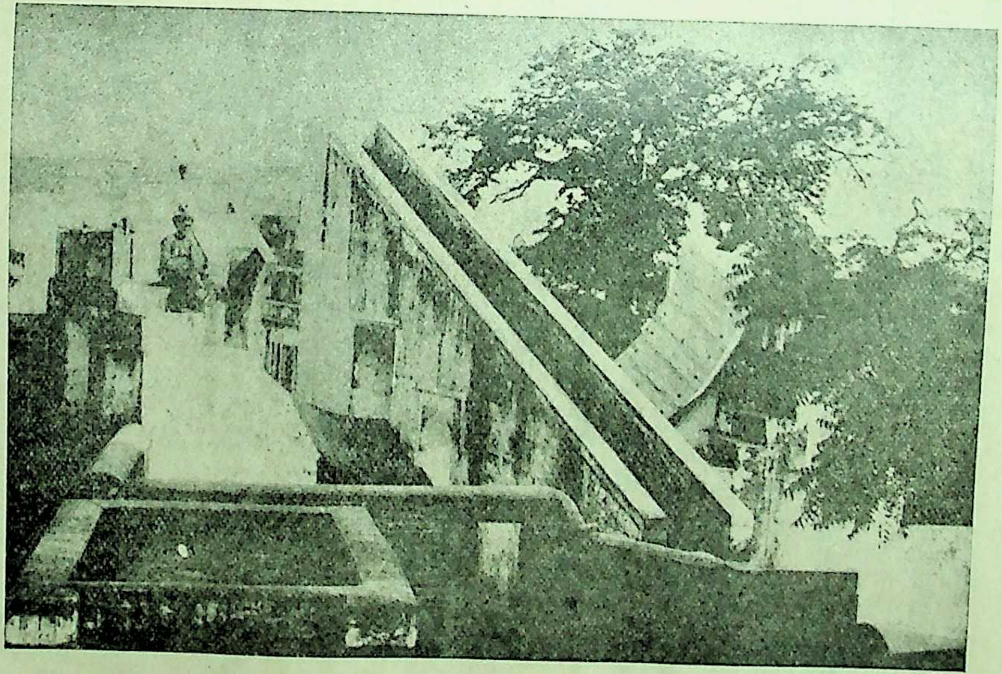

सम्राट् यंत्र (बनारस)

चित्र २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका के प्रयोग का उदाहरण धूपघड़ी में, जहाँ पर काली परछाहीं पड़ती है, पढ़ लीजिए। पढ़े हुए समय से यदि आपने दोपहर के पहले पढ़ा है तो एक मिनट घटा दीजिए और यदि दोपहर के बाद पढ़ा है तो एक मिनट जोड़ दीजिए तो बनारस का स्पष्ट काल आ जायगा। अब तालिका से संशोधन निकालकर ऊपर के समय में लगाने से भारतीय प्रामाणिक समय निकल आएगा, जो घड़ी से ज्ञात होता है।

पहली अक्तूबर को काली परछाहीं १० बजकर ४० मिनट बताती है। यह समय दोपहर से पहले का है, इसलिये १ मिनट घटाने से १० बजकर ३९ मिनट हुआ। तालिका देखने से उस दिन का संशोधन—१२ मिनट है। ऋण बारह को १० बजकर ३९ मिनट में जोड़ने से १० बजकर २७ मिनट हुआ। यही घड़ी में समय होगा। पहली और १५ के बीच की तिथियों में अनुपात से संशोधन निकाल लेना चाहिए।

सम्राट् यंत्रों का माप इस प्रकार है—

	दीवारों की ऊँचाई		आधार	कर्ण		धनुषों का अर्धव्यास	धनुषों की चौड़ाई	कोण[1]
	उत्तर	दक्षिण		दीवार की लंबाई	दीवार की चौड़ाई			
बड़ा यंत्र	२२'३·५"	५' ४"	३५'१०"	३९'८·५"	४' ६"	९'१·५"	५'·९"	२५°१४'
छोटा यंत्र	८'३"	३'६"	१०'०·५"	११'१·५"	०'११"	३'·२"	१'९"	२५°१६

छोटे सम्राट् में १ मिनट और एक घड़ी का ३६वाँ भाग पढ़ सकते हैं। क्रांति में १० कला तक के चिह्न हैं। बड़े सम्राट् में ६ कला तक के हैं।

सम्राट् यंत्र से सूर्य्य, चंद्रमा और तारों की भी नति-घटी और क्रांति ठीक ठीक माप सकते हैं। सूर्य्य की नति-घटी पढ़ने का समय

१—आज-कल यह कोण मानमंदिर में २५°१८' २५" है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ठीक घड़ी में देख लें और जब रात में दूसरी दृश्य-वस्तु दिखाई पड़े तो उसकी नति-घटी पढ़ लें और समय देख लें। सूर्य्य की गति तो ठीक मालूम है, इसलिये उतने समय में जितनी चाल निकले, उतना समय मिलाने से दृश्य वस्तु के विषुवांश का माप मिल जाता है। क्रांति और विषुवांश दोनों मिल जाने से उनकी स्थिति ठीक हो जाती है। और गणना[1] से उनके विक्षेपांश (खगोलीय अक्षांश) और रेखांश आ जाते हैं। पंचांग में तारों के रेखांश और गति दी हुई रहती हैं। विषुवत् का भी माप ले लेने से हिसाब पूरा हो जाता है और पंचांग की सिद्धि मालूम हो जाती है।

यदि ध्यान से देखा जाय और दोनों यंत्रों में समय पढ़ा जाय तो चारों पढ़ाइयाँ एक ही समय में एक नहीं होतीं वरन् चार होती हैं। एक ही सम्राट् के उत्तर-दक्षिण भुजाओं का समय भी एक नहीं पढ़ा जाता। पंडित बापूदेव कहते हैं कि बड़े सम्राट् की भुजाएँ एक एक इंच लटक गई हैं। परंतु मेरे मतानुसार, शंकु कुछ नीचा बना है और भुजाएँ भी पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण झुकी हैं। मापने पर ज्ञात हुआ कि चारों भुजाओं की त्रिज्याएँ बराबर हैं, उनमें कोई भी बढ़ी हुई नहीं है। कितनी कितनी झुकी हैं, ठीक नहीं बताया जा सकता। घड़ी को अशुद्ध कह देने से किसी यंत्र को छोड़ा नहीं जा सकता। सब घड़ियों या यंत्रों की त्रुटि नापकर संस्कार किया जाता है। व्यवहार का यही नियम सब देशों में है।

दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र:—बड़े सम्राट् यंत्र के शंकु की पूर्वी दीवार पर दक्षिणोत्तर भित्ति-यंत्र अथवा दो भित्ति-यंत्र बने हैं। यह दीवार ठीक उत्तर-दक्षिण है। जब सूर्य्य या दृश्य-वस्तु याम्योत्तर पर आती है, इस

१—पुराने समय में ऐसे नक्षत्र-यंत्र धातुओं के बने रहते थे, जिनमें माप के चिह्न भी रहते थे। इससे नति-घटी को लंकोदय में आसानी से, बिना गणना के ही, पढ़ लेते थे। आजकल भी इसी तरह के Slide Rules (विसर्पीगणक) का प्रयोग इंजीनियरिंग विभाग में किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवार की सीध में हो जाती है। दोनों तुरीय (पाद) १० फुट ७ इंच की त्रिज्या (अर्द्ध-व्यास) में हैं, और उनके केंद्र पर एक-एक लोहे की खूँटी (६·५″ × ·७५″) क्षैतिज गड़ी है जिसकी परछाहीं तुरीय पर पड़ती है। तुरीयों पर अंश और दशमांश के चिह्न खुदे हुए हैं। एक तुरीय दक्षिण के आधे आकाश को दक्षिणीय खूँटी की परछाहीं से पढ़ता है और दूसरा आधे उत्तरी आकाश को।

दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र

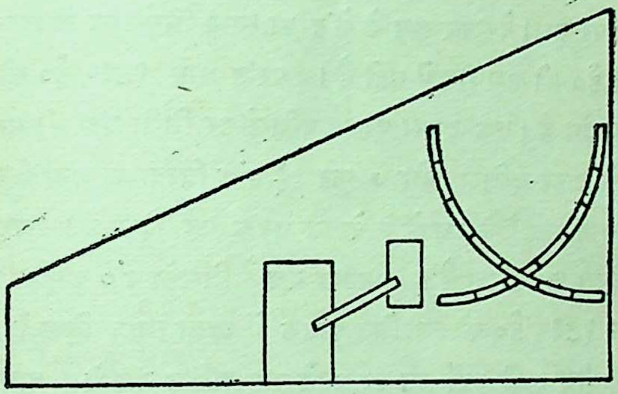

चित्र सं० ५

सूर्य्य की रोशनी में खूँटी दीवार के चिह्नों पर गहरी और हलकी छाया और उपछाया डालती है। जब सूर्य्य याम्योत्तर पर हो, इन परछाहियों का ठीक मध्य पढ़ लेना चाहिए। यदि २ या ३ मिनट पहले पढ़ा जाय तो एक कला की भूल हो सकती है। पढ़ने की सुविधा के लिये मैं एक सफेद कागज को मोड़कर ठीक अंश रेखाओं के नीचे दीवार के लंब रूप में रख लेता था और उस पर रेखाओं का चिह्न बना लेता था और परछाहीं की छाया-उपछाया की जगह पेंसिल से चिह्न कुछ मिनट पहले बना लेता था और फिर यथासमय परछाहीं की जगह का ठीक अनुमान कर लेता था। इस रीति से अंशों के दशमांश का अनुमान हो जाता था। बनारस में तो सूर्य्य कभी उत्तर आता ही नहीं, केवल दक्षिणी खूँटी का प्रयोग होता है। साल भर में सबसे बड़े और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे छोटे मध्याह्न-कालिक उन्नतांशों को, जो इससे पढ़े जाते हैं, घटाकर आधा करने से सूर्य्य की महत्तम क्रांति मिलती है। दोनों के ठीक बीच में वसंत विषुव (सायन मेष संक्रांति) और शरद् विषुव (तुला संक्रांति) होती है। महाराज जयसिंह ने इस यंत्र से सूर्य्य की महत्तम क्रांति २३ अंश २८ कला निकाली थी।

तारा देखने के लिये खूँटी में एक तागा या तार आवश्यकतानुसार बाँध सकते हैं। अथवा एक दूसरी खूँटी पहिली खूँटी की मोटाई के बराबर लेकर, रेखा पर लंब रूप में रखकर, उसके और जड़ी हुई खूँटी दोनों के ऊपर तारा देखकर छड़ के केंद्र का स्थान चिह्नों पर ले। यह यंत्र सन् १७७३ ई० की तसवीर में नहीं है। परंतु सन् १८६५ ई० की पुस्तक में इसका वर्णन है। एक दूसरा पुराना दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र भी मानमंदिर वेधशाला के बाहर दक्षिण ओर ७ फुट ०½ इंच त्रिज्या का बना है। मकान के इस भाग को वहाँ के रक्षकों ने घेरकर पृथक् कर दिया है। यह विशेष आज्ञा से देखा जा सकता है। यह वह यंत्र है जिसको पं० बापूदेव शास्त्री ने अपनी सन् १८६५ ई० की प्रकाशित पुस्तक में पहला स्थान दिया है।

इस दीवार की पूर्वी छत पर पहले कुछ अंकित यंत्र थे। अब छत पर कोई यंत्र नहीं है। एक चौकोर या गोलाकार १० फुट ३ इंच व्यास का यंत्र था। इसके दोनों पूर्वी किनारों पर दो लोहे की खूँटियाँ थीं जिनके सिरे पर छेद थे। सन् १८६५ ई० में केवल उत्तरी खूँटी थी। ये यंत्र संभवतः और यंत्रों के बनाने के सहायतार्थ बनाए गए थे। एक और चूने का गोलाकार २ फुट ८ इंच व्यास का और एक पत्थर का गोलाकार ३ फुट ५ इंच व्यास का और एक पत्थर की चिकनी चौकोर चौकी २ फुट २ इंच की उन्हीं यंत्रों के पास उसी छत पर थी। सुना जाता है कि समय समय पर मरम्मत के समय वे यंत्र हटा दिए गए हैं।

सन् १७७३ में सर राबर्ट बार्कर ने जो चित्र प्रस्तुत किया था उसमें दिगंश-यंत्र के दक्षिण में, जहाँ अब एक बड़ा कमरा है, पहले कोई कमरा न था। इस कमरे की छत दिगंश-यंत्र से ऊँची है जिससे यंत्र के दक्षिण ओर आकाश नहीं दिखाई पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

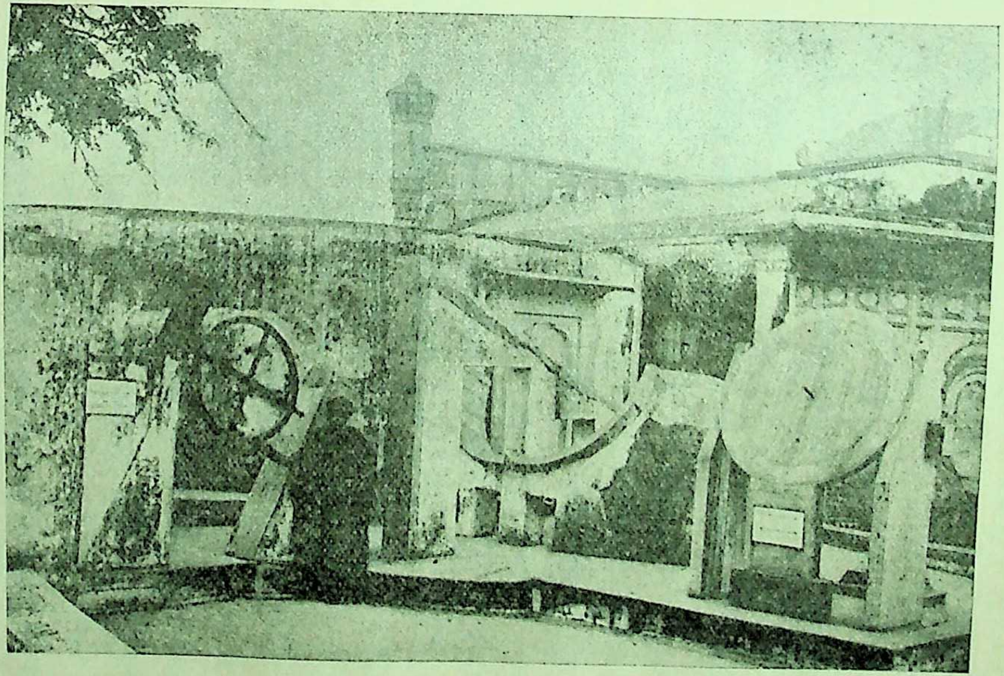

चक्र छोटा सम्राट् नाड़ी वलय

मानमंदिर (बनारस) के विभिन्न यंत्र

चित्र ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १८६५ ई० में एक दूसरे नाड़ी-वलय यंत्र के रहने का वर्णन है जो ६ फुट ३ इंच व्यास का था। यह दिगंश यंत्र के दक्षिण में था जहाँ पर अब एक बड़ा कमरा बन गया है। पं० बापूदेव शास्त्री ने अपनी पुस्तक में छोटे सम्राट् यंत्र के शंकु की चौड़ाई १५ इंच लिखी है परंतु इस समय नापने से ११ इंच होती है। दो स्थानों पर और यंत्र बने हुए थे जो अब पलस्तर टूट जाने से मिटे हुए मालूम पड़ते हैं। छत पर दिगंश यंत्र के उत्तर-पश्चिम कोने पर एक, और दूसरा फाटक के झंडे के नीचे चौतरे पर है। यंत्रों के समीप चारों ओर जो नालियाँ बनी हैं उनमें पानी भरकर सतह (तल) को बराबर कर लिया था।

ऐतिहासिक वर्णन—सर राबर्ट बार्कर कुछ समय तक बंगाल में प्रधान सेनापति थे। उन्होंने सन १७७७ ई० में इस वेधशाला का चित्र और वर्णन रायल सोसाइटी लंडन को दिया था उसमें लेफ्टिनेंट कर्नल कैंबेल ने, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रधान इंजीनियर थे, इसके कई विस्तृत चित्र भेजे थे। वे चित्र सन् १७७२-७३ के हैं। सर बार्कर १७७३ में भारतवर्ष से चले गए थे। महाराज माधवसिंहजी ने सन् १९११ ई० में इन यंत्रों की मरम्मत पं० गोकुलचंद्रजी राज-ज्योतिषी से कराई थी।

इस वेधशाला के बनने के समय के संबंध में मतभेद हैं। प्रिंसेप ने इसका १६८० में बनना बताया है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में १६९३ ई० लिखा है। प्रिंसेप ने लिखा है कि टैवनियर ने इसका वर्णन किया है। परंतु टैवर्नियर का देहांत सन् १६८९ ई० में ही हुआ था जब कि जयसिंह केवल ३ वर्ष के थे। यह भी सुना जाता है कि टैवर्नियर जब बनारस में वेणीमाधव के मंदिर (धरहरा) को देखने आए थे तो महाराज जयसिंह के वंश के दो लड़के उनसे मिले थे। उन्होंने लिखा है कि ये लड़के मिर्जा राजा जयसिंह के पौत्र (?) थे। क्या सवाई जयसिंह ने अपनी बाल्यावस्था में बनारस में पंडितों से शिक्षा प्राप्त की थी? फ्रांसीसी पादरी बोडियर सन् १७३४ ई० में बनारस आए थे और उन्होंने वेध का काम किया था। किंतु उन्होंने मानमंदिर का उल्लेख नहीं किया है। इसलिये के साहब का अनुमान है कि यह वेधशाला सन् १७३७ ई० में बनी होगी। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेधशाला में लगे हुए शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माणकाल १७१० ई० है।

यह स्पष्ट है कि वेधशाला के निर्माण काल की यथार्थ शुद्धता के बारे में निरर्थक विवाद होता है। गत शताब्दियों में राजा लोग किसी विशेष मुहूर्त पर यज्ञ अथवा पूजा करने के लिये आकाशीय ग्रह, सूर्य्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों की स्थिति पर निर्भर रहते थे। इस कारण वे आकाश का वेध किया करते थे जिससे पहिले से ही ऐसे मुहूर्त्त को जान सकें। मुसलमान बादशाह तथा मुगल सम्राट् भी आकाशीय पिंडों का वेध किया करते थे। किंवदंती है कि मुगल सम्राट् हुमायूँ छत पर तारों का वेध कर रहा था, अजान सुनकर वह शीघ्र ही उतरने का प्रयत्न करते हुए सीढ़ी से गिर जाने के कारण मर गया। अकबर और औरंगजेब भी आकाशीय पिंडों के देखने में दिलचस्पी लेते थे। इस कारण यह आश्चर्य की बात नहीं कि वेध करने के लिये उपयुक्त स्थान चुने गए हों और छोटी छोटी वेधशालाएँ केवल राज-गृहों के निकट ही नहीं अपितु तीर्थ तथा पूजा के स्थानों के निकट भी स्थापित रही हों। दशाश्वमेध और मणिकर्णिका के बीच मान-मंदिर है। उज्जैन और मथुरा भी तीर्थस्थान हैं। उनके रूप में सुधार तथा वृद्धि समय समय पर की गई होगी और यह कार्य्य संभवतः कई वर्षों तक चलता रहा होगा। इस कारण यदि हम किसी खास यंत्र की बनावट से वेध-शाला के बनने की तिथि निश्चित करना चाहते हैं तो भ्रम में पड़ जाते हैं और हमें हर पहलू को मिलाकर एक विशेष तिथि निश्चित करना कठिन हो जाता है। यज्ञस्थानों के निकट वेधशालाओं के रहने से यह भी अनुमान होता है कि प्राचीन समय में भी पंचांगों की अपेक्षा वेध-क्रिया प्रामाणिक मानी जाती थी।

ज्योतिष का संक्षिप्त विवरण

हमारे सिर के ऊपर छतरी के आकार का आकाश मालूम होता है। द्रष्टव्य पिंड की स्थिति कई प्रकार से नापी जा सकती है, जिसमें मुख्य तीन हैं। दूरी नापने का प्रश्न साधारणतः नहीं उठता है। माप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल कोण में किए जाते हैं। (१) पहले प्रकार में ऊर्ध्वाधर रेखा और क्षितिज के धरातल से नापते हैं। दिगंश वह कोण है जो कि क्षितिज पर नापा जाता है कि दृश्य-वस्तु किस दिशा में है। उन्नतांश वह कोण है जो बतलाता है कि वस्तु निश्चित समय पर क्षितिज से कितनी ऊँची है। बनारस वेधशाला में इस उन्नतांश के नापने के लिये कोई यंत्र नहीं है। जयपुर और दिल्ली में जय-प्रकाश और राम-यंत्र अब भी हैं। (२) दूसरे प्रकार में पृथ्वी की धुरी (अक्ष) और विषुवत् के धरातल से नापते हैं। वह कोण, जो किसी निश्चित स्थान से पृथ्वी की धुरी के चारों ओर का घुमाव बताए, विषुवांश कहलाता है। निश्चित स्थान मेष-संक्रांति मानते हैं, नत-घटी और लंकोदय इसी पर निर्भर है। और दूसरा कोण, जिसे क्रांति कहते हैं, यह बतलाता है कि विषुवत्-धरातल से दृश्य-वस्तु कितनी उत्तर-दक्षिण है। (३) तीसरे प्रकार में क्रांति-वृत्त का धरातल अर्थात् सूर्य की चाल का मार्ग और इसके लंबवत् कदंब-प्रोत, जो रेखा होगी उन दोनों से नापते हैं। आकाश में उत्तर-दक्षिण फैलाने से यह रेखा जहाँ पहुँचती है उसे 'कदंब' कहते हैं। वह कोण, जो क्रांति-वृत्त पर चारों तरफ नापते हैं, भुजांश कहलाता है और वह कोण जो इस समतल से उत्तर-दक्षिण होता है, खगोलीय-अक्षांश (शर) है। हिंदुओं का माप तीसरे प्रकार का है और विदेशियों का दूसरे प्रकार का। पहले प्रकार का प्रयोग बहुत कम होता है।

यदि हम इन तीनों प्रकार के कोणों में किसी एक प्रकार के दो कोण मालूम कर लें तो गणना से दूसरे प्रकार के दोनों कोण निकाल सकते हैं।

ग्रीनविच-नाटिकल-एलमेनक (नाविक पंचांग) साधारणतः दूसरे प्रकारवाला माप देता है। कोई कोई विदेशी पंचांग तीसरे प्रकार का भी माप देते हैं। वर्तमान काल में पाँच प्रसिद्ध स्थान हैं जो पंचांग और वेध का माप प्रकाशित करते हैं—(१) ग्रीनविच, (२) वाशिंगटन, (३) बर्लिन, (४) पेरिस और (५) सैनफर्नेनडो (दक्षिणी अमेरिका)। इस युद्ध के समय में भी उक्त स्थानों के वेध एक दूसरे से मिलाकर प्रकाशित होते हैं।

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खगोल को १२ टुकड़ों में ६ बड़े बृहत-वृत्तों से बाँटा गया है, जैसे एक गोल खरबूजे में १२ फाँकों के चिह्न हों जो दोनों शीर्षों में, जिन्हें कदंब कहा गया है, मिलते हैं। प्रत्येक फाँक एक राशि कहलाती है। मेष-संक्रांति से प्रथम फाँक आरंभ होती है। ग्रह जिस फाँक में हो उसी अंक में कुंडली के घरों में ग्रह को डालते हैं। प्रत्येक राशि में ३० अंश हैं। एक अंश में ६० कलाएँ और एक कला में ६० विकलाएँ होती हैं।

यह देखा जाता है कि सूर्य्य एक सायन वर्ष में फिर उसी नाक्षत्र स्थान पर नहीं लौटता। लगभग एक कला बारह राशियों में बाकी रहती है तभी विषुववृत्त पर पहुँचकर क्रांति-रहित हो जाता है। इसी विलक्षण गति के कारण वास्तविक संक्रांति हर साल कुछ आगे पड़ जाती है। लगभग ७० वर्ष में एक दिन का अंतर होता है। नाक्षत्र वर्ष की गणना को 'निरयण' कहते हैं, दूसरे प्रकार की गणना 'सायन' है। इस सायन-गणना में प्रत्येक वर्ष मेष नए स्थान से आरंभ होता है। इस कारण मेष दो, एक सायन दूसरा निरयण हुआ। निरयण मेष में सूर्य्य आजकल १३ अप्रेल को पड़ता है और सायन मेष में जब दिन-रात बराबर हों, २१ मार्च को। चैत्र कृष्ण ३० संवत् १९९९ वि० को स्थूल रीति से २२°।५७ 'अयनांश' हो गया। लगभग १४०० वर्ष पहले (१८ मार्च ५३२ ई०) सायन और निरयण ग्रहों की स्थिति बराबर थी, अयनांश शून्य था। सूर्यसिद्धांत के मत से अयनांश २७° तक बढ़ेगा, फिर क्रमशः घटेगा और इसी प्रकार दूसरी ओर २७° तक जायगा और घटेगा। पश्चिम के ज्योतिषियों के मतानुसार यह घटता नहीं, एक ही ओर बढ़ता जाता है और लगभग २६००० वर्ष में एक पूरी परिक्रमा कर लेता है। यही बात गणित से भी सिद्ध होती है।

शास्त्रों में नक्षत्रों की परिक्रमा लिखने की विधि भी विदेशी लेखकों से भिन्न है। इसमें परिक्रमा-काल (भगण-काल) नहीं लिखते थे, वरन् एक बड़ा समय (युग) ग्रहों के परिक्रमा-काल का लघुतम की भाँति बनाकर लिखते थे। इस रीति से, इस युगारंभ में सब ग्रह एक स्थान पर थे और उन्होंने भिन्न भिन्न गति से चलना आरंभ किया। कलियुग का आरंभ अब से ५०४३ वर्ष पहले कल्पना किया जाता है। ६०×६०×६०×२०=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

=४३२०००० वर्ष एक महायुग है। इस संख्या[१] से पश्चिमीय लोगों को बैबलोनिया के प्रभाव का अनुमान होता है। अबरखस (Hipparchus= हिपारकस), पराशर, आर्यभट्ट तथा पश्चिमीय ज्योतिषियों के अयन चलन से—, जो क्रमशः ४९·"८, ४६"· ५, ४६·" २, ५०·" १ हैं—३६०° को भाग देने से $\frac{४३२००००}{१६६}$, $\frac{४३२००००}{१५५}$, $\frac{४३२००००}{१५४}$ $\frac{४३२००००}{१६७}$ आता है, जिससे भी ४३२०००० का भान होता है।

पृथ्वी के दैनिक परिभ्रमण के कारण आकाश की सब वस्तुएँ एक दिन में पूर्व से पश्चिम की ओर घूम जाती हैं। और वार्षिक भ्रमण (परिक्रमा) के कारण वे सब एक वर्ष में पश्चिम से पूर्व धीरे धीरे चलती हैं। कभी ग्रह थोड़े दिन उलटे अर्थात् पूर्व से पश्चिम चलते दिखाई पड़ते हैं, तब उनकी गति 'वक्र' कहलाती है।

सूर्य्य और चंद्र की स्थिति को वेधशालाओं के यंत्रों से ठीक ठीक नाप सकते हैं। उनकी राशि, अंश, कला और विकला लिखकर जोड़, घटा सकते हैं। जोड़ने से योग और घटाने से तिथि ठीक ठीक बना सकते हैं। जब चंद्र के केंद्र और सूर्य्य के केंद्र एक राशि, भोगांश या भुजांश में हों, तब अमावस समाप्त होती है, प्रतिपदा आरंभ होती है और जब तक १२° का अंतर न हो जाय, प्रतिपदा रहती है। इसी प्रकार

१—अफलातून की विवाह संख्या प्रसिद्ध है। किसी शिष्य ने अफलातून से प्रश्न किया कि संसार में बुद्धि का उत्तरोत्तर विकास होते रहने से मनुष्य की अवनति क्योंकर होगी। इस पर उत्तर मिला कि कुछ काल व्यतीत होने पर ग्रहों के स्थान में ऐसा हेर-फेर हो जायगा कि ऋतुएँ अदल-बदल जायँगी, उपज बदल जायगी और विवाह ठीक मुहूर्त पर नहीं होंगे। अतः इनसे उत्पन्न हुई सन्तानें माता-पिता को नहीं मानेंगी, उन पर अविश्वास करने लगेंगी और मार-पीट करने पर तक उतारू हो जायँगी। इस प्रकार मनुष्य की बुद्धि अवनत हो जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक तिथि १२-१२ अंश भोगती है और समाप्त हो जाती है। आधी तिथि जितने समय में बीतती है वह 'करण' कहलाता है।

जैसे घटाने से तिथि निकलती है वैसे ही जोड़ने से योग बन सकता है। अश्विनी नक्षत्र के आदिबिंदु से सूर्य्य और चंद्र केंद्र जितने दूर हों उस दूरी को अंशों में निकालकर जोड़ लें और १३⅓ से भाग दें तो मालूम हो जायगा कि कितने योग बीत चुके और वर्तमान योग कितना व्यतीत हुआ है।

निज अवलोकन—मैं कभी कभी ४ इंची दूरबीन से आकाश को देखा करता था। सन् १९१७ ई० में लगभग ३ मास तक सूर्य्य-लांछन (धब्बा) को प्रातः, मध्याह्न और तीसरे पहर देखकर चित्र खींच लेता था। गत जनवरी मास में शुक्र को पश्चिम आकाश पर देखने लगा। वह प्रतिदिन वृद्ध होकर छिन्न होता गया, यहाँ तक कि नव-चंद्राकार होकर अदृश्य हो गया। पंचांगों में शुक्रास्त कई दिन पहले लिखा था। इसलिये स्थूल माप लेने लगा। गत ३० जनवरी की संध्या को शुक्र का आकार चमकीले रेखावृत्त का ⅛ दिखाई पड़ा था। फिर ३१ जनवरी को न देख सका। ३ फरवरी को प्रातःकाल सूर्य्य के ऊपर पश्चिम-उत्तर ५° पर बाल-शुक्र नवीन चंद्रमा के समान दिखाई पड़ा और इसके बाद प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ता तथा ऊँचा होता गया। मापों को सौर-पंचांग से मिलाने पर मालूम हुआ कि जब पंचांग में सूर्य और शुक्र का अंतर ३५° अंश लिखा था तो आकाश में १८° अंश ही था।

दिन में तारा देखने पर कुछ लोगों ने आश्चर्य किया था। वह तारा शुक्र ग्रह ही था। जब ग्रह पृथ्वी के निकट आ जाता है और सूर्य्य से प्रकाशित या उज्ज्वलित अधिकतम दिखाई पड़ता है तब उसमें अधिकतम कांति होती है। शुक्र की सबसे अधिक चमक ९ मार्च को थी। इसलिये १०-१५ दिन तक दिन में दिखाई पड़ा था।

उदाहरण—३ तिथियों के निम्नलिखित भोगांश दिए गए हैं। पहले वेध की क्रिया की गई थी। पुनः पत्रा-पंचांगों से उनका मान निकालकर लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ली फरवरी १९४२ (१५ माघ शुक्ल अर्द्ध-रात्रि)

	सू०	बु०	शु०	श०
विश्व-पंचांग[१]	९।१९।१६	९।२९।५४	८।२८।५३	०।२२।४८
शास्त्री ,, [२]	९।१९।१७	१०।४।१	९।२०।४४	०।२८।४१
उज्जैन ,, [३]	९।१९।१९	१०।३।५८	९।२०।५९	०।२८।४५

ग्रहों के स्पष्टीकरण के संबंध में—विशेषतः बुध, शुक्र और शनि के स्पष्टीकरण में संस्कृत सारिणी से बने हुए पंचांग (जैसे विश्व-पंचांग) आदि में अधिक अंतर पड़ता है। वेधोपलब्ध बुध की राशि आदि १०।४।१ है। परंतु विश्व-पंचांग में बुध की राशि आदि ९।२९।५४ लिखी गई है जिस कारण बुध दूसरी राशि में पड़ता है और उसी दिन शुक्र के स्थान में भी २२° अंश का अंतर है। इसलिये पंचांग से बने हुए ग्रहों पर से फलादि के कथन के लिये विशेष गड़बड़ी होगी। शनि का जो मान विश्व-पंचांग में दिया हुआ है उसमें ६ अंश का अंतर है जो कि ६ महीने की शनि की चाल के बराबर होता है। विश्व-पंचांग अदृष्ट ग्रहों के गणनानुसार केवल फल के लिये भले ही बना हो किंतु एक राशि का अंतर बहुत हो जाता है।

२४ फरवरी १९४२ ई०

	बु०	शु०
विश्व-पंचांग	९।१६।५४	९।२।०
शास्त्री ,,	९।१८।२५	९।१२।२८
उज्जैन ,,	९।१९।४	९।१२।३०

१—विश्व-पंचांग = श्री काशी-ज्ञानमंडल का सौर पंचांग (सूर्यसिद्धांतानुसार)।

२—शास्त्री पंचांग = पत्रा श्री बापूदेवजी शास्त्री का।

३—उज्जैन पंचांग = प्रकाशक—श्री जीवाजी वेधशाला, उज्जैन (ग्वालियर राज्य)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दिन सायंकाल वेध से बुध और शुक्र का अंतर लगभग ७° प्राप्त हुआ, किंतु विश्व-पंचांग में यह अंतर १५° के लगभग है।

८ मार्च १९४२ ई०

	शनि	मं०	गु०
विश्व-पंचांग	०।२४।४६	१।६।४४	१।२३।२५
उज्जैन "	०।२९।२५	१।७।३३	१।१९।५०

	विश्व-पंचांग	उज्जैन पंचांग	शास्त्री पंचांग	वेध माप
शनि-मं०	१२°	८°	८°	७°
मं०-गु०	१६°	१२°	१२°	१२°

ऊपर की सारिणी से स्पष्ट है कि शनि और मंगल का अंतर विश्व-पंचांग के अनुसार १२° है और उज्जैन के पंचांग के अनुसार ८° है। परंतु वेध से वह अंतर लगभग ७° के बराबर था। इसी प्रकार मंगल और गुरु का अंतर विश्व-पचांग में १६° है। उज्जैन-पंचांग में १२° है और वेधोपलब्ध में भी १२° है। इससे स्पष्ट है कि मंगल लगभग ठीक है, किंतु शनि और गुरु में विशेष अंतर पड़ जाता है।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानमंदिर के अनुसार अक्षांश का माप—१० दिन तक

१३	मार्च	२५°।२०′	१७	मार्च	२५°।२१
१४	"	२५°।१८′	१८	"	२५°।१७′
१६	"	२५°।१८	१९	"	२५°।१५′

संक्रांति के उपरांत दूसरे मापक से—

२१	मार्च	२५°।२०′	३१	मार्च	२५°।२१′
२२	"	२५°।२२′	७	अप्रेल	२५°।२१′
२३	"	२५°।२०′			

उपर्युक्त माप पढ़े हुए उन्नतांश तथा क्रांति के योग से आए हैं। दोनों में निम्नलिखित संस्कार की आवश्यकता होती है, परंतु योग में ये कट जाते हैं:—

(१) मध्याह्नकालिक उन्नतांश और क्रांति, यंत्रों से देखकर, वायुमंडलीय वर्त्तनजनित अशुद्धि को शोधने के लिये ३०″ जोड़ा गया है।

(२) पृथ्वी का आकार निम्नाक्ष उपगोल है, क्योंकि पृथ्वी उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों पर धीरे धीरे कुछ चिपटी होती गई है। इसलिये पृष्ठ स्थान से जो लंब पृथ्वी के बाहर और भीतर बढ़ाया जाता है वह भूकेंद्र से न जाकर कुछ दक्षिण की ओर से जाता है। अतः भूकेंद्र और पृष्ठ-स्थान जोड़नेवाली रेखा तथा लंब के बीच के कोण को, किसी स्थान का अक्षांश जानने के लिये घटाना पड़ता है। बनारस (मानमंदिर) के लिये यह अंतर ८′ ५३″ है।

(३) वेधक्रिया भूकेंद्र पर न करने के कारण जो संस्कार किया जाता है उसको लंबन संस्कार कहते हैं। इसलिये ४″ घटाया गया है।

(४) पृथ्वी की गति के कारण पढ़े हुए मापों में एक अपेरण संस्कार और किया जाता है। यह बहुत सूक्ष्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानमंदिर के बड़े तथा छोटे सम्राट् यंत्रों के मध्याह्न अर्थात् कुछ मिनट पहले और कुछ मिनट पीछे के लिए हुए सूर्यक्रांति के मापों का मध्यमान तथा उज्जैन पंचांग का मान :—

मार्च १९४२	बड़ा यंत्र	छोटा यंत्र	उज्जैन
	अंश कला	अंश कला	अंश कला
८	५ १० द०	५ १६ द०	५ ७ द०
११	४ ० "	४ ५ "	३ ५७ "
१२	३ ३७ "	३ ४० "	३ ३३ "
१३	३ १० "	३ १५ "	३ १० "
१४	२ ४६ "	२ ५० "	२ ४६ "
१५	२ २३ "	२ २८ "	२ २३ "
१६	२ ० "	२ ५ "	२ ० "
१७	१ ३४ "	१ ३८ "	१ ३६ "
१८	१ १४ "	१ १३ "	१ १३ "
१९	० ५४ "	० ५१ "	० ४९ "
२०	० २७ "	...	० २६ "
२१	० १ "	० १० उ०	० ३ उ०
२२	० २३ उ०	० १४ "	० २० "
२३	० ४५ "	० ३८ "	० ४३ "
३०	३ २८ "	...	३ ३० "
३१	३ ५४ "	३ ४७ "	३ ५४ "
७ अप्रेल	६ ३३ "	६ २७ "	६ ३५ "

मानमंदिर वेधशाला के माप—

अक्षांश २५°१८′ २४·९″ उत्तर } ट्रिगोनोमेट्रिक सर्वे आफ
देशांतर ८३° ०′ ४६·९″ पूर्व ग्रीनविच } इंडिया १९१५ के अनुसार
समुद्र-तल से ऊँचाई अनुमानतः ३०० फुट।

घाट की एक बुर्जी पर बाढ़ के पानी का तल नापने के चिह्न फुटों में लगे हैं। उसके १४ फुटवाले चिह्न का मध्य २०९·५३७ फुट मध्यमान समुद्र तल से ऊँचा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्थिव चुम्बकत्व दिक्पात	०°४०′ पश्चिम (१९४२)	प्रतिवर्ष २′ बढ़ता है
,, ,, अवपात	३७°२५′ उत्तर	,, ,, ,, ,, ,,
,, ,, क्षैतिजबल	·३६६१३	,, ,, ·०००२ ,, ,,
गुरुत्वांक	९७८·९२२	,,

स्थानीय समय २ मि० ३·१ से० भारतीय (पुराने) प्रामाणिक समय (स्टैंडर्ड टाइम) से पहले (तेज) है।

दिल्ली-वेधशाला

दिल्ली-वेधशाला के संबंध में कुछ बताने से काशी के यंत्रों की उपयोगिता भली भाँति मालूम हो जायगी। वहाँ के 'जंतर-मंतर' में बड़े-बड़े यंत्र चूने के पलस्तर में बने हुए हैं। पलस्तर बिगड़ जाने से चिह्न बहुत कम स्थानों पर पढ़ने योग्य रह गए हैं। इसलिये जो काम मानमंदिर के छोटे पत्थरों के यंत्र पर हो सकता है वह उन बड़े यंत्रों से नहीं हो सकता। वहाँ के मुख्य यंत्र ये हैं:—(१) सम्राट्-यंत्र, (२) जयप्रकाश-यंत्र, (३) राम-यंत्र और (४) मिश्र-यंत्र।

१—सम्राट्-यंत्र पूर्व से पश्चिम १२५ फुट, उत्तर से दक्षिण १२० फुट, पृथ्वी से ऊपर ६०·फुट और पृथ्वी में १५ फुट गहराई में है। शंकु १२८½ फुट लंबा है। सम्राट्-यंत्र के पूर्वी खंड में एक षष्ठांश-यंत्र (वृत्त का छठा भाग) है। मध्याह्न-कालिक सूर्य्य की किरण एक ताम्र-पत्र के छोटे छेद में से अंकों पर पढ़ी जाती थी, परंतु अब यह बंद है।

२—जयप्रकाश-यंत्र में दो नतोदरीय अर्द्ध-गोल २७½ फुट व्यास के हैं। एक ही अर्द्ध-गोल यथेष्ट होता, किंतु अर्द्ध-गोलों में के चिह्न पढ़ने के लिये बीच-बीच में कई गलियाँ बनाई गई हैं। दोनों मिलकर पूरे अर्द्ध-गोल का काम करती हैं। अर्द्ध-गोलों के बीच में एक-एक २ इंच मोटे लोहे के खंभे परछाहीं डालने के लिये गड़े हैं। खंडों के बदले पहले दो तार पूरब-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण ऊपर बँधे थे और उनके केंद्र की परछाहीं चिह्नों पर पढ़ी जाती थी। अर्द्ध-गोल में बहुत से पतले चिह्न बने हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें उन्नतांश, दिगंश, रेखांश, अक्षांश, क्रांति और राशियों के चिह्न बने हुए हैं।

३—राम-यंत्र में दो गोलाकार दीवारें २४½ फुट ऊँची बनी हैं। प्रत्येक दीवार अविरत गोल नहीं है परंतु ३०-३० खंडों की है और दोनों गोलाकार एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों दीवारों के केंद्र अथवा बीच में एक एक २४½ फुट ऊँचा ५¼ फुट मोटा खंभा बना है। दीवारों और खंभों के बीच के फर्श पर ३०°-३०° त्रिज्याखंड ३ फुट ऊँचे चौतरे की तरह बने हैं। ये भी २४½ फुट लंबी हैं। चौतरों के नीचे आँख लगाकर खंभे के बगल से दृश्य-वस्तु देख सकते हैं। इससे तथा परछाहीं से भी उन्नतांश और दिगंश, जिनकी रेखाएँ नीचे के चौतरों और दीवारों के किनारों पर बनी हैं, पढ़ सकते हैं। दीवारों की रेखाएँ तो अधिकतर पढ़ने योग्य हैं, परंतु चौतरों की रेखाएँ बिगड़ गई हैं। दीवारों में दोनों तरफ छोटे-छोटे मुक्के छड़ को क्षैतिज रखने के लिये बने हैं और खंभे पर ६-६ अंश चौड़ी ऊर्ध्वाधर धारियाँ बनी हैं।

४—मिश्र-यंत्र मिश्रित है। इसमें कई यंत्रों का संग्रह है। संभवतः यह बाद में बना है। इसके बीच में नियत-चक्र स्थापित है। शंकु की चार दीवारें हैं, ये शंकु सम्राट् यंत्र के शंकु से छोटे हैं। बीच के दो शंकुओं के बाहरी किनारों पर बीच में छेददार एक-एक छोटा पत्थर जमाया हुआ है। छेद में एक छोटा-पतला डंडा खड़ा कर देते हैं जिससे उसकी परछाहीं दोनों बाहरी अर्द्धवृत्तों पर पड़ती है। इस यंत्र में चार अर्द्ध-वृत्त हैं, दो पूर्व और दो पश्चिम। इनके तल दिल्ली-याम्योत्तर से ७७° १६′ पश्चिम, ६८° ३४′ पश्चिम, ६८° १′ पूर्व और ७५° ५४′ पूर्व बने हैं जो कि संभवतः विदेशी चार प्रसिद्ध वेधशालाओं के देशांतरों से मिलते हैं। (१) ग्रीनविच वेधशाला सन् १७७५ ई० की है। इसका देशांतर ७७° १३′ ५″ है। (२) जियूरिच वेधशाला सन् १७५९ ई० में स्विटजरलैंड में बनी जो दिल्ली से ६८° ३९′५″ पश्चिम है। (३) जापान के नाटके गाँव की वेधशाला का अक्षांश ४३°३३′ है। यह दिल्ली से ६८°३′ पूर्व है। (४) सेरिच्यू वेधशाला प्रशांत-महासागर के पिक्-द्वीप में रूस से पूर्व है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

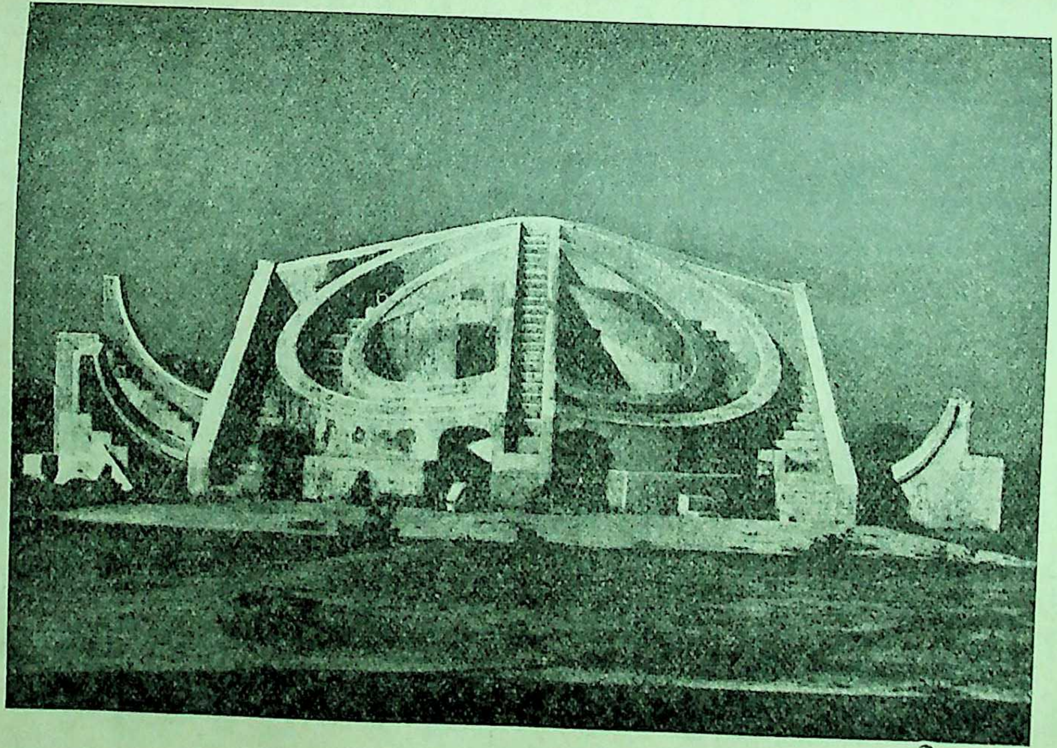

मिश्र यंत्र (दिल्ली)

चित्र ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षांश ४८° ६′ और दिल्ली से ७५°५८′ पूर्व है। जब डंडे की छाया सबसे पश्चिमी त्रिज्याखंड पर पड़ती है, तब सेरिच्यू नगर में ठीक दोपहर होता है। और त्रिज्या के अंकित स्केल पढ़ने से सूर्य्य की क्रांति ६ बजकर ५४ मिनट प्रातः दिल्ली स्थानीय काल मालूम होता है। दिल्ली का स्थानीय समय, भारतीय प्रामाणिक समय (भा० प्रा० स०—I. S. T.) से २१ मिनट पीछे है। प्रातः ७ बजकर २८ मिनट स्थानीय काल में दूसरी त्रिज्या पर नाटके का मध्याह्न पढ़ा जाता है। स्थानीय सायंकाल ४ बजकर ३५ मिनट पर जियूरिच का और ५ बजकर ९ मिनट पर ग्रीनविच मध्याह्न-काल पढ़ सकते हैं।

नियत-यंत्र के दोनों तरफ दो बेलनाकार तुरीय स्थानीय समय पढ़ने के लिये ठीक सम्राट् यंत्र के समान बने हैं। पश्चिम की ओर उत्तर में एक तीसरा तुरीय भी है जिसका तल ढलवाँ नहीं प्रत्युत क्षैतिज समतल है। इसके दोनों किनारों पर सूर्य की छाया का भिन्न भिन्न मान आता है जिससे अग्रांश का ज्ञान होता है।

इस इमारत की पूर्वी दीवार पर दक्षिणोत्तर-भित्तियंत्र है जिसका अर्द्ध-वृत्त आकाश की ओर ऊँचा याम्योत्तर बनाता है। इसके केंद्र के पत्थर में एक छेद है, जहाँ पहले लोहे की खूँटी मध्याह्न-कालिक उन्नतांश पढ़ने के लिये लगी रही होगी।

उत्तर की दीवार ऊर्ध्वाधर से लगभग ५° पीछे की ओर झुकी है और एक वृत्त-खंड पर चिह्न साफ साफ अंकित हैं। दिल्ली के सब यंत्रों की अपेक्षा यही चिह्न स्पष्ट हैं, मिटे नहीं हैं। जब सूर्य्य कर्क-राशि पर जून के महीने में सबसे अधिक उत्तर आता है तब इन चिह्नों पर केंद्र की खूँटी की परछाहीं को पढ़ सकते हैं। इसलिये इस यंत्र को कर्क-राशि-वलय कहते हैं।

वेध का महत्त्व

प्राचीन समय में हमारे पूर्वज ग्रहों को प्रायः प्रत्यक्ष देखकर उनके अनुसार ही मुहूर्त को शुद्ध मानते और अपने धर्मकार्य आदि करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किंतु समय के फेर से आज हमारा ध्यान उस ओर से हट गया है। हमारी वेधशालाएँ भी बेमरम्मत और अपूर्ण पड़ी हैं। समझदार जनता का यह कर्तव्य है कि अपनी वेधशालाओं का सुधार कराए और ग्रहों को प्रत्यक्ष देखकर, पंचांगों को ठीक करके उपयुक्त समय पर अपने धर्मकार्यों के करने की व्यवस्था करे। ग्रहण का समय आदि जानने के लिये जब वेध की अनिवार्य आवश्यकता है तब फिर ग्रहों की गतिविधि जानने और तदनुकूल पंचांग बनाने की आवश्यकता क्यों न हो? यह मत कि तिथि और योग की गणना केवल प्राचीन स्थूल गणित से करना पर्याप्त है, ठीक नहीं है वेध द्वारा ही उनका निर्णय किया जा सकता है और करना चाहिए।

——

विषय-सूची

१—भवन और निर्माता २१७-२१६

२—दिगंश यंत्र २१९-२२१

३—चक्र यंत्र २२१-२२२

४—नाड़ीवलय यंत्र २२२-२२३

५—सम्राट् यंत्र २२४-२२८

  सूर्यक्रांति २२५

  काल और नतिघटी २२६-२२७

  अन्य ग्रह ... २२८

६—दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र २२८-२३०

  ग्रहों की क्रांति याम्योत्तर में ... २३०

७—विभिन्न यंत्र ... २३०-२३१

८—ऐतिहासिक वर्णन २३१-२३२

९—ज्योतिष का संक्षिप्त विवरण ... २३२-२३६

१०—निज अवलोकन २३६-२४१

  बनारस का अक्षांश २३९

  रविक्रांति ... २४०

  मानमंदिर वेधशाला के माप २४०-२४१

११—दिल्ली वेधशाला २४१-२४३

  सम्राट् यंत्र, जयप्रकाश यंत्र २४१

  रामयंत्र, मिश्र यंत्र... २४२-२४३

  दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र २४३

  कर्कराशिवलय यंत्र २४३

१२—वेध का महत्त्व ... २४३-२४४

——

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपालवल्लभ

चौदहवीं शताब्दि का एक महत्त्वपूर्ण समूह-ग्रंथ

[लेखक—श्री नारायण शास्त्री आठले]

ज्यौतिष शास्त्र प्रायः तीन भागों में विभक्त किया गया है। गणित, संहिता और होरा। फिर भी इसकी अनेक शाखाएँ निर्मित हुई हैं। वस्तुतः ये सब शाखाएँ प्रश्न-शास्त्र से संबंध रखनेवाली हैं, क्योंकि मानवी जीवन में इसका ही अत्यधिक उपयोग होना पाया जाता है। ये शाखाएँ हैं प्रश्न, रमल, पक्षी, शकुन, स्वप्न, स्वर, संख्या, मुहूर्त, दृगार्गल इत्यादि। इन सबसे भिन्न है सामुद्रिक। आजकल की मासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाओं में प्रायः राशि तथा लग्न पर से प्रत्येक मनुष्य के भविष्य का विचार किया हुआ हम देखते हैं और इसका संबंध केवल होरा से ही होता है। इससे ज्यौतिष के इस महान् वृक्ष के विस्तार की कल्पना सहज हो सकती है। वेदकाल से आजतक इस शास्त्र पर भारतीयों ने तथा विदेशियों ने जो अखंड परिश्रम किए हैं उनके फल ग्रंथ रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। फिर भी कितने ही ग्रंथ प्रकाशित हुए बिना ही रह गए हैं। उपयुक्त होते हुए भी समाज जिनसे लाभ नहीं उठाता ऐसे कितने ही ग्रंथ अब भी उपस्थित हैं। ऐसे ही एक ग्रंथ का हम यहाँ परिचय कराना चाहते हैं।

इस ग्रंथ का नाम है 'भूपालवल्लभ सारोद्धार'। इसके रचयिता परशुराम ने इसे चौदहवीं शताब्दि के मध्योत्तरार्ध काल में बनाया। इस ग्रंथ की सिंदिया ओरिएंटल इंस्टीट्यूट उज्जयिनी के संग्रहालय में दो प्रतियाँ हैं, जिनमें एक तो पुरानी लिखी हुई है और दूसरी उसी की प्रतिलिपि है। हस्तलिखित प्रति के पत्र १२८ से १३० तक नष्ट हो गए हैं। दूसरी प्रतिलिपि संपूर्ण है। इसका कारण यह है कि सन् १९३३ के जनवरी मास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पुरानी प्रति संग्रहालय में मँगवा कर प्रतिलिपि कराई गई और नकल यहाँ रखकर असल ग्रंथ को वापस कर दिया गया था। परंतु फिर जब असल ग्रंथ मोल लिया गया तब पता चला कि उपरिनिर्दिष्ट पत्र नष्ट हो चुके हैं। यह ग्रंथ इस संस्था (सिंदिया ओरिएंटल इंस्टीट्यूट उज्जयिनी) में जावद ग्राम (मंदसोर जिला, ग्वालियर) के पं० दामोदर शास्त्रीजी से मोल लिया गया। इसके अंतिम पत्र में लिपिकार ने अपना नाम, ग्राम तथा समय इस प्रकार दिया है—

'विक्रमार्कोद्गते काले भूवसुमुनिभूमिते ॥
मार्गशीर्षसिते पक्षे नवम्यां गीष्पतौ दिने ॥ ७ ॥
(स्थाने पिप्पलिकाभिधे नृपवरो श्रीव्याघ्रजिद्रक्षिते
विद्यादानविवेकधीगुणनिधिः सन्मानपाथोनि)धिः ॥
तस्यायं नृपवल्लभेति प्रथितो ग्रंथो शुभो लिख्यते
लक्षीरामद्विजेन सन्मतिजुषा भूदेवधीपुष्टये ॥ २ ॥

श्रीशिवाय नमः ॥

ॐ नमः सच्चिदानंदस्वरूपिणे परमशिवाय ॥

उपर्युक्त ( ) कोष्ठक के अंश को, उसके किसी के द्वारा घनी काली स्याही से रँगे होने से, साधनों द्वारा महत्परिश्रम के साथ पढ़कर यहाँ उद्धृत किया है। इससे लक्षीराम नामक ब्राह्मण ने यह ग्रंथ विक्रम संवत् १७८१ (ई० स० १७२४) मार्गशीर्ष शुद्ध गुरुवार को पिप्पलिका ग्राम में राजा व्याघ्रजित् अथवा सगतावत वाघजी के लिये लिखा ऐसा स्पष्ट होता है। पत्रांक १ के आदि भाग और अंतिम पत्र के २रे भाग में "भूपालवल्लभस्य पुस्तकं॥ महाराज श्री सगतावत वाघजीकस्य॥ पत्र १७१॥" ऐसा लिखा है। इसके अनुसार राजा व्याघ्रजित् को सगतावत क्षत्रिय होना चाहिए। क्योंकि मेवाड़ के राणा नरवीर प्रतापसिंह के कनिष्ठ भ्राता शक्तिसिंह से जो वंश चला वह सगतावत कहलाता है (दे०— टाड राजस्थान भाग १, पृ० ३००)। जावद ग्राम, जहाँ से कि यह ग्रंथ मोल लिया गया, मंदसोर जिले में नीमच स्टेशन से कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह मील पर स्थित है। यहाँ से करीब ६ मील की दूरी पर अठाना जागीर है। यहाँ के ठाकुर चंद्रावत शिशोदिया वंश के हैं (दे०— Gwalior To Day pp. 224 etc.)। इसके कुछ ही अंतर पर पिप्पलिका अथवा पीपल्या ग्राम है जो कि उदयपुर राज्य में सम्मिलित है। जावद परगने के चारों ओर उदयपुर रियासत की हद है। इससे राजा व्याघ्रजित् अथवा बाघजी का सगतावत उदयपुर का निकट संबंधी होना सिद्ध होता है।

इस ग्रंथ में १७१ पत्र हैं और इसका आकार ११ × ४¾ इंच है। आदि के १६ पत्र मोटे अक्षरों में लिखे हैं और बाकी का भाग साधारण छोटे अक्षरों में है। सँभालकर न रखने के कारण इसमें कई जगह दीमक लग गई है। आदि अंत के दो पत्र सफेद कागज से चिपकाकर ठीक किए हैं। विषयनाम, प्रशस्ति, विराम तथा नानाविध चक्रों के लिये लाल स्याही का उपयोग किया गया है। इसकी लिपि तो देवनागरी ही है, परंतु उसमें कहीं कहीं जैन नागरी की झलक उतर आई है। हरएक जैन ग्रंथ के आरंभ में '६ □' (नब्बे जैसा) चिह्न[1] होता है, ठीक वैसा ही इसमें भी दिया है। पुस्तक अशुद्ध है। लछीराम की जो रचना पहले दी जा चुकी है उससे वह साधारण ही विद्वान् सिद्ध होता है। यदि वह व्याकरण का उत्तम ज्ञाता होता तो लिपि करते समय शुद्धियों का जरूर विचार करता। ग्रंथारंभ करते समय तथा पूर्ति के बाद लिपिकर्ता ने शिवजी को नमस्कार किया है। इससे उसका शिवभक्त होना निकलता है। भगवान् शिव के उपासक होते हुए भी लछीराम ने जैननागरी का अनुकरण कहीं कहीं किया है। इससे यह साफ प्रतीत होता है कि जैन धर्म का प्रभाव इस देश पर कितना रहा।

प्रकरणवश, रथ, पालकी, हाथी, घोड़ा, हथियार, व्यजन, चामर, छत्र आदि के सुंदर चित्र भी दिए हुए हैं। आदि के चार पद्यों में गणेश,

---

१—इस चिह्न का अर्थ 'ॐनमः' होता है यह बात हमें जैन साधु आचार्य विजयक्षमा सूरि (उज्जयिनी) द्वारा मालूम हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर, योगीश्वरी (कुलदेवता) पिता और गुरु इनका वंदन किया गया तथा इनकी स्तुति भी की गई है। इससे अगले १५ पद्य शास्त्र-प्रशंसा के हैं, जिनमें इस शास्त्र की आवश्यकता, महत्त्व, पठन-पाठन के योग्य व्यक्ति इनका निर्णय किया गया है। कौटिल्य जैसे महान् पंडित ने भी अर्थ-शास्त्र के १९वें अध्याय में, राजा की दिनचर्या का वर्णन करते हुए लिखा है कि दिन के ७ भाग में 'चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत्'। इससे इस शास्त्र की महत्ता तथा उपयोग कितना है इसका बोध सरलता से होता है। कर्ता ने इस ग्रंथ का नाम भूपालवल्लभ रक्खा। इसका कारण यह है कि इसमें ज्यौतिषादि संबंधी जिन विषयों का विचार हुआ है वे सब राजा के उपयोग के हैं। इन सबका विवरण दिया जाय तो लेख का विस्तार बहुत बढ़ जायगा। इसलिये इनकी केवल अनुक्रमणिका मात्र उद्धृत की है जिससे इस ग्रंथ का स्वरूप ठीक तरह से समझ में आ सके।

शास्त्रप्रशंसा, सांवत्सरसूत्रम्

॥ इति श्री भूपालवल्लभसारोद्धारे पर्शुरामोपदेशे स्वरशास्त्र सांवत्सरप्रकरणं प्रथमं ॥

मंत्रिफलं, सस्याधिफलं, रसाधिफलं, अयनादिफलं, पंचांगानयनं, पूर्ववर्षे तिथ्यानयनं तात्कालिकपंचांगं, ग्रहानयनं, तिथिप्रकरणं, वारप्रकरणं, मलस्नानप्रकरणं, योगप्रकरणं,

॥ इति श्री भूपालवल्लभे सारोद्धारे पर्शुरामोपदेशे स्वरशास्त्रे करणप्रकरणं ॥

नक्षत्रप्रकरणं, कुलाकुलप्रकरणं, भैषज्यप्रकरणं, मुहूर्तप्रकरणं, उपग्रहादियोगाः, संक्रांतिप्रकरणं, अंगशनिः, गोचरप्रकरणं, चंद्रावस्था, ताराप्रकरणं, तात्कालिकपंचांगं, अंकमुहूर्त, पंचकानि, मूलसार्पप्रकरणं, गंडांतप्रकरणं, वस्त्रप्रकरणं, लग्नप्रकरणं, रजस्वलाप्रकरणं, गर्भाधानप्रकरणं, जातकर्म, कर्णवेधः, अन्नप्राशनं, चौरकर्म, व्रतबंधप्रकरणं, विद्यारंभः,द्वादशराशिलग्नफलं, डिंभचक्रं, नक्षत्रफलं, जन्मलग्नगुणाः, अंशकाः, दशा

इति श्री भूपालवल्लभे सारोद्धारे पर्शुरामोपदेशे द्रेष्काणप्रकरणं समाप्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नप्रकरणं, विवाहप्रकरणं, अग्न्याधानं, वृषभवास्तु, गृहारंभः, कलशवास्तु, वास्तुप्रकरणं, शय्याचक्रं, बालपर्यंकचक्रं, वेदिकाचक्रं, मर्दनादंडी, ताम्बूलवर्गः, धान्यवर्गः, क्षीरवर्गः, विष्णुपट्टः, ब्रह्मपट्टः, रुद्रपट्टः, अंगनाचक्रं, इति कालज्ञानमपमृत्युनाशप्रकरणौ, उत्पातः, देवप्रतिष्ठा, गर्भलक्षणं, स्वातियोगः, आषाढीयोगः, रोहिण्यादियोगः, वृष्टिलक्षणं, सप्तनाडिचक्रं, अर्धकांडप्रकरणं, कूर्मचक्राणि, ग्रहयुद्धं, ग्रहसमागमः, ग्रहशृंगाटकं, अहिवलयचक्रं, शल्यज्ञानं, दीपचक्रं, नृपागारचक्रं, सिंहासनप्रकरणं, सिंहासनत्रयं, छत्रत्रयं, चामरचक्रं, व्यजनत्रयचक्रं, दोलिकाचक्रं, सेवाकाकिनीचक्रं, मातृकाचक्रं, राज्याभिषेकप्रकरणं, खड्गलक्षण, खड्गचक्रलक्षणं, धनुर्वेदः, चापचक्रं, छुरिका चक्रं, कुंतचक्रं, गदामुद्गरौ, लोहयष्टिः, वज्रं, अंकुशचक्रं, हस्तचक्रं, शस्त्रप्रकरणं, गजचक्रं, द्वितीयगजचक्र, गजप्रकरणं, रथचक्रं; कवचलक्षणं, अश्वलक्षणं, वयोलक्षणं, अश्वलक्षणशांतिप्रकरणं, वाजिनीराजनं, नारीनीराजनविधिः, निःसानचक्रं, भेरीचक्रं, गह्वरचक्रं, दामाने, काहलामदनकाहला, वीरवाधं, पटहडिंडिमौ, बिबिलादिचतुष्टयं, डमरुकं, शंखः, विषाणं, वाद्यवर्गः, अवकहडचक्रं, सर्वतोभद्रचक्रं, मातृकाचक्रं, द्वितीयमातृकाचक्रं, तृतीयमातृका, विजयचक्रं, बृहत्तरास्वरप्रकरणं, सूक्ष्मस्वरप्रकरणं,

॥ इतिश्रीभूपालवल्लभ सारोद्धारे पर्शुरामोपदेशे घातप्रकरणं ॥

राहुचक्रं, मुखादियोगपंचकं, उदरादियोगः, गुदादियोगः, पुच्छादियोगः, पंचविधराहुः, षडंगराहुः, मुखादियोगः, हृदयादियोगः, उदरादियोगः, गुदादियोगः, पुच्छादियोगः, कपालादियोगः इतिषट्कविधिः, कालवक्त्रन्यासः, मुष्कादियोगः, दक्षिणनेत्रादियोगः, दक्षिणकर्णादियोगः, दक्षिणनेत्रादियोगः, दक्षिणकुक्षियोगः, पादयोगः, दक्षिणसंधियोगः, दक्षिणमुष्कादियोगः, शिश्नादियोगः, वाममुष्कादियोगः, वामसंधियोगः, वामपादयोगः, वामकुक्षियोगः, वामहस्तादियोगः, वामकर्णादियोगः,

॥ इतिपर्शुरामोपदेशे कालवक्त्रचक्रं ॥

तात्कालिकराहुकालानलं, पंथाराहुचक्रं, छायागूढं, शनिकालानलचक्रं, भूमिश्च, बालेंदुकालानलं, लग्नचक्रं, संघट्टकालानलं, सूर्यकालानलं, भयंकरचक्रं, घोरकालानलं, पक्षिचक्रं, कुंभचक्रं, इति भूचरखेचरचक्रं ।

 ॥ इति पर्शुरामोपदेशे चक्रप्रकरणं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुरणं, काकआह्वानमंत्रः, त्रिपिंडविचारः, स्वप्नाध्यायः, यात्राप्रश्नप्रकरणं, प्रश्नप्रकरणं, लग्नशुद्धिः, ललाटगाः, प्रतिशुक्रं।

॥ इति भूपालवल्लभे पर्शुरामोपदेशे यात्राप्रकरणं ॥

इत्यभिषेकः, रक्षादीक्षा, जागरणपूजाविधिः, रणकंकणं, रणपट्टः, जयपट्टः, मेखलाविधानं, कवचं, न्यासः, मुद्रान्यासः, कंडकं, ओषधयः, गुटिका, कपर्दिका, अस्त्ररक्षा, अस्त्रमोडनं, पिच्छिकाविधिः, त्र्यंबकविधिः, काहलत्र्यंबकविधिः, मुरजभोजनविधिः, एतद्भस्मकंडनविधिः, यमश्लोकः, मारणं, मोहनं, स्तंभनं, उच्चाटनं, वशीकरणं, मालामंत्रः, हनुमत्पताका, रक्षा, पिच्छं, होमः, मंडूकयंत्रं, स्तंभयंत्रं, शत्रुभंगयंत्रं, कलिकुंडः, मृत्युंजययंत्रं,

॥ इति भूपालवल्लभे पर्शुरामोपदेशे मंत्रयंत्रादिप्रकरणं ॥

अडलः, आडलः, आडलचक्रं, चंद्रक्रमणं, विरंचिचक्रं, संघट्टपातचक्रं, त्रिनाडिपातचक्रं, द्वादशारचक्रं, लोहज्ञानं, पस्तारचक्रं, प्रस्तारतुंबरु, अंशद्वादशारतुंबरु, रुद्रफणिचक्रं, कालवक्त्रं, चंद्रफणिः, घायवडीडिंडिमः, द्वितीय घायवडी, सूर्यचक्रं, मूलस्वरः, तोरणचक्रं, श्येनचक्रं, फणीश्वरचक्रं, अहिवलनं, सूर्यफणिचक्रं, सूताचक्रं, वर्गबलं, आयचक्रं, खलकचक्रं, जयभूमिः, कालानला, विजयाभूमिः, भैरवी, बाला, योगीश्वरी, चंडी, यामभूमिः, भुजंगाभूमिः, कर्तरी, शार्दूली, सिंहली, महामाया, माहेश्वरी, देवकोटिः, शिवा, शक्तिः, धूम्रा, माणा, वराटिका, त्रिमुंडा, मत्सरी, धर्मा, मृता, धृष्टा, क्षया, अक्षया, दुर्मतिः, प्रवरा, गौरी, काली, नारसिंही, बाला, भूचरीखेचरी, गुह्या, वर्तमानमासद्वादशी, विष्टिः, केवला, त्रैलोक्यविजया, कालपाशौ, कराली, वडवा, अपराजिता, रौद्री, शिशु, मातंगी, अभेद्या, दहनी, जिता, बहुला, वर्गा, कपालिका, जयः, सूर्यचंद्रं, ग्रह, सूर्ययुतलग्नं, लग्नभूमिः, राहुकालानलाभूमिः, स्वरभूमिः, त्रिकालरुद्रः, ऋक्षराहुः, मासराहुः, पक्षराहुः, दिनराहुः, खंडराहुः, भोगः, मुहूर्तराहुः, कुलिकराहुः, अष्टविधराहुः, राशिचंद्रः, उदयराशी, मासचंद्रः, पक्षचंद्रः, दिनचंद्रः, तात्कालिकचंद्रः, सूर्यः, योगिनी, त्रिविधमातृकायोगिनी, तिथिकालः, वारकालः, शारीरिका, नक्षत्रभूमिः, कपाटा, राशिकालः, द्वितीयराशिकालः, इति भूबलानि ॥ सूर्यमंत्रः ॥

॥ इति श्रीभूपालवल्लभे पर्शुरामोपदेशे भूबलप्रकरणं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वजापताकानिर्णयः, सेनारूप (?) पंचकं, व्यूहरचना, व्यूहचक्रं, दिग्बलं, कालबलं, बलाबलं, चतुरंगसेनाचक्रं, ग्रामचक्रं, आडलचक्रं, पुरुचक्रं, कविचक्रं, ताराचक्रं, कवियुद्धप्रकरणं, दुर्गचक्रं, द्वंद्वयुद्धं, त्रिविधचक्रं, मल्लयुद्धं, गजयुद्धं, महिषमेषयुद्धं, द्यूतविजयः, वनचक्रं, व्याघ्रमंडलिचक्रं, वराहचक्रं, मृगचक्रं, जलक्रीडाचक्रं, जलवारिधिचक्रं, सत्त्वचक्रं, विडालादिचक्रं, पक्षिचक्राणि, कूर्मादिचक्रं ।

इति श्रीभूपालवल्लभे पर्शुरामोपदेशे स्वरशास्त्रे नानाग्रंथमते सारोद्धारः समाप्तः ।

श्रीशालिवाहनशकेऽष्टमुनिद्विचंद्रसंख्ये प्रयातयति दुर्मुखनाम्निवर्षे ।
आषाढमाससितयुग्मतिथौ सुरेज्यधिष्ण्ये दिने व्यरचयद्द्विजपर्शुरामः ॥

इस पद्य में कर्ता ने अपना रचना-समय दिया है। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि 'परशुराम नामक ब्राह्मण ने यह ग्रंथ श्री शालिवाहन शक १२७८ दुर्मुख नाम संवत्सर आषाढ़ शुक्ल द्वितीया गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में लिखकर समाप्त किया।' इस शक में ७८ जोड़ देने से ई० स० १३५६ आता है। अर्थात् ग्रंथ की रचना हुए आज लगभग ५८५ वर्ष बीत चुके। ग्रंथ के अंत में जो ४ पद्य कर्ता ने दिए हैं उनमें से यह पद्य क्रम से तृतीय है।

इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि जिन जिन ग्रंथों के आधार पर इसकी रचना की गई उनके नाम का निर्देश समग्र ग्रंथ में कहीं भी पाया नहीं जाता। केवल :—

'ज्योतिःशास्त्राणि संवीक्ष्य शिवोक्तानागमानपि ।
स्वानुभूत्या प्रकुर्वेऽहं शास्त्रं भूपालवल्लभम् ॥'

'नाना ग्रंथमते सारोद्धारः समाप्तः' इतना ही लिखकर छोड़ दिया है। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि परशुराम ने तत्कालीन उपलब्ध ग्रंथों का यथामति आलोडन करके अपने अनुभव के अनुसार यह ग्रंथ बनाया। शास्त्र-प्रशंसा के १४ पद्यों में, जिनका कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, निम्नलिखित दो पद्य विशेष महत्त्व के हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्कटाक्षप्रसादेन दरिद्रोपि नृपायते ।।
जडोपि वाचस्पतितां कटाक्षमुनिमुत्तमः ।।

आसीन्निःपापवासो द्विजकुलतिलकः सर्वशास्त्रेष्वधीती
क्वाणः श्रीकृष्णदेवः परहितनिरतो वेदवेदांगवेदी ।
तत्सूनुः पर्शुरामः सकलगणितविच्छ्रीकटाक्षस्य शिष्यः
शिष्यैः संप्रार्थ्यमानो नरपतिदयितं शास्त्रमेतच्चकार ।।

दूसरे श्लोक की दूसरी पंक्ति को 'क्वाणः' शब्द से आरंभ किया है। किंतु क्वाणः शब्द से कुछ बोध नहीं होता। हमारे मत से यह 'काण्वः श्रीकृष्णदेवः' ऐसा होना चाहिए। और ऐसा करने से श्रीकृष्णदेव का शुक्ल यजुर्वेदीय काण्व शाखा का होना सिद्ध होता है। परशुराम ने अपने पिता और गुरु का संकेत यथोचित रूप से करते हुए इनके निवासस्थान का उल्लेख संदिग्ध रूप से किया है। 'निःपापवासी' इस शब्द से परम पवित्र काशी नगरी का बोध होता है। अतः हो सकता है कि स्वयं कर्ता भी यहीं का रहनेवाला हो। शिष्यों की प्रार्थना से यह ग्रंथ कर्ता ने रचा और इसे स्वरशास्त्र के नाम से विभूषित किया। अंत के प्रथम पद्य में वह लिखता है:—

ज्योतिषं पृथगभाणि मुनीन्द्रैर्ज्योतितं पृथगपि स्वरशास्त्रम् ।
सर्वसाम्यपि करोतु हि कश्चित् तन्मयात्र विहितो पृथुयत्नः ।।

परंतु हमारे मत से यह ग्रंथ विशेषतया मुहूर्त ज्योतिष का ही होना चाहिए। क्योंकि स्वर अर्थात् नासिका के दोनों छिद्रों से निकलनेवाला वायु, और उसी के आधार पर फलादेश बरताने का जो शास्त्र, वही स्वरशास्त्र कहाता है। और इसका सीधा संबंध प्रश्नशास्त्र से ही है। इस ग्रंथ में जो भाग इस संबंध में दिया है उसके बहुतेरे पद्य शिवस्वरोदय से मिलते-जुलते हैं। अतः इसका संबंध केवल स्वर से न होकर ज्योतिषांतर्गत सब विषयों से है।

इस ग्रंथ का उल्लेख निम्न ग्रंथों में इस तरह से मिलता है—

(१) आफ्रेक्ट सूची, भाग १ पृ० ४१५ अ :—भूपालवल्लभ an encyclopedia of Dharma, Alainkara, Jyotis etc. by

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Paraśurāma. B. 4. 170, Bik. 292 ; Bhk. 36. Peters. 1. 108. Quoted by Narayana in मार्तंडवल्लभा, by Rama in मुहूर्तचिंतामणि, by कमलाकर in निर्णयसिंधु।

(२) काणे साहब का History of Dharmaśāstra भाग १ पत्रांक ५९९ अ :— An encyclopedia of Dharma, Astrology, Poetics & c. m. in नि० सिं० निर्णयदीपक, कालनिर्णय-सिद्धांत-व्याख्या।

(३) दीक्षित का भारतीय ज्योतिःशास्त्र :—इसमें कर्ता तथा ग्रंथ का केवल निर्देश किया है।

(४) आफ्रेक्ट सूची भाग १ पत्रांक ५४५ में भास्कराचार्य के लीलावती ग्रंथ की अनेक टीकाओं के नाम टीकाकारों के नाम सहित उद्धृत किए हुए हैं। इनमें प्रस्तुत ग्रंथकर्ता का भी नाम है, परंतु इसको टीका का नाम नहीं दिया।

इन संदर्भों से मालूम होगा कि दीक्षित आदि महोदयों ने यह ग्रंथ स्वयं नहीं देखा, वरन् दूसरे ग्रंथों के संदर्भों से निर्देश लेकर अपनी पुस्तकों में प्रविष्ट किया। इस ग्रंथ में साहित्य का कोई भी अंग वर्णित नहीं है। Catalogue of Sanskrit Ms S. in C. P. and Berar पुस्तक में सं० ७६३७ के नीचे प्रतिष्ठापाठटीका नामक ग्रंथ परशुराम के नाम पर दिया है। इसका विषय धर्मशास्त्र है और मूल-ग्रंथकार है आशाधर नामक एक जैन पंडित। इस आशाधर का समय १३वीं शताब्दि का आरंभ माना गया है (N. I. A. Vol III. No. 1, April 1940, Page 37)। अतः हो सकता है कि प्रतिष्ठापाठटीकाकार और प्रस्तुत ग्रंथकार एक ही हों। गवर्नमेंट पुस्तकालय, मद्रास और तंजावर के शरफोजी पुस्तकालय में यह ग्रंथ नहीं है। बीकानेर लायब्रेरी को छोड़ अन्यत्र कहीं हो तो मालूम नहीं।

परशुराम ने अपने को 'सकलगणितवित्' होना लिखा है, इससे वह स्वयं अवश्य ही वैसा होगा इसमें संदेह नहीं। इसके गुरु कटारुमुनि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक हमें कोई पता नहीं चला कि ये मुनि वस्तुतः कौन और कहाँ के थे। वैसा ही इसके पिता श्रीकृष्ण देव का हाल है।

मृत्यु होने से एक वर्ष पहले से मृत्यु-समय तक की पहचान करने के जो प्रमाण धर्म-भीष्मसंवाद रूप से महाभारत—शांतिपर्व में दिए हैं ठीक उसी तरह इस ग्रंथ में भी संग्रह किए हैं। इसी प्रकार युद्ध के लिये भूमि कैसी चाहिए, इसका विवरण भी बहुत विस्तृत रूप से दिया है। इन सब उल्लेखों से ई० स० १३५६ में, जब कि यह ग्रंथ तैयार किया गया, इस देश की राजकीय तथा सामाजिक परिस्थिति कैसी होगी इसकी अच्छी कल्पना हो सकती है। युद्ध, दुर्ग, सैन्य इत्यादि राजकीय विषयों को छोड़ शेष ग्रंथ के अनुसार भारत में आज भी बहुत से ज्योतिष के कार्य होते हैं। अतः यह समूह रूप ज्योतिष ग्रंथ आज भी महत्त्वपूर्ण होने से प्रकाशनार्ह है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरगाथा-काल की रचनाओं पर विचार

[लेखक—श्री अगरचंद नाहटा]

हिंदी-साहित्य की मौलिक गवेषणा अभी बहुत कम हुई है। जो कुछ नई खोज हुई है उसका ठीक उपयोग भी नहीं हुआ है। फलतः शिवसिंहसरोज एवं मिश्रबंधुविनोद की अनेक भद्दी भूलें अद्यावधि ज्यों की त्यों चली आ रही हैं। हिंदी-साहित्य के कितने ही इतिहास प्रकाशित हो चुके हैं, पर उनके लेखकों ने प्रायः पूर्ववर्त्ती ग्रंथकारों का अनुकरण ही किया है।

हिंदी-साहित्य के वीरगाथा-काल का विचार कीजिए। इस काल की कही जानेवाली अधिकांश रचनाएँ बहुत पीछे की रचित हैं। अतः उन रचनाओं के आधार पर तत्कालीन हिंदी भाषा का जो रूप निर्धारित किया जाता है वह बहुत ही भ्रामक है। जब मैंने इस काल के जैन ग्रंथों की भाषा का अध्ययन किया और उसके साथ इस काल की कही जानेवाली रचनाओं की भाषा की तुलना की तो मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया कि इस काल की एक भी रचना अपने समय की भाषा सुरक्षित नहीं रख सकी है। इस विश्वास की सत्यता निर्धारित करने के लिये मैंने इस काल के कहे जानेवाले समस्त ग्रंथों की छानबीन करनी प्रारंभ की। इस काल के तीन प्रसिद्ध ग्रंथों—पृथ्वीराजरासो, वीसलदेवरासो और खुम्माणरासो के संबंध में अपनी गवेषणाओं के परिणाम मैंने तीन स्वतंत्र लेखों में प्रकट किए हैं ?[१]

१—(१) पृथ्वीराजरासो—'राजस्थानी' वर्ष ३, अंक ३।
(२) वीसलदेवरासो—'राजस्थानी' वर्ष ३, अंक ३।
(३) खुम्माणरासो—'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' वर्ष ४४, अंक ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रस्तुत लेख में इस काल की अवशिष्ट समस्त रचनाओं का सिंहावलोकन कर लिया जाता है जिससे कि हिंदी-साहित्य के इतिहास की परंपरागत भूलों तथा भ्रांतियों का निराकरण होकर वास्तविक तथ्यों का निर्धारण हो सके।

मिश्रबंधुओं के संकलित 'मिश्रबंधुविनोद' ग्रंथ की कई आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, पर मेरे विचार से १०० से भी अधिक भूलें तथा भ्रांतियाँ उसमें ज्यों की त्यों अद्यावधि चली आ रही हैं। इस लेख का विषय वीरगाथाकालीन हिंदी-साहित्य की आलोचना ही होने के कारण अन्य अशुद्धियों के विषय में स्वतंत्र लेख में प्रकाश डालने की सूचना करते हुए वीरगाथाकालीन जिन रचनाओं का उसमें उल्लेख है उनकी ही सूची दी जाती है:—

(१) संवत् ८९० के लगभग ब्रह्मभट्ट ने खुम्माणरासो रचा।

(२) सं० १००० का रचित भगवद्गीता भुआल कृत सं० १९७६ की खोज में मिला।

(३) सं० ११३७ वाले कालिंजर के राजानंद भी कवि माने गए हैं।

(४) सं० ११८४-९६ में चौलूक्य सोमेश्वर ने हिंदी कविता की।

(५) सं० ११८० के लगभग मसऊद एवं कुतुबअली नामक कवि हुए।

(६) सं० ११९१ में साईंदान चारण ने 'समतसार' ग्रंथ रचा।

(७) सं० १२०५ से ८५ में अकरम फैज ने 'वर्त्तमाल' एवं 'वृत्त रत्नाकर' ग्रंथ का भाषानुवाद किया। यह कवि जयपुर[१] नरेश के यहाँ था।

(८) जगनिक ने आल्हाखंड बनाया।

(९) केदार कवि इसी समय हुए।

(१०) जयचंद के पुत्र शिवजी की सभा में बारद रबेण नामक अच्छे कवि हुए।

१—यह जयपुर यदि प्रसिद्ध जयपुर हो तब तो कवि का समय स्वतः पिछला प्रमाणित हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) सं० १२४७ में मोहनलाल द्विज ने 'पन्तलि' नामक ग्रंथ रचा।

(१२) सं० १३२५ में मराठी हिंदी मिश्रित 'वासहरण' ग्रंथ बनाया गया।

(१३) सं० १२८६ से १३५० के लगभग में ज्ञानेश्वर और मुक्ताबाई ने हिंदी कविता को अपनाया।

(१४) इसी समय नामदेव ने रचना की।

(१५) सं० १३५४ में नरपति नाल्ह ने 'वीसलदेरासो' बनाया।

(१६) सं० १३५५ के लगभग नल्लसिंह ने 'विजयपाल रास' बनाया।

(१७) सं० १३५७ में शार्ङ्गधर ने 'हमीर रास' बनाया।

(१८) सं० १३८५ में मुल्ला दाऊद ने 'नूर क चंदा' नामक प्रेम-कहानी लिखी।

(१९) (२०) (२१) अमीर खुसरो, कवि चंद और जिनवल्लभ सूरि प्रसिद्ध हैं ही।

इनमें से सं० १, १५ तथा २० के विषय में मेरे स्वतंत्र लेख प्रकाशित हो चुके हैं, और सं० २ तथा ११ की रचनाएँ बहुत पिछली सिद्ध हो चुकी हैं। सं० ३, ४, ५, ७, ९, १० तथा १८ के ग्रंथों का अभी तक पता नहीं चला और सं० १२, १३ तथा १४ के ग्रंथ भी मेरे अवलोकन में नहीं आए। अवशिष्ट ६, ८, १६ तथा १७ के विषय में कुछ ऊहापोहा की जाती है।

६—संवतसार (समतसार नाम अशुद्ध है) ग्रंथ की २ प्रतियाँ राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता के संग्रह में हमारे अवलोकन में आईं। यद्यपि उनमें कर्त्ता एवं रचनाकाल का कोई निर्देश नहीं है, पर सोसाइटी के संग्रहकर्त्ता ने उसे साईंदान रचित ही लिखा है और उन्हें सिलका गोत्र के चारण एवं मेवाड़ के सिगला ग्राम के निवासी[1] बतलाया है। ग्रंथ की भाषा पर विचार करने से यह रचना संवत् ११९१ की न

१—हिंदी पुस्तक में बीकानेरवासी लिखा है। यदि वह ठीक हो तो कवि का समय पिछला सिद्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर सं० १७०० से १९०० के बीच की प्रतीत होती है।[1] ग्रंथ के कतिपय पद्य नीचे दिए जाते हैं जिससे उसकी भाषा का पता चल जाय—

मिट गयो सकल संदेह, कातिक फल कुँ सुनत ही।
हे देवन के देव, मगसर फल मौकूं कहो ॥

आदि—मेघमाल ज्यों ग्रंथ को और जोति को तंत।
जिन देख्या आगम कहुँ समयसार नो ग्रंथ ॥ १ ॥
पारवति नुं प्रश्न हे देवन के देव !
सुरभक्ष दुरभक्ष वरस को अ.................।
मादेव (महादेव) देव उतर दीयो, सुणइ उमा चित लाय।
सुरभक्ष दुरभक्ष वरस को देऊँ भेद बताय ॥ ३ ॥

× × × ×

समतसार के ग्रंथ (न) को पढ़ैं गुनै नर कोय।
अगम कथह सोइ पुरख, जगत महाजस होय ॥

इति समतसार संपूर्ण लिखतं नगर लूणावा मध्ये सं० १९२२ शके १७६६ मासोत्तमे भाद्रमासे शुभे शुक्लपक्षे ४ शुक्रवारे (पत्र २२, पद्य ३१९)

८—जगनिक रचित आल्हाखंड को वीरगाथाकालीन मानना भाषाशास्त्र की स्पष्टतया अवहेलना करना है। हमारे कतिपय साहित्यिक विद्वानों की यह रूढ़ मान्यता मालूम देती है कि किसी व्यक्ति का गुण वर्णन करनेवाला कवि उसका समकालीन ही होना चाहिए। इसी रूढ़ मान्यता के कारण खुमाणरासो को ९वीं शताब्दी तक का बतलाया गया है, वीसलदे रासो को अब भी वीसलदे के समय की रचना बतलाया जाता है। इसी प्रकार अन्य कई रचनाओं का हाल है। पर यह धारणा भ्रांतिपूर्ण है,

---

१—बीकानेर के वृद्ध कविराजा सुखदानजी के कथनानुसार इसके रचयिता जोधपुर नरेश मानसिंहजी के समय में हुए हैं, अतः इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी ही प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि १०००-२००० वर्ष पूर्ववर्त्ती किसी व्यक्ति के विषय में वर्त्तमान का कोई भी ग्रंथकार या कवि वर्णन कर सकता है, और कर ही रहे हैं। अतः उस ग्रंथकार के समय का निर्धारण करने में अन्य बातों का विचार करना ही आवश्यक है। किसी भी ग्रंथ के समय-निर्धारण के लिये उसकी भाषा भी एक कसौटी होती है। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी का कोई कवि आज की भाषा में ग्रंथ-निर्माण नहीं कर सकता। हाँ, यह कहा जा सकता है कि मौलिक ग्रंथ की भाषा में परिवर्त्तन होते-होते भाषा का नया रूप खड़ा हो सकता है। किसी अंश में यह कथन ठीक भी है, पर आल्हाखंड की भाषा में तो प्राचीनता का अवशेष भी नहीं है अतः इसे मेरे नम्र मतानुसार वीरगाथा-काल की रचनाओं में स्थान नहीं मिलना चाहिए।

१६—नल्लसिंह के विजयपाल रासो का रचना-काल सं० १३५५ के लगभग मानने का आधार क्या है।?[१] विजयपाल रासो की पूरी प्रति भी कहीं मिली है, ऐसा जानने में नहीं आया। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद जी ने अपनी कवि-रत्नमाला के भाग १ पृ० २२ में लिखा है —

"बूंदी से कविराव रामनाथसिंह जी ने विजेपाल रासो का थोड़ सा भाग भेजा है और लिखा है कि वह रास नल्लजीकृत है। इनका इतना ही भाग मिला है।"

नल्लसिंह-कृत विजयपाल रासो की कविता इस ढंग की है—

ब्रजवंश विजयपाल भय, शील शुद्ध ध्रुव अंग।
राजा सब जीते समर, विजयपाल लिय जंग ॥१॥

छप्पय—

बैठि पाट विजयपाल दाट, गज्जन लगि दिन्निय।
खुरासान असपहाँ रूम, चंचल चढ़ि तिन्निय।

१—कुँअर महेंद्रपालसिंह का 'महाराज विजयपाल और उनका रायसा' नामक लेख 'विशाल भारत' के अक्तूबर १९३४ के अंक में प्रकाशित हुआ है। उसमें उक्त रासे के जो उद्धरण दिए गए हैं उनकी भाषा से इस रासो का रचना-काल १७ वीं शताब्दी के बाद का ही संभव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईरानि तूरान भंजि, वल की वपु भारि।
गज्जि देश हवसान पेश लीनी हितकारी।
फिरकान मारि दहवह किय तुरकानी कीनी कियब।
झालरि मृदंग झल्लरि शवद, यों परिहसि असुरन दियब।

उपर्युक्त उद्धरण में आए हुए बैठि, यों आदि तथा सं० ४ के छप्पय में "ले मिले भेंट अगणित नृपति पातसाह पावन लगे, नृप विजयपाल महाराज जू जवे वीररस में पगे", आदि से इनकी भाषा १७ से १९वीं शताब्दी की निश्चित होती है। मेरे विचार से यह रचना १८-१९वीं शताब्दी की होनी चाहिए। पूरा निश्चय तो पूर्ण प्रति मिलने पर ही हो सकता है। पर मुंशी जी के उद्धृत अंश से इतना तो निश्चय ज्ञात होता है कि यह रासो वीरगाथा-काल की रचना नहीं है। मिश्र-बंधुओं ने इसका समय संवत् १३५४ के लगभग किस आधार पर माना है, यह अज्ञात है।

१७—मैं नहीं कह सकता कि शार्ङ्गधरकृत हमीर रासो के रचे जाने का प्रमाण क्या है? अद्यावधि एक भी ऐसा प्राचीन प्रमाण मेरे जानने में नहीं आया जिसमें उक्त रासो का उल्लेख हो और न यह उपलब्ध ही है। पंडित रामचंद्र जी शुक्ल अपने 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि "प्राकृत पिंगलसूत्र उलटते-पुलटते मुझे हमीर की चढ़ाई, वीरता आदि के कई पद्य छंदों के उदाहरणों में मिले। मुझे पूरा निश्चय है कि यह पद्य असली हमीररासो के ही हैं।" शुक्ल जी जैसे विद्वान् के उपर्युक्त कथन के विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि प्राकृत पिंगल में हमीर संबंधी पद्य मिलते हैं, पर वे हमीररासो के ही हैं, यह कोई तर्क नहीं। वे अन्य ग्रंथ के तथा अन्य ग्रंथकार के भी हो सकते हैं। ऐसा कहने एवं होने के उदाहरण भी अनेक विद्यमान हैं। उस समय प्रायः राजाओं के आश्रय में अनेक कवि रहते थे और समय समय पर यथाप्रसंग फुटकर पद्यों की रचना करते थे। अतः जहाँ तक कोई सबल प्रमाण न हो तब तक शुक्ल जी का कथन निश्चिततया स्वीकार नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लजी के इतिहास (पृ० ६१) आदि कई ग्रंथों में केदार एवं मधुकर कवि रचित जैमयंकजसचंद्रिका एवं जयचंद्रप्रकाश ग्रंथ का उल्लेख किया गया है। दयालदास की ख्यात में जयचंद्र संबंधी वर्णन उन ग्रंथों के आधार पर लिखा गया कहा जाता है। पर मैंने ख्यात का अवलोकन किया तो ऐसा लिखा कहीं देखने में नहीं आया। हाँ, इन ग्रंथों का उल्लेख उसमें अवश्य है। पर यदि ये समकालीन ग्रंथ दयालदास को उपलब्ध होते तो अनेक इतिहास-विरुद्ध बातें जो उसने ख्यात में लिखी हैं, न पाई जातीं।

मधुकर एवं केदार के ग्रंथों का उल्लेख ख्यात में इस प्रकार है—

अरू पीछै राजा ने स्वयंवर कर्णे का विचार किया, जिस दिन में दुर्गा केदार कवि मधुकर भट्ट आए, वीरता उदार गुन नृप के बनाए, तिन ग्रंथ के नाम शुचित दोहा—

जै मयंक जस चंद्रिका, पुनः जयचंद्रप्रकाश।
कवि मधुकर केदार किय, जगद नखग गुन जास ॥ १ ॥

वार्त्ता—दोनुं ही ग्रंथ कर नृप जयचंद कुँ सुनाए, जिस वख्त जुगल भाट दान दोय अर्व के पाए।

(पृष्ठ ३२ A भाग १—प्रति स्टेट लायब्रेरी)

खुसरो की रचनाएँ वीरगाथा-काल की निश्चित मानी जाती हैं॥ पर मेरे विचार से जिस रूप में वे अभी उपलब्ध हैं उनमें उस समय की भाषा सुरक्षित नहीं है क्योंकि खुसरो की रचनाओं की समकालीन एक भी हस्त-लिखित प्राचीन प्रति अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुई और न तत्कालीन अन्य किसी कवि की भाषा से उसका सामंजस्य ही है। कई विद्वान् कहते हैं कि खुसरो की हिंदी उस समय की बोलचाल की भाषा है, साहित्यिक नहीं। पर अन्य प्रमाणों के अभाव में यह कथन कल्पना मात्र प्रतीत होता है। खुसरो की हिंदी कविता के संपादक बाबू व्रजरत्नदास जी भी लिखते हैं कि "इतना कहने पर भी इस कविता के आधुनिक रूप का समाधान नहीं होता। यह कहना कि यह कुल रचना ज्यों की त्यों खुसरो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है, कठिन है। हस्तलिखित पुरानी पुस्तकों के मिलान आदि के साधन दुर्लभ हैं। पिछले संग्रहकार आजकल के खोजियों की तरह छानबीन करने के प्रेमी नहीं थे।"

अतः अभी तक तो मेरी छानबीन के अनुसार वीरगाथा-काल की एक भी जैनेतर रचना उस समय की भाषा में सुरक्षित नहीं है। हिंदी भाषा के इतिहास-लेखकों को भविष्य में इस समस्या पर भली भाँति विचार करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरति-निरति

[लेखक—डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल बी०, डी० लिट०]

सुरति तत्त्व संतों के सिद्धांत और साधन-पथ की भित्ति है। हिंदी में सुरति का सामान्य अर्थ है स्मृति, याद। तुलसीदास,[1] सूरदास,[2] घनानंद[3] से लेकर हरिऔध[4] तक अधिकांश में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत के 'स्मृति' शब्द से निकला है। 'म्' का लोप, 'ऋ' का 'उ' में परिवर्तन और उसके संसर्ग से 'र' का आगम—इस प्रकार सुरति शब्द सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त और अर्थों में भी इसका प्रयोग मिलता है। सुरति का अर्थ सुष्ठु प्रेम (सु-रति) और सुरति का अर्थ रति-क्रीड़ा (सुरत)। इस प्रकार 'सुरति' अक्षर-समूह में तीन शब्दों का परिवर्तित रूप छिपा है। कवि सेनापति ने तीनों

१—बारबार रघुनाथहिं सुरति कराएहु मोरि।—रामचरितमानस, कांड ७, पद १६। और भी देखिए २,५६; २, ३२५; ३, २१; ५, १४; ६, ६६ (गीता प्रेस संस्करण)।

२—रीती मटकी सीस धरै।
बन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही यह कहति फिरै।
कबहुँक जाति कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम की सुरति करै॥
—सूर-सुषमा, पृ० १९२, ३६०।

३—लागी है लगनि प्यारे, पगी है सुरति तोसों, जगी है बिकलताई, ठगी सी सदा रहै।—सुजान सागर, (ना० प्र० स० संस्करण) पृ० ७४, ६३।

४—कंसारी को सुरति व्रज के बासियों की कराना।
—प्रिय-प्रवास, सर्ग ६, छंद ६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थों में एक ही पंक्ति में इस शब्द का प्रयोग करके[१] यमक का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

संतों ने इस शब्द का प्रयोग स्मृति के अर्थ में किया है। उनका सिद्धांत है कि सत्तत्त्व परब्रह्म इसी शरीर में है। परमात्मा और आत्मा तथा आत्मा और जीव में कोई तात्त्विक अंतर नहीं। माया के सूक्ष्म-स्थूल आवरणों को धारण कर ब्रह्म ही जीव हो गया है। हमें इस बात का ज्ञान न होने पर भी वह हमारे भीतर अपने पूर्ण प्रकाश से जाज्वल्यमान है। ब्रह्म से शब्द-ब्रह्म, त्रैगुण्य पंचभूत, अंतःकरण, अहंकार और स्थूल माया—इस प्रकार ब्रह्म के विवर्तन से चराचर सृष्टि का बंधान खड़ा हुआ और जीव बंधन में पड़ा। ब्रह्म के ऊपर पड़ी हुई परतें दूसरी दृष्टि से देखने से कोश नाम से अभिहित की जाती हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश आत्मा के ऊपर पड़ी हुई परतें ही हैं। कल्पना कीजिए कि एक न बुझनेवाला बृहत् प्रकाश-पुंज है जिस पर एक के ऊपर एक दूधिया काँच और अन्य धातुओं के कई खोल चढ़े हुए हैं जिससे प्रकाश बाहर नहीं दिखाई देता। परंतु हमारे न देख सकने पर भी प्रकाश तो वहाँ है ही। यही दशा हमारे भीतर के प्रकाश की है। अंतर केवल इतना है कि उक्त प्रकाश-पिंड के ऊपर से परतें हटाकर हम उसका दर्शन कर सकते हैं किंतु आत्मा के ऊपर की परतें यों नहीं हटाई जा सकतीं। अब यदि हमारे वश में ऐसी क्रांतदर्शी किरण हो जो घनी से घनी धातुओं में प्रवेश कर उनको भी पारदर्शी बना दे तो इन खोलों के ऊपर उसका प्रयोग कर उन्हें बिना हटाए ही हम इस प्रकाश-पुंज का दर्शन करलें। ब्रह्मज्योति के संबंध में सुरति यही क्रांतदर्शी किरण है जिसके द्वारा जीव इसी जीवन में ब्रह्म-साक्षात्कार करके मुक्त हो सकता है, जीवन्मुक्त हो सकता है।

१—सेनापति साँवरे की सुरति की सुरति की सुरति कराइ करि डारत बिहाल हैं। (साँवले कृष्ण की सुंदर प्रेमवाली रतिक्रीड़ा की स्मृति कराकर राधिका को व्याकुल कर देते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा जीव होते हुए भी आत्मा है। जीवत्व में उलझा हुआ आत्मा अपने आत्मत्व को कभी त्यागता नहीं है। इस माया-जनित विस्मृति में भी जीव को कभी कभी अपने आत्मत्व की स्मृति हो आती है। ऐसे अवसरों पर कभी बिना प्रत्यक्ष कारण के और कभी दुःख-शोकादि से उद्विग्न होकर संसार से उसका जी उचट जाता है। क्या उसे तृप्ति देगा, वह यह नहीं जानता। हाँ, उसे यहाँ तृप्ति नहीं मिलती। बाल्यावस्था के भोलेपन में दार्शनिक प्रवृत्तिवाले भावुक कवि इस स्मृति की—शुद्ध आत्म-ज्योति की—झलक देखते हैं। संत योगी इसी लिये आध्यात्मिक जागर्ति की तुलना बालकपन से करते हैं और फिर से बालक हो जाना चाहते हैं[1]। बालकपन में 'यहाँ' की विस्मृति और 'वहाँ' की स्मृति रहती है। बालक मानो परमात्मा के पास से सद्यः आता है। गर्भस्थ शिशु की कल्पना संत लोग एक तपस्वी के रूप में करते हैं। पूर्व-कर्मों के कारण जीव को गर्भ में आना पड़ता है। वहाँ वह मानो पूर्व-कृत कर्मों के लिये पश्चात्ताप करता हुआ विशुद्ध प्रार्थनामय[2]—परमात्मामय—अस्तित्व रखता है। इसलिये शुद्ध आध्यात्मिक रूप में वह जगत् में अवतरित होता है। शैशव में इसी लिये स्मृति मानो मूल की ओर रहती है। प्रारंभ में 'अहं' का ज्ञान शिशु को नहीं रहता। धीरे-धीरे अहं की भावना उसके भीतर प्रतिष्ठित होती जाती है। यहाँ की स्मृति वहाँ की स्मृति को दबाती जाती है। जो कुछ कर्म वह करता है 'मैंने वह किया, मैं उसका कर्ता हूँ', इस रूप में यहाँ की प्रत्यभिज्ञा (स्मृति-ज्ञान) उसको होती है। यहाँ की प्रत्यभिज्ञा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, वहाँ की स्मृति विस्मृति में बदलती जाती है, और इसके साथ ही कर्मों का बंधन और माया का अंधकार भी[3]। माया-जाल के इसी बंधन को वह

१—कबीर-ग्रंथावली पृ० २९, १२। देखिए आगे टिप्पणी ४, पृष्ठ २६७।

२—गरभ कुंडि तर जब तू बसता, उरध ल्यौ लाया।
उरध ध्यान मृत मंडलि आया, नरहरि नांव भुलाया॥
कबीर-ग्रंथावली, पृ० २२१, ४०१।

३—उजला आया वतन से जतन किया कर काल।
चाव भुलानो आपनी यों भया बंधन जाल॥ तुलसी, रत्नसागर, पृ० १७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना घर समझने लगता है। वहाँ की स्मृति सर्वथा दबती जाती है और यहाँ की प्रत्यभिज्ञा उसके समस्त अस्तित्व को घेर लेती है। यहाँ की प्रत्यभिज्ञाएँ ही जीव को उसका जीवत्व देती हैं, जीव को जीव बनाती हैं और दुःख में डालती हैं। इसी लिये राधास्वामी संप्रदाय में जीव को सुरति कहते हैं। जीव 'यहाँ' की सुरति है, 'वहाँ' की सुरति नहीं। चेतना सुरति का मार्ग है। इसलिये विस्तृत अर्थ में मन ही सुरति है[१]। सुरति की

१—चेतन पैंड़ा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ।

—दादूबानी भाग १ पृ० ८६।

भीखा ! यही सुरति मन जानो। सत्य एक दूसर मति मानो॥

—महात्माओं की बानी, पृ० १९९।

श्री संपूर्णानंद ने 'स्रोत' से 'सुरति' को निकाला है और चित्तवृत्तिप्रवाहः उसका अर्थ किया है।—विद्यापीठ (त्रैमासिक), भाग २, पृ० १३५।

यहाँ की सुरति के अर्थ में 'स्रोत' का प्रयोग धम्मपद में भी हुआ है जिसमें मन के ३६ स्रोत माने गए हैं। आँख, कान, नाक, जीभ, काया (त्वचा), मन, रूप, गंध, शब्द, स्पर्श, धर्म (मन का विषय), आँख का विज्ञान (आँख से होनेवाला ज्ञान), कान, नाक, जीभ, काया (त्वचा) के विज्ञान-भीतरी बाहरी भेद से ये ३६ स्रोत हैं जिनमें मन बहता है—

यस्स छत्तिंसती सोता मना पस्सवना भुता।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥ —२४, ६।

(जिसके छत्तीस स्रोत मन को भली लगनेवाली वस्तुओं में ही लगाते हैं उसके लिये राग निस्सृत संकल्प बुरी धारणाओं को वहन करते हैं।)

सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तं च दिस्वा लतं जातं मूलं पंचाय छिंदथ॥ —२४,७।

(ये स्रोत सब दिशाओं में बहते हैं जिससे तृष्णा-रूप लता अँकुरी रहती है। उत्पन्न हुई उस तृष्णालता को देखकर प्रज्ञा से उसकी जड़ को काटो।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति दोनों ओर है—'इधर' भी, 'उधर' भी; सुलटी भी उलटी भी[1] । 'वहाँ' की सुरति माया में भी आत्मा का शुद्ध रूप है, यहाँ की सुरति आत्मा का माया में बद्ध (जीव) रूप है[2] । राधास्वामियों को छोड़कर अन्य सब संतों ने 'वहाँ' की स्मृति के अथ में ही सुरति शब्द का प्रयोग किया है। योग की साधनाओं के द्वारा अथवा अन्य कई अव्यक्त कारणों से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को कई जन्मों की स्मृति हो आती है। वह भी, चमत्कारी होने पर भी, 'यहीं' की स्मृति है, 'वहाँ' की नहीं।

मन की बहिर्मुख वृत्ति का कारण 'यहाँ' की प्रत्यभिज्ञा है। 'वहाँ' की सुरति उसे अंतर्मुख बनाती है। मन के प्रसरणशील स्वभाव को पीछे की ओर मोड़ना ही, सुलटी सुरति को उलटी करना ही,[3] साधना-मार्ग है, प्रभु से सम्मुख रहना है।[4] इसी लिये संतों ने स्मरण का विधान किया है। संत-मत ही में क्या, प्रायः सब साधना-मार्गों में किसी न किसी रूप में स्मरण का विधान किया गया है। सत्संग, दीक्षा-ग्रहण, जप-तप, योग, सब इसी एक उद्देश्य के लिये किए जाते हैं। ये सब अपनी अपनी दिशा

१—उलटा सुलटा दौंह दिसा चालै सुरति सुभाय ।

—गरीबदास, "आदि ग्रंथ", अंग ४९, ५४, पृ० १७३ ।

२—जिसकी सुरति जहाँ रहै, तिसका तहाँ बिसराम ।
भावै माया मोह मैं, भावै आतम राम ॥

—दादू बानी, भाग १, अंग ६, १०७, पृ० ११२ ।

बिषिया अजहूँ सुरति सुख आसा । हूंण न देइ हरि चरण निवासा ॥

—कबीर-ग्रंथावली, पृ० ११४, ८२ ।

३—पालो तब नाम-कुल करतार, बाँधकर चढ़ो सुरत का तार ।
मीन मत चढ़ गइ उलटी धार, मकरगत पकड़ा अपना तार ॥

—सारवचन, भाग १, पृ० २१३ ।

४—जै तन माहैं मन धरै, मन धरि निर्मल होइ ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ ॥

—कबीर-ग्रंथावली, पृ० २९, १२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, सुरति को अन्यत्र से हटाकर परम तत्त्व में सिमटाते हैं। जब तक सुरति सिमटकर बिना टूटे सूत्र की भाँति आत्मा में एकतान भाव से नहीं लगती, तब तक लक्ष्य-सिद्धि नहीं होती[1]। सत्संग—साधु और गुरु का संग—सुरति को उलटने के लिये अनुकूल परिस्थिति प्रस्तुत करता है। इस वातावरण में नाम-मंत्र प्रदान कर गुरु पुरातन स्मृति के टूटे हुए तार को जोड़ता है। साधुओं की, गुरु की संगति में साधक 'वहाँ' की बातें सुनता है जिससे उसके हृदय में 'वहाँ' के लिये प्रीति उत्पन्न होती है और स्मरण में उसका जी लगता है। इसी लिये किसी-किसी ने[2] 'श्रुति', श्रवण से 'सुरति' की व्युत्पत्ति मानी है। जगत् में भी गुण-श्रवण मात्र से प्रेम (विरह) उत्पन्न हो जाता है, जैसा नल-दमयंती को परस्पर हुआ था। और जिस क्षेत्र में दर्शन प्रेम के बिना असंभव है उसकी बात ही क्या कहनी है[3]। बिना पहले हमारे हृदय में प्रेम उत्पन्न हुए परमात्मा का दर्शन करना

१—जब लग सुति सिमटै नहीं मन निहचल नहिं होइ।
तब लग पिव परसै नहीं बड़ी बिपति यह मोइ॥
—दादू बानी, भाग १, पृ० ३१,१९।

प्रेम करु तुम नेम हिय मैं सुरति डोरी धुनि।
दास बुल्ला बानि बोलहि आनि तिरबेनि॥—बुल्ला, बानी पृ० ८,६।

सुरति सदा स्यावति रहै तिनके मोटे भाग।
दादू पीवै राम रस रहै निरंजन लाग॥
—दादू बानी, भाग १, अंग ५,३० पृ० ६०।

२—कोटि ग्रंथ का अरथ है सुरति ठिकानै राख।
—गरीबदास, 'आदिग्रंथ', अंग ५४, १८, पृ० २३८।

'सरस्वतीभवन स्टडीज', भाग ८ में तारकनाथ सान्याल का लेख 'इंडियन फिलॉसफी'।

३—देवै किरका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुर पीर हमार॥
—दादू बानी, भाग १, पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिये शक्य नहीं। इसी लिये अपने आत्मत्व के उपपादन के लिये स्मरण का विधान है, क्योंकि स्मरण प्रेम ही का दूसरा रूप है।[1] परमात्मा का स्मरण तो सब करते हैं पर काम पड़ने पर। भगवान् की प्रीति तब सिद्ध हो सकती है जब ऐसा स्मरण नित्य हो[2]। स्मरण अगम से आती हुई सृजन की धारा को—जहाँ तक व्यक्ति का संबंध है—उलटे अगम में पलटना है। स्मरण की चरम सीमा अजपा जाप है जिसमें साधक का एक क्षण भी परमात्मा के प्रेम के बिना नहीं बीतता है। उसकी प्रत्येक साँस स्मरण का प्रतिरूप हो जाती है। उसका सारा अस्तित्व परमात्मा की स्मृतिमय, सुरति-मय हो जाता है[3]। जिह्वा से राम-नाम कहने से लेकर अजपा-जाप तक सब स्मरण ही है और सुरति की उलटी धार है। अंत में वह अवस्था आती है जिसमें सुष्ठु रति निःशेष या निरतिशय रति हो जाती है[4]। सुरति इतनी पूर्ण हो जाती है कि वह स्मृति नहीं रह जाती।

१—सुमिरन मन की प्रीति है। —कबीर-वचनावली, पृ० १२,१११।

२—काम परे हरि सुमिरिए, ऐसा सिमरौ नित्त।
अमरापुर वासा करहु, हरि गया बहेमै वित्त॥
—कबीर-ग्रंथावली, पृ० २५०, २३।

३—सूरति रूप सरीर का पिव के परसें होइ।
दादू तन मन एक रस सुमिरण कहिए सोइ॥
—दादू बानी, भाग १ अंग ४, १६३, पृ० ६३।

श्रुति भी 'स्मृति' को ब्रह्मोपलब्धि का साधन मानती है। छांदोग्य कहता है कि स्मृति प्राप्त होने पर सब ग्रंथियाँ छूट जाती हैं—स्मृतिलम्भे सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः—७,२७,२।

अट्ठारह अध्याय गीता श्रीकृष्ण के मुख से सुन लेने पर अर्जुन को जो लाभ हुआ वह स्मृति-लाभ ही है जैसा उसने स्वयं अपने मुँह से कहा है—नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्मयाच्युत। - १८,७३।

४—जैसे 'सुरति' की एक संभव व्युत्पत्ति 'सुष्ठु रति' है, वैसे ही 'निरति' की 'निःशेष या निरतिशय रति' भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के साथ जीवात्मा का संबंध चेतना में स्मृति रूप से नहीं तदात्म-रूप से हो जाता है[१]। यह अवस्था 'निरति' कहलाती है[२]। यही वास्तविक ज्ञान की अवस्था है जो सच्चे साधक की उत्सर्पिणी प्रार्थना है[३]। उसमें माया का सर्वथा त्याग और आत्मतत्त्व का पूर्ण प्रतिष्ठापन हो जाता है।[४] काल के चंगुल से छूटकर जीव स्वयं परमात्मा हो जाता है। और, आध्यात्मिक आनंद में निमग्न होकर नाचने लगता है[५]। यह सुरति की निरति दशा है। 'निरति' शब्द नृत्य का परिवर्तित रूप है और ब्रह्मानंद का द्योतक।

१—तूं तूं करता तूं हुआ। —कबीर-ग्रंथावली, पृ० ५,९।

२—सुरति समांणीं निरति मैं निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया तब खूले स्यंभ दुआर॥ २२॥
सुरति समांणीं निरति मैं, अजपा माहैं जाप।
लेख समांणां अलेख मैं, यूं आपा माहैं आप॥ २३॥
—कबीर-ग्रंथावली, पृ० १४।

३—तू है तैसी सुरति दे, तू है तैसा खेम॥
—दादू बानी, भाग १, पृ० ३४, ४४।

४—ब्रह्म और माया में, आत्म और अनात्म में, अंतर करनेवाली निर्णायक शक्ति विवेक कहलाती है। राधास्वामी साहित्य में इसी लिये निरति का अर्थ निर्णय करनेवाली शक्ति लिया गया है—सारवचन, भाग १, पृ० २३७ (आठवीं आवृत्ति)। परमात्मा का वास्तविक ज्ञान निरति में ही होता है, मानो हमें परमात्मा का पता लग गया, खबर मिल गई। इसी लिये डिंगल साहित्य में 'निरति' का अर्थ पता लगना, समाचार मिलना होता है—

राजा, कउ जण पाठवइ ढोलइ निरति न होइ।
मालवणी मारइ तियउ पूगळ पंथ जि कोइ॥
—ढोला मारू रा दूहा, ६६ दू०।

५—और मार्गों में भी तदात्म-अनुभव में नृत्य भाव माना गया है—
यद्यानंदं समुत्पन्नं नृत्यते मोक्ष-हेतुना। ('द्विकल्प')
—बौद्ध गान ओ दोहा कोष, पृ० ३१, अंतिम पंक्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहजहाँ-कालीन कुछ काशीस्थ हिंदी-कवि

[लेखक—श्री दशरथ शर्मा]

कवींद्राचार्य अपने समय के अच्छे विद्वान् एवं प्रभाव-संपन्न व्यक्ति थे। प्रयाग, काशी आदि तीर्थ स्थानों को शाहजहाँ द्वारा कर-मुक्त करवाकर इन्होंने हिंदू-जनता को अपना ऋणी बनाया था और इसी ऋण को, किसी अंश में चुकाने के लिये, काशीस्थ संस्कृत एवं हिंदी के प्रसिद्ध पंडितों और कवियों ने संस्कृत श्लोकों तथा हिंदी पद्यों में इनका गुणगान किया था। ये संस्कृत श्लोक 'कवीन्द्रचन्द्रोदय' नामक संस्कृत ग्रंथ के रूप में पूना से प्रकाशित हो चुके हैं, किंतु हिंदी पद्य अभी अप्रकाशित हैं। संभवतः हिंदी जनता इनके विषय में विशेष जानती भी नहीं। ये 'कवींद्र-चंद्रिका' नाम की पुस्तक में ग्रथित हैं और इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर की श्री अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में वर्तमान है।

श्री कवींद्राचार्य के गुणगान करनेवाले इन हिंदी-कवियों के नाम निम्नलिखित हैं—

१—श्री सुखदेव कवि
२—श्री नंदलाल कवि
३—श्री भीष कवि
४—श्री पंडितराज कवि
५—श्री रामचंद्र कवि
६—श्री कविराज कवि
७—श्री धर्मेश्वर कवि
८—श्री हरिराम कवि
९—श्री रघुनाथ कवि
१०—श्री विश्वंभरनाथ मैथिल कवि
११—श्री शंकरोपाध्याय कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—श्री भैरव कवि
१३—श्री सीतापति त्रिपाठि-पुत्र मणिकंठ कवि
१४—श्री मंगद कवि
१५—श्री गोपाल त्रिपाठि-पुत्र मणिकंठ कवि
१६—श्री विश्वनाथराम कवि
१७—श्री चिंतामणि कवि
१८—श्री देवराम कवि
१९—श्री कुलमणि कवि
२०—श्री त्वरित कविराज कवि
२१—श्री गोविंद भट्ट कवि
२२—श्री जयराम कवि
२३—श्री वंशीधर कवि
२४—श्री गोपीनाथ कवि
२५—श्री राम कवि
२६—श्री जादवराय पंडित
२७—श्री जगतराय
२८—श्री चंद्रकवि

इनमें पंडितराज संभवतः रसगंगाधरादि के रचयिता पंडितराज श्री जगन्नाथ हैं। इनका पद्य यह है—

आनिही गंग भगीरथ स्वारथ, तैं पर-स्वारथ देह धरी है।
साहि सों जाइ छुड़ाइ दियो करु ही, हरष्यो हरु ताप हरी है॥
पंडितराय त्रिविक्रम को सो पराक्रम, और की हद्द परी है।
ऐसी भई नहिं ह्वैहै न काहू सों, जैसी गुसाईं कवींद्र करी है॥

अन्य कवियों के विषय में गवेषणा करना काशीस्थ विद्वानों का कर्तव्य है। संभवतः इन कवियों के कई वंशज भी काशी में वर्तमान हों। यदि वे अपने पूर्वजों एवं एक महान् कार्य की स्मृति बनाए रखना चाहें तो उनका इतना ही नहीं, अपितु यह भी कर्तव्य है कि 'कवींद्रचंद्रिका को' प्रकाशित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभागा दारा शुकोह

[लेखक—श्री अविनाशकुमार श्रीवास्तव]

सोमवार २० मार्च सन् १६१५ की रात्रि में, मेवाड़ की सफलता के एक मास पश्चात्, भारतवर्ष की ऐतिहासिक नगरी अजमेर में राजकुमार खुर्रम की प्रियतमा मुमताजमहल ने शाहजहाँ के सब से प्रिय, सबसे विद्वान् पर सबसे अभागे दारा शुकोह को जन्म दिया। बाबा का दिया हुआ 'मुहम्मद दारा शुकोह' का नाम, पिता का दिया हुआ 'शाहे बुलंद इकबाल' का खिताब राज-सभासदों की दी हुई 'गुले अव्वलीने गुलिस्ताने शाही' की पदवी और भगवान् की दी हुई अखंड ज्ञान-राशि भी राजकुमार दारा के नाटकमय जीवन के करुणतम भाग को किसी प्रकार अमिट न कर सकी। चौदह भाई-बहनों के मध्य, सम्राट् शाहजहाँ के तृतीय पुत्र तथा महान् मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी दारा को संसार के रंगमंच पर ऐसा अभिनय करना था जिसका उपसंहार दर्शकों तथा श्रोताओं से आँसुओं और आहों की भिक्षा माँगता रहा।

जब दारा की अवस्था दो वर्ष की थी, राजकुमार खुर्रम दक्षिण प्रांतों के सूबेदार नियुक्त हुए। किंतु महारानी नूरजहाँ के राजनैतिक कौतुकों ने सन् १६२३ में उन्हें विद्रोह करने के लिये विवश किया। २४ महीनों तक दक्षिण और पूर्व में भटकते रहने पर भी जब सफलता न मिली तो राजकुमार ने अपने पिता से क्षमा की याचना की। पर इसके साथ उन्हें अपने दो पुत्र, दारा और औरंगजेब, सम्राट् के ही पास भेज देने पड़े। वहीं, उस समय के राजकुमारों की शिक्षा के अनुसार, दारा की भी शिक्षा-दीक्षा हुई। मुल्ला अब्दुल लतीफ सुल्तानपुरी ने इस मुगल शाहजादे को आरंभ में कुरान शरीफ, फारसी के साहित्यिक ग्रंथ तथा तिमूर के इतिहास की सुंदर शिक्षा दी। 'माकूलात' (आन्वीक्षिकी) में भी अब्दुल लतीफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दारा को निपुण कर दिया। लेखन-कला में उस समय के सुप्रसिद्ध शोभनलेखन (खुशनवीस) कलाकार अब्दुर्रशीद दैलेमी ने दारा को ऐसा चतुर बनाया कि उसकी लिपि पटना की ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी में आज भी देखी जा सकती है। पत्र-लेखन-कला में भी अबुलफज्ल का आदर्श रखकर उस बाल्यावस्था में दारा ने अनुपम नैपुण्य प्राप्त किया। पर इन सब के अतिरिक्त, एक बुद्धिमान् बालक तथा एक योग्य छात्र होते हुए भी, कुमार दारा को फिरदौसी और सादी से उतना प्रेम न था जितना रूमी और जामी से। काव्य और दर्शन उसके मुख्य विषय थे। इतिहास में उसे इतनी रुचि न थी। यदि शाहजहाँ सिकंदर महान् की भक्ति कर सकता था तो उसका सुपुत्र दारा अरस्तू और अफलातून की। 'कुरान शरीफ' और 'हदीस' का उसने अध्ययन किया था पर एक सिद्धांती की दृष्टि से जो उसके विषय को प्रमाण-सिद्ध करने का इच्छुक हो। मुहम्मद और इस्लाम में उसे विश्वास था, पर एक सर्वसामान्य हृदयवाले पुरुष की दृष्टि से, जो इसमें सहिष्णुता, सभ्यता और दर्शन-ज्ञान का वास्तविक सम्मिश्रण करके संसार में इसे मानव-उन्नति का साधन बनाना चाहता हो। 'तौहीद' (विश्वदेवतावाद) के सिद्धांतों की खोज के संबंध में यहूदी, ईसाई, ब्राह्मण आदि अनेक जातियों के धर्मग्रंथों के अनुवाद का उसने विवेचनात्मक दृष्टि से पठन किया। संस्कृत को उसने सदैव उच्च स्थान दिया; किंतु इस्लाम के धर्मशास्त्रों की उसने कभी चिंता नहीं की—वह उसमें से कट्टरता, असहनशीलता एवं मानसिक वंध्यता को निकालकर दूर फेंक देना चाहता था। शाहजहाँ ने उसे अपने ही पास रखकर राजनीति में निपुण कर देना चाहा, पर उदारता की सरिता में निमग्न दारा ने केवल अकबर को ही अपना आदर्श रखा और उसकी स्वतंत्र हिंदू-मुस्लिम-विषयक नीति को अपने जीवन का एकमात्र ध्येय। पर क्या अकबर की भाँति उसके कंधों में इतनी शक्ति भी थी कि वह इतने महान् आदर्श को प्रत्येक दिशा से उसी भाँति सँभाल सकता?

विवाह—१६२९ में जब खाँजहाँ लोदी विद्रोह करके दक्षिण भाग गया तो सम्राट् शाहजहाँ ने इस भय से कि कहीं वह बीजापुर के शासक से मिलकर कोई बड़ा उपद्रव न कर दे, उसका पीछा किया। मार्ग में जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खानदेश से होकर शाहजहाँ की सेना जा रही थी तो उनकी मलका मुमताजमहल ने दारा का विवाह स्वर्गीय राजकुमार सुल्तान पर्वेज की पुत्री करीमुन्निसा (नादिरा बानू बेगम) से करने की इच्छा प्रकट की। शाहजहाँ को इसमें विशेष हर्ष हुआ और उसने विवाहोत्सव के विराट् आयोजन की आज्ञा दे दी। किंतु बेचारी मुमताज अपने प्रिय पुत्र के इस सौभाग्य को देखने के लिये जीवित न रह सकी—बुरहानपुर नामक स्थान पर ७ जून १६३१ की रात्रि में अपनी अंतिम पुत्री, गौहर आरा बेगम, को जन्म देने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

उसके अनंतर शुक्रवार पहली फरवरी १६३३ तक किसी प्रकार का भी उत्सव न मनाया गया। हाँ, जहानारा बेगम तथा सिति उन्निसा खानम की देख-भाल में विवाह की तैयारियाँ अवश्य होती रहीं। शाहजहाँ ने इसमें ३२ लाख रुपये व्यय किए जिसमें १६ लाख केवल जहानारा ने स्वयं ही दिए थे। १ फरवरी १६३३ से विवाहोत्सव आरंभ हुआ। दीवाने-खास मुमताज की मृत्यु के पश्चात् एक बार पुनः चमक उठा। असंख्य दीपकों के प्रकाश से आलोकित वह राज-प्रासाद अनेक सुंदरियों की स्वर-लहरी से रह-रहकर गूँज उठता था। वहाँ एक अनुपम 'जश्न' था। शाहजहाँ भी मुमताज की मृत्यु के बाद पहली बार 'मजलिस' में 'शरीक' हुए थे। हेन्ना-बंदी की रस्म सविधि समाप्त होने के पश्चात् दूसरी रात्रि में शाहजहाँ ने दारा के सिर पर वह सेहरा बाँधा जो जहाँगीर ने कभी मुमताज से विवाह होते समय उनके सिर पर बाँधा था। फिर, काजी मुहम्मद इस्लाम ने दो घड़ी और ६ प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर उनका विवाह कराया। जलसे और खुशियाँ आठ दिन तक मनाई जाती रही थीं जब शाहजहाँ अपने अन्य पुत्रों तथा राज-सभासदों सहित उसे बधाई देने पधारे।

दारा का विवाहित जीवन सदैव सुखी रहा, नादिरा बेगम अंत तक अपने प्रिय पति की सच्ची अर्धांगिनी बनी रही। वह सुंदर, सुशील और विदुषी महिला थी—मुमताज से किसी प्रकार भी कम नहीं। पति-भक्ति और अपने कर्त्तव्य को नादिरा ने सदैव उच्च स्थान दिया, और दारा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत तक उसे सच्चे हृदय से प्यार करता रहा। उसके हरम में उस समय की रीति के अनुसार अन्य स्त्रियाँ भी थीं, पर उसने अपना दूसरा विवाह संपादित नहीं किया। मानुची (Manucci) का कथन है कि दारा एक बार रानादिल नाम की एक हिंदू नर्तकी पर आसक्त हो उठा था पर वह बिना विवाह किए इसके हरम में आना न चाहती थी। शाहजहाँ ने पहले इसकी आज्ञा न दी पर जब दारा को इससे बहुत अधिक शोक हुआ तो सम्राट् ने विवाह की आज्ञा दे दी। मानुची पुनः लिखता है कि रानादिल दारा की आजीवन पतिव्रता और सहधर्मिणी स्त्री रही। ज्ञात नहीं यह कथन कहाँ तक सत्य है, किंतु दारा का नादिरा के प्रति प्रेम कभी भी कम नहीं हुआ। एक बार दर्बार के साथ लाहौर से काबुल जाते समय जब नादिरा जहाँगीराबाद के स्थान पर बीमार पड़ी तो दारा स्वयं कई महीनों तक उसकी सेवा करता रहा। उसके आठ पुत्र हुए और सब नादिरा बानू बेगम से ही। नादिरा का चरित्र उच्च था और उसकी प्रतिभा महान्।

राजदर्बार में पद—मुगल साम्राज्य में मंसबदारी की प्रथा बहुत समय से चली आती थी। इसमें राजकुमारों तथा राज्य के धनी-मानी व्यक्तियों को उनके योग्यतानुसार सम्मान दिया जाता था और इस उपलक्ष्य में कुछ निश्चित सेना भी उन्हें राज्य के लिये रखनी पड़ती थी। अपने अपने 'मन्सब' के अनुसार मन्सबदारों को कुछ 'जात' और प्रायः उसके आधे 'सवार' मिलते थे। राजकुमार दारा शाहजहाँ के सबसे प्रिय पुत्र थे और अधिकांश वे उन्हीं के साथ ही रहते भी थे; सम्राट् के कहीं बाहर जाने पर भी दारा सदा उनके साथ जाते थे। शहंशाह के इतने प्रिय होने के कारण जितनी उन्नति दारा की हुई उतनी उस समय किसी की भी नहीं हुई, हालाँ कि दारा विद्या और ज्ञान में अद्वितीय होते हुए भी राजनीति और युद्ध-कौशल में उतने प्रवीण न थे। पहले-पहल ५ अक्टूबर १६३३ को, शाहजहाँ के चांद्र-जन्मदिवस के अवसर पर दारा को १२००० 'जात' और ६००० 'सवार' का मन्सब मिला—और साथ ही हिस्सार (पंजाब में) की सरकार भी। इससे दारा मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त हो गए। फिर आगामी पाँच वर्षों के बीच में २०,००० 'जात' और १०,००० 'सवार' तक के मन्सब की पदवी उन्हें दी गई। इसके पश्चात् १६४८ तक दारा के 'सवारों' में ही उन्नति होती रही और उसी वर्ष उनकी 'जात' में भी १०,००० की वृद्धि हुई। इस समय दारा का मन्सब शुजा और औरंगजेब दोनों के मन्सब से बड़ा था। और, शाहजहाँ अपने स्नेह की उमंग में उसका मन्सब बढ़ाता ही चला जाता था। बीमारी के कुछ ही वर्ष पूर्व, १६५६ में दारा की 'जात' ५०,००० थी और 'राज-सिंहासन के लिये युद्ध' के समय उसका मन्सब बिलकुल निराला और अनुपम था—६०,००० 'जात' और ४०,००० 'सवार'!

१५ जून १६४५ को दारा इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त हुआ, किंतु १६५६-५७ में एक बार के अतिरिक्त वह वहाँ कभी गया नहीं, और बकी बेग उसके प्रतिनिधि के रूप में १२ वर्ष सफलता-पूर्वक वहाँ शासन करता रहा। इलाहाबाद की 'सूबेदारी' मिलने के लगभग दो वर्ष पश्चात्, मार्च १६४७ में दारा को पंजाब प्रांत की सूबेदारी मिली। आरंभ में तो एक वर्ष दारा को लाहौर में ही रहना पड़ा, क्योंकि औरंगजेब इस समय बल्ख में युद्ध कर रहा था और पंजाब से उसे आवश्यक वस्तुएँ भेजने की योजना थी। अधिकांश में यहाँ न रहते हुए भी दारा को इससे विशेष प्रेम था और यह अंत तक उसके पास रहा। इसके बाद १६४९ में दारा को गुजरात प्रांत मिला और १६५२ में उसे वापस लेकर मुल्तान और काबुल दिए गए। पर इन सब स्थानों पर भी दारा के प्रतिनिधि ही कार्य करते रहे। उसने स्वयं कभी कोई विशेष कार्य नहीं किया।

राज्य में इतना उच्च स्थान होते हुए भी दारा को युद्ध-क्षेत्र का तनिक भी अनुभव न था। क्योंकि उसके समस्त प्रांतों में उसके प्रतिनिधि ही शासन करते थे और वह स्वयं देहली अथवा आगरे में अपने पिता के नेत्रों के समक्ष सुख से विद्योपार्जन में व्यस्त था। अपने जीवन में राजसिंहासन के युद्ध के अतिरिक्त उसने केवल तीन बार युद्ध-क्षेत्र में पैर रखा। इसमें दो बार उसे बिना लड़े ही वापस होना पड़ा और तीसरी बार बुरी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल होकर। कंदहार का विषय अकबर के समय से चला आ रहा था—यह कभी मुगलों के हाथ में रहता और कभी इसे फारसवाले छीन लेते। १६३८ में अली मर्दान खाँ के कारण यह शाहजहाँ के अधिकार में आ गया था; और अब वह इसके दो अधीन स्थान बस्त और जमीन दावर को भी जीतना चाहता था। इसके लिये दो बार दारा भेजा गया जिसमें एक बार कुस्तुंतुनिया के सुल्तान मुराद चतुर्थ और फारस के शाह सफी के झगड़े के कारण और दूसरी बार निशापुर पहुँचने से पहले ही फारस के शाह की मृत्यु के कारण युद्ध न हो सका और दारा को बिना लड़े ही वापस आना पड़ा। १६४२ तक यही खेल होता रहा पर सहसा १६४६ में फारस ने कंद-हार को पुनः जीत लिया। इस बार पहले औरंगजेब दो बार लड़ने के लिये भेजा गया पर उसके असफल रहने पर अंत में दारा की पुनः बारी आई। जूलाई १६५२ में दारा ने जाने का निश्चय किया और अगले वर्ष एक बहुत बड़ी सुसज्जित सेना लेकर 'कामरान के बाग' में उसने अपना डेरा डाला। साथ में मिर्जा राजा जयसिंह, इज्जत खाँ, महाबत खाँ, इखलास खाँ, बकी खाँ, चंपत राय बुंदेला आदि सरदार भी थे। पर दारा इस विषय में नितांत अशिक्षित ही था। वह अपने साथ अनेक जादूगरों, मुल्ला-मौलवियों और हाजियों को ले गया जो अपनी 'अपूर्व शक्ति' से उसकी विजय में सहायक हों। छः महीने तक युद्ध होता रहा पर दारा की अयोग्यता और सरदारों में परस्पर वैमनस्य के कारण मुगल सेना कंदहार का कुछ न बिगाड़ सकी। अंत में हताश हो शाहजहाँ ने दारा को लाहौर वापस बुला लिया। इसके पश्चात् सिंहासन के युद्ध के समय तक दारा युद्ध से नितांत अलग रहा और अपना समस्त समय आध्यात्मिक-ज्ञान-वृद्धि तथा राजसभा में अपने प्रभुत्व को परिपक्व करने में ही व्यय करता रहा। अंत में कुछ समय उसने शाहजहाँ के साथ साथ राज्य किया, किंतु उसका महत्त्व केवल इतना ही है कि राजसिंहासन के लिये सगे भाइयों के मध्य लड़ा गया वह विकराल युद्ध शाहजहाँ के जीवन-काल में ही घटित हुआ।

उस समय के मुख्य पीर—दारा ने अपने जीवन में आध्यात्मिक ज्ञान, दर्शन-शास्त्र तथा विद्योपार्जन की अपेक्षा राजनीति को किंचित् मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी स्थान नहीं दिया। वह प्रायः मुस्लिम साधुओं और हिंदू-पंडितों के ही सहवास में रहता था—कहीं उपनिषदों का अनुवाद करता और कहीं मुल्लाओं से दार्शनिक समस्याओं पर वाद-विवाद। उस समय के सूफी मुल्लाओं के सहयोग में दारा का यथेष्ट समय व्यतीत हुआ। मुल्ला शाह मुहम्मद बदख्शीं, अकसं के रहनेवाले काजी मुल्ला अब्द मुहम्मद के पुत्र और लाहौर के प्रसिद्ध सूफी मियाँ मीर के शिष्य थे। इन्होंने दारा को सबसे अधिक प्रभावित किया और कुछ समय बाद वह इनका शिष्य भी हो गया था। 'हसनात-उल-आरिफीन' शीर्षक अपनी पुस्तक में दारा ने मुल्ला शाह के ज्ञान की अच्छी प्रशंसा की है। शाहजहाँ के साथ काश्मीर जाते समय मियाँ मीर से भी लाहौर में दारा का परिचय हुआ था पर वे बेचारे अधिक समय तक जीवित न रह सके और परिचय के कुछ ही समय अनंतर लाहौर में उनकी मृत्यु हो गई। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद के शेख मुहीब्बुल्लाह भी एक योग्य और प्रसिद्ध सूफी थे। इलाहाबाद के सूबेदार नियुक्त होने के पश्चात् ही दारा ने इनको एक पत्र लिखा कि इलाहाबाद की सूबेदारी उन्हें इसी कारण पसंद है कि वहाँ शेख साहब निवास करते हैं। इस पत्र के साथ दारा ने शेख साहब से सूफी मत पर १६ प्रश्न भी किए जिनका उसे बहुत ही संतोषजनक उत्तर प्राप्त हुआ। औरंगजेब के समय में शेर खाँ लोदी की लिखी हुई 'मीरत उल खियाल' नामक पुस्तक में इसका अच्छा वर्णन है।

'फय्याजउल कवानीन' नामक एक पत्रों के संग्रह से पता चलता है कि शेख दिलरुबा नाम के किसी साधु से भी दारा का अच्छा परिचय था और शेख मुहसिन फानी तथा सरमद को भी दारा मानता था। इसमें सरमद को लोग यहूदी बतलाते हैं जिसका अपना नाम ज्ञात नहीं पर मुसलमान होने पर वह मुहम्मद सईद के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इन मुख्य मुसलमान मुल्लाओं के अतिरिक्त दारा अनेक हिंदू पंडितों तथा महात्माओं का भी सम्मान करता था। महात्माओं में बाबा लाल का दारा सबसे अधिक भक्त था। इनका जन्म मालवा में, जहाँगीर के शासन-काल में, एक क्षत्रिय कुल में हुआ था। पहले इन्होंने हठयोग के सिद्धांतों पर अपना साधु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन आरंभ किया पर बाद में वे चेतन स्वामी के शिष्य हो गए। बाबा लाल के विषय में अनेक अलौकिक बातें प्रसिद्ध हैं जो अधिकतर सत्य मानी जाती हैं। चेतन स्वामी की मृत्यु के पश्चात् बाबा लाल सरहिंद के निकट ध्यानपुर नामक स्थान पर रहते थे। इन्होंने प्रायः अपना मत वेदांत तथा सूफी मत पर ही निर्धारित किया था और दारा इनको बहुत मानता था। १६५३ में लाहौर के राय चंद्रभान ब्राह्मण के महल में दारा और बाबा लाल के मध्य एक भावपूर्ण धार्मिक वादविवाद हुआ। इसे राय जादवदास लिखते रहे और फिर, दारा के मीरमुंशी राय चंद्रभान ने 'नादिर उन निकात' अथवा 'मुकालिम-ए-बाबा लाल वा दारा शुकोह' नामक पुस्तक में इसका फारसी अनुवाद किया। यह एक सुंदर पुस्तक है और इसका विषय भी उच्च है।

आध्यात्मिक विचार—इतने मुल्लाओं और महात्माओं के मध्य रहकर यह निश्चय था कि दारा का आध्यात्मिक ज्ञान उच्च शिखर पर पहुँच जाता। उसकी बहन जहानारा ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के 'मुरीदा' मत को मानती थी, किंतु स्वयं दारा सूफी मत के अब्दुल कादिर गिलानी के 'कादिरीया' मत को। इस मत के अनुयायियों में मियाँ मीर और मुल्ला शाह बदख्शीं प्रसिद्ध प्रवर्तक हुए हैं। एक बार, विवाह के एक वर्ष पश्चात्, शाहजहाँ के साथ लाहौर जाते समय अपनी पहली पुत्री का स्वर्गवास हो जाने पर जब दारा बहुत दुखी हुआ तो मियाँ मीर ने ही अपने उपदेशों से उसे सांत्वना दी थी। इसी समय से 'कादिरीया' मत में उसका विश्वास बढ़ा और फिर मुल्ला शाह के शिष्य होने से उसने इसकी अनुपम वृद्धि की।

आरंभ में दारा मुहम्मद में विश्वास करनेवाला एक साधारण मुसलमान था, पर बीच में सूफी मत के आदर्श ग्रंथ तथा वेदांत और योग के अध्ययन से उसने अपने आध्यात्मिक सिद्धांत उन्हीं के आधार पर निर्मित किए। 'रिसालाए हकनुमा' में यदि हम दारा के कथन पर विश्वास करें तो पैगंबर मुहम्मद हारा की गुफा में 'प्राणायाम' करते थे अथवा हिंदू योगियों की भाँति 'चक्र'—'ज्योति' देखते थे और अनाहत ध्वनि सुनते थे। दारा ही इन विचारों का प्रवर्तक न था, पर उसके पूर्व सूफी मत के अन्य अनुयायी भी इस्लाम में इनका प्रवेश करा चुके थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारा संसार में संन्यास और शारीरिक कष्ट के विरुद्ध था। उसके अनुसार यह सब व्यर्थ और निरर्थक था। 'तौहीद' ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहा और वह इसी के सिद्धांतों का आजीवन पालन करता रहा। 'तौहीद' (अद्वैतवाद) जगत् का आध्यात्मिक ज्ञानपुरस्सर चेतन-विषयक पूर्ण ज्ञान है। सूफी मत के अनुसार इस 'एकता' (इत्तिहाद) की तीन स्थितियाँ होती हैं। पहली स्थिति में आत्मा की पृथक् सत्ता का नाश हो जाता है और वास्तविक पृथक्त्व के बिना ऐक्य होता है, यद्यपि पृथक्त्व की उपस्थिति उसी प्रकार मानी जाती है। इसमें मनुष्य अनुभव करता है कि 'सब कुछ वह (ईश्वर) है—मैं कुछ भी नहीं'। इसके पश्चात् दूसरी स्थिति है 'सकरुल जाम' अर्थात् 'ऐक्य के मद' की। इसमें 'मैं' और 'वह' की पृथक्ता बिलकुल नष्ट हो जाती है और 'आत्मा' तथा 'ब्रह्म' एक दिखाई देते हैं—मनुष्य अनुभव करता है कि "मैं मैं हूँ।" इस स्थिति में "मैं मैं हूँ" का अनुभव करते हुए मनुष्य ईश्वर की उपासना करने में स्वयं अपनी ही उपासना करता है—इसे सूफी मतानुयायी 'खुदपरस्ती' कहते हैं। दारा का इसमें दृढ़ विश्वास था और वह स्वयं भी एक सच्चा 'खुदपरस्त' था। शाह दिलरुबा को एक बार पत्र में उसने लिखा—"मैं यज्ञोपवीत का पहिननेवाला, एक मूर्त्ति-उपासक हो गया हूँ!—नहीं, मैं स्वयं अपनी ही उपासना करनेवाला (खुदपरस्त) हो गया हूँ और अग्नि-उपासकों के मंदिर का एक पुजारी।" इसके बाद 'इत्तिहाद' की तीसरी स्थिति होती है—पर कुछ लोगों का विचार है कि 'शरियत' में विश्वास न करने के कारण दारा उस स्थिति तक भली भाँति न पहुँच सका। पर आगे चलकर उसके ईश्वरीय ज्ञान की कुंजी 'बहुतायत में एकता' ('वहीदिय्या') का अनुभव करना अवश्य हो गया था। इसमें अनुभव होता है कि "मैं वह (ब्रह्म) हूँ" और समस्त जगत् ब्रह्म का ही रूप दिखाई पड़ता है। दारा इस 'वहीदिय्या' के सिद्धांतों पर विश्वास करता था, इसमें संशय नहीं। और उसको ये विचार उपनिषद् से ही प्राप्त हुए थे, यह भी सत्य है। हमारे उपनिषद के वेदांत-दर्शन का 'सोऽहम्' और 'वहीदिय्या' बिलकुल एक ही सिद्धांत और विश्वास पर स्थित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-वृद्धि—दारा के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचार नवीन न थे। आर्य ऋषि संस्कृत ग्रंथों में उनका पहले ही विवेचन कर चुके थे। इसलिये जब संस्कृत पुस्तकों में अपना विषय उपलब्ध था तो दारा का संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन और उनका सम्मान करना भी स्वाभाविक था। 'तौहीद' के सिद्धांतों के अध्ययन के संबंध में दारा ने मुख्य संस्कृत ग्रंथों का मनन करने के उपरांत उन विचारों को प्रत्येक मुसलमान तक पहुँचाने की दृष्टि से अनेक अनुवाद किए। हालाँ कि इसके पूर्व ११वीं शताब्दि में अलबिरूनी और १६वीं में अबुलफज्ल ने हिंदू दर्शन के बृहत् तथा गंभीर विषय को फारसी में अनूदित किया था, और अकबर ने भी महाभारत, रामायण तथा अथर्ववेद का फारसी अनुवाद कराया था, पर दारा का इस दिशा में किया हुआ कार्य इन सबसे श्रेष्ठ था। उसकी योजना महान् थी और उसका आदर्श विराट् था।

संस्कृताध्ययन के अतिरिक्त दारा ने सूफी मत के प्रधान ग्रंथों का भी सुंदर अध्ययन किया और उसके पश्चात् उसने अपने धार्मिक विचारों पर कई पुस्तकें भी लिखीं। उसकी पुस्तकें शाहजहाँ के समय की साहित्योन्नति की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु हैं। बिना दारा द्वारा निर्मित साहित्य के शाहजहाँ के समय में केवल दो-एक इमारतों के अतिरिक्त कुछ भी न होता।

दारा ने फारसी में निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं :—

१—**सफीनत-उल-औलिया** :—यह पुस्तक १६३९ में लिखी गई थी और इसमें मुस्लिम साधुओं की जीवनियों का एक अनुपम व भावपूर्ण संग्रह है। [इसके २१८ पृष्ठों में ४११ साधु-संतों का वर्णन है। यह पुस्तक सन् १८८४ में लखनऊ में नवलकिशोर प्रेस में छपी थी।—सं०।]

२—**सकीनत-उल-औलिया** :—यह पुस्तक १६४२ में लिखी गई थी और इसमें मियाँ मीर तथा कादिरीया मत के अन्य मुल्लाओं का संक्षिप्त जीवन-चरित्र और उनके विचार हैं।

३—**रिसालाए-हकनुमा** :—लोग कहते हैं कि दारा ने इस पुस्तक को किसी दिव्य शक्ति से प्रेरित हो अगस्त १६४५ और जनवरी १६४७ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य लिखा था। इसमें सूफी मत के प्रधान सिद्धांतों और नियमों का सुंदर विवेचन है। [नवलकिशोर प्रेस से सन् १९१० में प्रकाशित। पाणिनि आफिस प्रयाग से इसका अँग्रेजी अनुवाद छप चुका है।—सं०।]

४—मजमआ-उल-बहरैन्:—यह पुस्तक १६५० और १६५६ के बीच कभी लिखी गई थी। इसमें इस्लाम तथा हिंदू धर्म का बहुत ही सुंदर तुलनात्मक विवेचन है। दारा इस पुस्तक में ऐसे ईश्वर को देखता है जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों ही मिलते हैं। वास्तव में इस दिशा की ओर दारा का यह पहला गंभीर और मौलिक प्रयास था। [यह पुस्तक जिसका शब्दार्थ है 'दो सिंधुओं का सम्मिलन' दारा की उत्कृष्ट समन्वय-प्रधान कृति है। इसका एक अत्युत्तम संस्करण फारसी मूल और अँगरेजी अनुवाद, टिप्पणी तथा विस्तृत भूमिका के साथ जिसमें दारा के जीवनचरित और साहित्यिक कार्य का अच्छा विवेचन है, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ते से १९२९ में प्रकाशित हुआ है। —सं०]

५—**सिर्र-ए-अकबर अथवा सिर्र-उल-असरार**—यह ५२ उपनिषदों का संस्कृत से फारसी में सुंदर और भावपूर्ण अनुवाद है। २८ जून १६५७ को यह तैयार हुआ था और इसमें बनारस के अनेक योग्य तथा विद्वान् पंडितों की भी सहायता ली गई थी। यह दारा की सबसे श्रेष्ठ और मूल्यवान् पुस्तक है[१]।

१—दारा के फारसी अनुवाद के द्वारा ही उपनिषदों का परिचय पहले पहल पश्चिमी जगत् को मिला। जंद अवस्ता का पश्चिमी संसार को परिचय देनेवाले फ्रांसीसी विद्वान् आँकती दुपरों ने फारसी उपनिषदों के आधार से उपनिषदों का अनुवाद पहले फ्रांसीसी भाषा में, जो अप्रकाशित रहा, और फिर लैटिन भाषा में किया। दारा की मूल पुस्तक का एक संस्करण जयपुर से तीन भागों में छपा था जो अब अप्राप्य है। इसके भी एक प्रामाणिक और सुसंपादित संस्करण के प्रकाशित होने की आवश्यकता है। इस ग्रंथ की एक मूल फारसी में हस्तलिखित प्रति आर्य समाज लखनऊ के पुस्तकालय में है। विशेष देखिए पत्रिका के वर्ष ४७, अंक २ में श्री शालिग्राम श्रीवास्तव का 'दारा शिकोह के फारसी उपनिषद्' शीर्षक लेख।—सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पाँच पुस्तकों के अतिरिक्त दारा ने और कोई बड़ी पुस्तक नहीं लिखी—दो-एक छोटी पुस्तकों का निर्माण अवश्य किया। इनमें एक तो हसनात-उल-आरिफीन है जो १६५२ में लिखी गई थी और जिसमें दारा ने मुसलमान सूफियों की सूक्तियों का संग्रह किया है। [इस पुस्तक का उर्दू अनुवाद लीथो में लाहौर से छप चुका है।—सं०] दूसरी तरीकात उल हकीकत है जिसमें उन्होंने विश्व-देवतावाद की सुंदर व्याख्या की है।

इसके अतिरिक्त आरंभ में दारा ने भगवद्गीता का अनुवाद किया था [जिसकी एक प्रति इंडिया आफिस लाइब्रेरी में है।—सं०] और संन्यासी कृष्ण मिश्र के लिखे हुए एक दार्शनिक नाटक, 'प्रबोधचंद्रोदय' का फारसी अनुवाद अपने निरीक्षण में कराया था। 'प्रबोधचंद्रोदय' को दारा के मुंशी बनवालीदास ने दारा के प्रसिद्ध ज्योतिषी भवानीदास की सहायता से—हिंदी में स्वामी नंददास के किए हुए अनुवाद से—फारसी में अनूदित किया था। इसका फारसी नाम 'गुजारे हल' है और यह संसार के माया-मोह से आत्मा की मुक्ति के विषय में एक सुंदर रूपक है। १६५६ में दारा ने योगवाशिष्ठ रामायण का फारसी अनुवाद भी 'तर्जुमाए जोगवाशिष्ठ' के नाम से कराया। संभवतः पंडितों की सहायता से शेख सूफी ने इसे अनूदित किया था पर यह निश्चय है कि इस पुस्तक का वक्तव्य दारा ने स्वयं लिखा था, जिसमें वह बताता है कि 'तर्जुमाए जोगवशिष्ठ' को पढ़ने के बाद उसने एक स्वप्न में श्रीरामचंद्र और महर्षि वशिष्ठ को देखा। वशिष्ठ ने बड़े स्नेह से दारा की पीठ पर हाथ रखकर श्रीराम से कहा—"यह ज्ञान का एक सच्चा ढूँढ़नेवाला है और सत्य की खोज में तुम्हारा ही भाई है! तुम इसका आलिंगन करो।" इसके उपरांत राम ने दारा का आलिंगन किया और वशिष्ठ द्वारा दिया हुआ कुछ मिष्टान्न भी उसे खाने को दिया। इस स्वप्न के पश्चात्, दारा लिखता है कि योगवाशिष्ठ के अनुवाद के लिये उसकी इच्छा और भी बलवती हो उठी और उसने हिंदुस्तान के पंडितों की सहायता से इसे शीघ्र ही पूरा कराया।

राजसिंहासन के लिये युद्ध—कंदहार के घेरे से राजसिंहासन के युद्ध तक दारा के जीवन का सबसे अधिक सुखमय और चमत्कारपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय था। इस काल में दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा साहित्यिक सफलता के साथ साथ राजनीति में भी दारा का बहुत अधिक हाथ रहा। शाहजहाँ के साथ साथ वह राजकार्य करता था और स्वयं शाहजहाँ भी बिना उसकी सम्मति के कार्य न करता था। उसका इस समय इतना अधिकार था कि शाहजहाँ द्वारा दी गई मृत्युदंड की आज्ञा भी उसने कई बार क्षमा करा दी। न जाने कितने राजसभासद दारा के कारण इस समय भाग्य के प्रिय बने हुए अपने विधि की सराहना कर रहे थे। और, उसके भी व्यवहार में हिंदू और मुस्लिम का भेद-भाव लेशमात्र भी न था। अनेक राजपूतों को उसने शरण दी और कई बार हिंदू राजाओं तथा अधिकारियों को उसने सम्राट् की क्रोधाग्नि से बचाया। पर अंत में दारा के इसी 'अधिकार' ने भड़ककर सहसा साम्राज्य में एक सनसनी मचा दी।

ऐसे तो साम्राज्य के लिये युद्ध के अनेक कारण थे और प्रायः लोग कहते हैं कि इसका मुख्य कारण दारा के प्रति शाहजहाँ का पक्षपात था। किंतु इस युद्ध के केवल दो प्रधान कारण थे। एक तो दारा के प्रति औरंगजेब की शत्रुता जो कई कारणों[1] से पहले ही आरंभ हो चुकी थी और दूसरे संसार की साधारण कूट-नीति, राजनीति और युद्ध-कौशल में दारा की अनभिज्ञता तथा औरंगजेब की पटुता। और फिर इन दो कारणों के अतिरिक्त, ६ सितंबर १६५७ को शाहजहाँ का अकस्मात् बीमार पड़ना और इसके बाद उसकी मृत्यु का असत्य समाचार फैलना इस अनर्थमय युद्ध का सबसे प्रबल दैविक कारण था। एक सप्ताह तक सम्राट् को दारा तथा कुछ अत्यंत विश्वस्त सभासदों के अतिरिक्त कोई देख भी न सका। इधर औरंगजेब की 'ख्वाहिशें' रुकनेवाली न थीं। अवसर अच्छा देखकर अपने दो मूर्ख भाइयों को उसने अपने साथ मिला लिया। इनमें दारा का तो वह स्पष्ट शत्रु था पर शुजा को केवल मुराद के समक्ष ही बुरा कहता था और स्वयं शराबी मुराद को वह मन ही मन मूर्ख बना रहा था।

१—देखिए कानूनगो की 'दारा शुकोह'—पृष्ठ २०५-२११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिसंबर १६५७ में शाहजहाँ की बीमारी का समाचार मृत्यु का रूप धारण कर शुजा (बंगाल के सूबेदार) के पास भी पहुँचा। वह तो औरंगजेब की शिक्षा से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा ही कर रहा था। इस नितांत मिथ्या और कल्पित समाचार के आधार पर ही उसने राजमहल नामक स्थान पर अपना राज्याभिषेक कर बिहार में अपनी फौज के प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। इस विद्रोह के झंडे से दारा को बहुत चिंता हुई और उसने शाहजहाँ को किसी प्रकार सहमत कर अपने पुत्र सुलेमान शुकोह तथा मिर्जा राजा जयसिंह की अध्यक्षता में शुजा के विरुद्ध एक सेना भेजी। पर इसी समय उधर औरंगजेब और मुराद की संयुक्त सेनाएँ उत्तर की ओर बढ़ने लगीं। इससे दारा और भी कठिनाई में पड़ गया। एक ओर शुजा से युद्ध हो ही रहा था इधर औरंगजेब ने भी सिर उठाना आरंभ किया, और शाहजहाँ एक तो बीमार, दूसरे संतान-स्नेह-वश वह युद्ध की आज्ञा ही न दे रहा था। उसका विश्वास था कि वह डाँट-फटकार से, स्नेह और वात्सल्य से अपने नासमझ बेटों को ठीक कर लेगा। खैर, शुजा से तो किसी न किसी भाँति ७ मई १६५८ को संधि हो गई पर औरंगजेब और मुराद को नर्मदा पर ही रोकने के लिये दिसंबर १६५७ के अंतिम सप्ताह में दारा को महाराजा जसवंतसिंह तथा कासिम खाँ को भेजना पड़ा। पर ये दोनों वीर भी औरंगजेब ऐसे चतुर सेनानायक का कुछ न बिगाड़ सके और उज्जैन से १४ मील दूर धरमत नामक स्थान पर १५ अप्रैल १६५८ को बुरी तरह हार कर इन्हें भागना पड़ा। २५ अप्रैल को यह अनिष्टकर समाचार दारा के पास पहुँचा। वह इस समय बलोचपुरा होता हुआ सम्राट् के साथ आगरे से दिल्ली जा रहा था पर इसे सुनते ही उसने तुरंत आगरे वापस आकर कटिबद्ध हो युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दीं। शाहजहाँ अब भी इसी विचार में था कि वह अपने राजनैतिक आदेश से औरंगजेब को ठीक राह पर ले आएगा पर यह उसका भ्रम था और जब औरंगजेब धौलपुर तक बढ़ता ही चला आया तो उसे राज्य की समस्त शक्ति दारा के हाथों सौंप कर उसी की विजय की प्रार्थना करनी पड़ी। पर दारा की स्वयं अपनी फौज अभी सुलेमान के साथ बिहार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही थी और वह उसके वापस आने तक (जिसकी उसने शीघ्रातिशीघ्र आज्ञा दी थी) औरंगजेब को चंबल पर ही रोकना चाहता था। इस विचार से दारा स्वयं एक बड़ी सेना ले धौलपुर में उपस्थित हुआ; किंतु चतुर औरंगजेब वहाँ युद्ध न कर धौलपुर से ४० मील पूर्व में जाकर दारा की सेना के पीछे से, आगे बढ़ गया। इससे दारा को पुनः आगरे की ओर भागना पड़ा। और वहाँ से ८ मील दूर सामूगढ़ नामक स्थान पर औरंगजेब का सामना करने के लिये उसने अपना डेरा डाला। दारा के पास इस समय ६०,००० फौज थी और औरंगजेब तथा मुराद की कुल ५०,०००, पर दारा की सेना अधिक चतुर न थी और उसे अपने सेनानायकों पर अधिक विश्वास न था। २९ मई १६५८ को युद्ध आरंभ हुआ। दारा की तरफ राव सतरसाल हाडा, बरकंदाज खाँ (जाफर), कुँवर रामसिंह कछवाह आदि योद्धा थे।...पर उसका भाग्य-चक्र उसके सर्वथा विपक्ष था। युद्ध में वह किसी प्रकार भी जीत न सका, रुस्तम खाँ और सतरसाल मारे गए और स्वयं दारा को प्राण-रक्षा के लिये भागना पड़ा।

समोगर की लड़ाई—जिसे कुछ लोग कहते हैं कि आगरे से २० मील दूर सामूगढ़ में लड़ी गई—'अकबर-काल' की समाप्ति का एक निश्चित कदम था। इसने दारा की जीवन-नौका को भी अंत तक भटकने के लिये डाल दिया। फिर संसार में उसका कोई सहायक न रहा और वह ऐसे मार्मिक अंत को प्राप्त हुई जिसकी किसी ने कल्पना भी न की थी।

समोगर से भागने के बाद दारा किसी भाँति आगरे पहुँचा और वहाँ से कुछ धन तथा अपनी स्त्री और पुत्रों को लेकर दिल्ली चल दिया। हालाँकि दारा के पास इस समय लगभग ५,००० आदमी और राज्य का समस्त अधिकार था पर विधि को कुछ और ही स्वीकार था। सुलेमान शुकोह अभी तक वापस न आ पाया था और दारा दिल्ली में सेना का संगठन कर ही रहा था कि उधर औरंगजेब की केवल पाँच ही दिन की नाकेबंदी में ८ जून १६५८ को आगरे का पतन हो गया। इससे चार ही दिन बाद दारा को पुनः भागना पड़ा और १०,००० सेना, यथेष्ट धन तथा अपने स्त्री और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रों को लेकर वह लाहौर की ओर चल पड़ा। वहाँ इसके प्रतिनिधि के रूप में इज्जत खाँ शासन कर रहा था। समस्त अधिकार अपने हाथों में लेकर दारा ने फिर एक बार एक विशाल सेना इकट्ठी करने का आयोजन किया और सुलेमान शुकोह को हिमालय की तराई से होकर लाहौर आने की आज्ञा भी दे दी। पर यह उसकी भूल थी—अन्यथा इस असंभव कार्य के अतिरिक्त सुलेमान पूर्व में ही शुजा से मिलकर औरंगजेब का विरोध कर सकता था। बेचारा सुलेमान लाहौर पहुँचने में असफल रहा और हिमालय की तराई तथा काश्मीर में काफी समय तक भटकते रहने के बाद २ जनवरी १६६१ को कैद कर सलीमगढ़ के किले में भेज दिया गया और फिर लगभग एक वर्ष पश्चात् औरंगजेब ने उसे मरवा डाला। इधर सतलज पर ही औरंगजेब को रोकने के लिये दारा ने तलवान नामक स्थान पर दाऊद खाँ को भेजा। किंतु इस समय पुनः औरंगजेब ने वही चाल चली—दाऊद खाँ से युद्ध न कर उसकी सेना ने ५ अगस्त को रूपर नामक स्थान से सतलज को पार कर लिया। दारा की फौज को अब तलवान भी खाली करना पड़ा। सुल्तानपुर नामक स्थान पर उसकी पराजय हुई। इस घटना ने दारा की समस्त योजना व्यर्थ कर दी, क्योंकि वह स्वयं अपने को लाहौर में सुरक्षित रख कर, पूर्व में शुजा, राजपूताने में जसवंतसिंह तथा दक्षिण में गोलकुंडा आदि की सहायता से औरंगजेब को परास्त करना चाहता था। सुल्तानपुर की पराजय के बाद दारा की फौज गोविंदवाल की ओर भागी। यह सुनकर १४ अगस्त को रूपर में औरंगजेब स्वयं उपस्थित हुआ और १८ को गढ़शंकर नामक स्थान पर मिर्जा राजा जयसिंह तथा समोगर के युद्ध में दारा को धोखा देनेवाले खलीलुल्लाह खाँ को भेजने का प्रबंध किया। गढ़शंकर रूपर से ३२ मील पश्चिम में था और रूपर तथा गढ़शंकर दोनों स्थानों पर औरंगजेब की सेना होने से लाहौर में दारा सुरक्षित न रहा। इसलिये ५ सितंबर को एक बार फिर १४,००० आदमियों के साथ वह भक्खर (सिंध) की ओर चल दिया। दारा के लिये अब सिवा भागने के और कोई उपाय न था। अभी तक तो कुछ आदमी उसका साथ भी दे रहे थे पर भक्खर पहुँचने तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हताश और थके हुए दारा के सिपाही घटते गए। भक्खर के किले तक पहुँचने पर उसके पास केवल उसकी आधी ही सेना थी। वहाँ अभी वह अच्छी तरह पहुँच भी न पाया था कि २५ सितंबर को उसका पीछा करता हुआ औरंगजेब भी मुल्तान आ पहुँचा। दारा अपने बचे हुए आदमियों को वसंत तथा अब्दुर्रज्जाक की अध्यक्षता में भक्खर के किले में छोड़कर सिंध के नीचे सक्कर के ५० मील दक्षिण तक बढ़ता चला गया। यहाँ से फारस जाने का मार्ग था और दारा ने फारस के शाह अब्बास द्वितीय से अपने आने की चर्चा भी की। पर नादिरा बानू की अनिच्छा तथा शाह के अनिश्चित उत्तर से उसने अपना विचार बदल दिया। भाग्यवश इसी समय पूर्व में शुजा ने औरंगजेब के विद्रोह का झंडा खड़ा किया जिससे उसे अपने सेनाधिपति सफशी खाँ तथा शेख मीर के साथ मुल्तान छोड़कर उत्तर की ओर रवाना होना पड़ा। इससे और भी दारा ने फारस जाने का विचार त्याग दिया और थत्तां होता हुआ कच की खाड़ी की ओर चल पड़ा। वहाँ के राव ने दारा की सहायता का वचन दिया और अपनी पुत्री का विवाह भी सिपिर शुकोह (दारा के दूसरे पुत्र) के साथ कर दिया। यहाँ से दारा को दुर्भाग्य और निराशा के काले बादलों में भी आशा की धुँधली रेखा दृष्टिगोचर हुई। कच की खाड़ी के बाद नवानगर के जाम से सम्मानित किए जाने पर दारा गुजरात पहुँचा जहाँ का गवर्नर शाह नवाज खाँ औरंगजेब के पहले ही से विरुद्ध था। उसने दारा को बादशाह माना और गुजरात का समस्त प्रांत उसके अधिकार में दे दिया। दारा ने अब अहमदाबाद नामक स्थान पर अपना दरबार किया और नित्य प्रातः ही 'झरोखाए दर्शन' देने लगा। पर उसने शाहजहाँ के जीवित रहते हुए अपना राज्याभिषेक न किया।

शाहनवाज की सहायता से दारा ने २१,००० फौज इकट्ठा कर ली और औरंगजेब के प्रतिनिधि, सादिक मुहम्मद खाँ से सूरत का नगर भी छीन लिया। इस समय यदि दारा दक्षिण की रियासतों को मिलाकर औरंगजेब का सामना करता तो औरंगजेब अवश्य ही एक बहुत बड़ी कठिनाई में पड़ जाता। गोलकुंडा और बीजापुर दोनों आरंभ से अंत तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरंगजेब के शत्रु रहे और दारा ने अनेक बार उनकी सहायता की थी, सम्राट् से प्रार्थना कर उनके हित की चिंता की थी। अतः वे भी दारा के बड़े कृतज्ञ थे और उसका यह प्रयास सफल होता इसमें अधिक संशय नहीं था। पर होना कुछ और ही था। इसी समय यह असत्य समाचार फैला कि खजुआ के युद्ध में शुजा ने औरंगजेब को परास्त कर दिया है। हालाँ कि तथ्य इसमें केवल इतना ही था कि औरंगजेब की निर्दय कूटनीति तथा उसका अत्याचार देखकर उसके पुत्र मुहम्मद सुल्तान और महाराजा जसवंतसिंह उसके विरुद्ध हो गए थे—इसमें सुल्तान तो शुजा से मिल गया और जसवंतसिंह औरंगजेब के खेमों को लूटता हुआ जोधपुर लौट आया। पर औरों की भाँति दारा ने भी औरंगजेब की पराजय पर विश्वास कर लिया। अब उसने दक्षिण का विचार छोड़ दिया और अहमदाबाद को सैयद अहमद बुखारी के अधिकार में देकर १४ फरवरी १६५६ को जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। पहले तो जसवंतसिंह का दारा का पक्ष लेने का विचार था पर चतुर औरंगजेब ने मिर्जा राजा द्वारा ऐसी चाल चली कि जसवंतसिंह, एक राजपुत्र होते हुए भी, दारा और शाहजहाँ के असंख्य उपकारों को भूलकर उसका शत्रु हो गया। अजमेर का महाराणा राजसिंह—जिसको तीन वर्ष पूर्व दारा ने शाहजहाँ की क्रोधाग्नि से बचाया था—अपने को क्षत्रिय कहनेवाला राजपूत-शिरोमणि भी दारा की सहायता करने पर संहमत न हुआ। दारा ने आज तक हिंदू-जाति के लिये जो कुछ किया था, वह सब व्यर्थ हो गया। न जाने कितनी निंदा तथा लांछन सहने पर भी उसने इन वीर आर्यपुत्रों का भला करने से मुख न मोड़ा था पर आज उनमें से कोई भी ऐसा साहसी और स्वामिभक्त न निकला जो इस महान् पुरुष की कठिनाई में तनिक भी सहायता कर सकता। महाराजा जसवंतसिंह के पास—शाहजहाँ के साथ मयूरसिंहासन पर बैठनेवाले, भारतवर्ष के भावी सम्राट् और हिंदुओं के सदैव के शुभचिंतक दारा ने—कई बार प्रार्थनाएँ भेजीं, विनती की पर वह राजा कुछ चाँदी के टुकड़ों और औरंगजेब की मीठी नजर की लालच में, किसी प्रकार भी दारा, अपने स्वामी और रक्षक के दुर्भाग्य में खड़ा होने को सहमत न हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि का विधान ! जो कभी दारा के समक्ष घुटने टेका करते थे, उनके पास आज दारा 'मिन्नतें' भेज रहा था, महाराणा राजसिंह के पास तो दारा ने अपनी प्रार्थना के साथ अपने पुत्र सिपिर तक को भेजा था। पर सब व्यर्थ रहा। इसके पूर्व शुजा से लड़ते समय मुँगेर में मिर्जा राजा जयसिंह ने भी दारा को धोखा दिया था। दिल्ली से लाहौर भाग आने पर जम्मू के राजा राजरूप ने दारा के लिये फौज इकट्ठा करने को धन की प्रार्थना की और कई लाख रुपए मिलने तथा नादिरा बानू के अपना दूध[1] देने पर भी वह औरंगजेब से जा मिला था। दादर किले के स्वयं मलिक जीवन ने, जिसे शाहजहाँ के किसी कारण-वश मृत्युदंड देने पर दारा ने क्षमा करा दिया था, दारा को कैद कर औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया।

राजपूताने में हताश होने पर भी दारा को औरंगजेब से लड़ना पड़ा क्योंकि शत्रु देवराय नामक स्थान तक आ चुका था और दारा का भागना अब असंभव था। शाहनवाज, फिरूज मेवाती, मुहम्मद शरीफ, किलिच खाँ तथा सिपिर शुकोह के साथ देवराय में १२ से १४ मार्च १६५९ तक दारा ने औरंगजेब के विरुद्ध अंतिम घमासान युद्ध किया। पर सदा की भाँति अंत वही हुआ जो उसके दुर्भाग्य में लिखा था—वह औरंगजेब का कुछ भी न बिगाड़ सका और स्वयं उसे १४ मार्च को ८ बजे रात्रि में गुजरात की ओर भागना पड़ा। अब उसका अंत निकट आ गया था। मिर्जा राजा, जसवंत तथा बहादुर खाँ औरंगजेब के आज्ञानुसार दारा को मृतक अथवा जीवित गिरफ्तार करने के लिये उसका पीछा कर रहे थे। और यहाँ गुजरात, काठियावाड़, कच की खाड़ी आदि समस्त स्थानों पर जयसिंह ने 'भय और आशा' के पत्र भेज भेजकर दारा का सारा तख्ता ही उलट दिया था। अहमदाबाद में सैय्यद अहमद बुखारी गिरफ्तार हो चुका था और कच के राव आदि ने भयवश शरण देना अस्वीकार कर दिया। वे बेचारी छोटी रियासतें औरंगजेब ऐसी विशाल शक्ति का कर ही क्या

१—यह उस समय का साधारण विश्वास था कि किसी पुरुष के एक स्त्री के दूध पीने से वह उसके पुत्र के समान हो जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती थीं ! फ्रेंच डाक्टर बर्नियर, जो इस समय भाग्यवश दारा की प्रार्थना पर चिकित्सक के रूप में, उसके साथ था बड़े ही मार्मिक शब्दों में दारा के दुर्भाग्य का वर्णन करता है। बेचारा मुगल खानदान का शाही राजकुमार राजपूताना, अहमदाबाद, काठियावाड़, कच, कड़ी आदि के रेगिस्तान, जंगल और दलदलों को पार करता हुआ अपनी और अपनी स्त्री तथा बच्चों की रक्षा के लिये भागा जा रहा था। धूप, पानी और आँधी का विचार न करती हुई दारा के हरम की स्त्रियाँ टूटी गाड़ियों के पहियों में पर्दा बाँध बाँधकर रात्रि व्यतीत करती थीं। भाग्य का ठुकराया दारा किसी भाँति भक्खर पहुँचा, पर वहाँ के किले को खलीलुल्लाह खाँ मुल्तान से आकर घेरे पड़ा था। बेचारे हताश दारा को एक बार फिर जंगलों से होकर केवल पाँच सौ सिपाहियों के साथ सिंध के उस पार भागना पड़ा। वहाँ बलोचियों का अधिकार था जिनमें से चँदी आदि दो-एक जातियों ने दारा को लूट भी लिया[1]। इसके बाद वह फारस जाना चाहता था पर नादिरा बानू की बीमारी और हरम की अन्य स्त्रियों की अनिच्छा के कारण उसे फिर रुकना पड़ा। इस बार उसने यहाँ से अपनी अंतिम यात्रा की। दर्रा बोलन से ९ मील दूर दादर के किले का अध्यक्ष मलिक जीवन था जिसे दारा ने प्राण-दंड से मुक्त कराया था। इस विश्वास में कि वह पठान कभी दारा के प्रति कृतघ्नता न करेगा, उसने दादर की ओर प्रस्थान किया। पर दादर की सीमा से एक ही कोस पर अभी दारा पहुँच पाया कि ६ जून १६५९ को नादिरा बानू की मृत्यु हो गई। इससे दारा को इतना असीम दुःख हुआ कि अब से उसने अपने को बचाने का कोई उपाय तक न किया, मानो उसका सारा साहस, सारा उत्साह, अपनी नादिरा के साथ ही बिदा हो गया हो! वह उसके जीवन में जितनी व्याप्त थी उतनी शायद मधु में मधुता भी न होगी। मरते समय नादिरा ने अपनी लाश को हिंदुस्तान में दफन करने की इच्छा प्रकट की और इसी समय दारा का स्वागत करने को मलिक

१—यहाँ मघासी नाम की जाति ने दारा की सहायता कर उसे कंदहार तक भेजने का बचन भी दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन भी यहाँ उपस्थित हुआ। उसके किले में पहुँचने पर दारा ने गुल-मुहम्मद तथा अपने बचे हुए अंतिम साहसी ७० सिपाहियों की रक्षा में नादिरा के शव को लाहौर, मियाँ मीर की समाधि के पास 'दफनाने' को भेज दिया। बेचारा स्वयं अपनी नादिरा का अंतिम संस्कार देख भी न सका—करना तो दूर रहा। ख्वाजा मकबूल भी, जिसने नादिरा की आजीवन सेवा की थी, उसकी लाश के साथ गया।

मलिक जीवन के यहाँ दो दिन रहने के बाद ९ जून १६५९ को प्रातः-काल दारा ने कंदहार जाना चाहा—क्योंकि अब नादिरा की अनिच्छा का प्रश्न ही न था। चलते समय उसने अपने बचे हुए आदमियों से कहा कि यदि वे चाहें हिंदुस्तान वापिस जा सकते हैं और यदि उनकी इच्छा हो तो उसके साथ निर्वासित हो फारस चल सकते हैं। इस पर सभी लोग चले गए। केवल दारा, उसकी दो पुत्रियाँ, सिपिर और कुछ नौकर ही शेष रहे। इन्हीं के साथ वह कंदहार की ओर रवाना हुआ। पर अभी वह बोलन दर्रे की ओर बढ़ ही पाया था कि नीच मलिक जीवन ने आकर उसे घेर लिया। बेचारा दारा दुःख से इतना परेशान और अचेत-सा था कि अपनी रक्षा के लिये उसने उँगली तक न उठाई। सिपिर ने अवश्य लड़ना चाहा पर वह अकेले कर ही क्या सकता था। उसके हाथ पीठ के पीछे बाँध दिए गए और अपने पिता और बहिनों के साथ वह कैद कर लिया गया। मलिक जीवन ने दारा की गिरफ्तारी का समाचार मिर्जा राजा जयसिंह के पास भेजा और वहाँ से बहादुर खाँ २३ जून को आकर कैदियों को अपने अधिकार में ले दिल्ली के लिये रवाना हो गया। मलिक मुगल राज्य में 'हजारी' बनाया गया और उसे 'बख्तार खाँ' की उपाधि मिली। वह दिल्ली भी बुलाया गया जहाँ उसे और भी पुरस्कार मिलने की आशा थी।

२३ अगस्त को दारा कैदी के रूप में दिल्ली पहुँचा और खवासपुर गाँव के एक घर में कैद कर दिया गया। फिर २९ तारीख को, दिल्ली के लोगों को यह दिखाने के लिये कि उनका दारा गिरफ्तार हो गया है, औरंगजेब ने एक जुलूस निकलवाया। कितना मार्मिक था वह दृश्य ! हीरों और जवाहरात से लदा हुआ—सोने से सुसज्जित मृगराज पर बैठकर निकलनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारा, उन्हीं दिल्ली की सड़कों से एक मैली और मिट्टी से सनी हुई बूढ़ी हथनी पर निकाला गया। खुला हुआ सादा हौदा—बिछाने को एक चादर तक नहीं। स्वयं दारा के शरीर पर भी मैले और फटे हुए कपड़े थे। सिपिर की भी यही दशा थी—दोनों के पैरों में जंजीरें पड़ी थीं और उनके पीछे बैठा था नंगी तलवार लिए नजर बेग। साथ में मलिक जीवन भी अपने अफगान सिपाहियों के साथ चल रहा था। सारी दिल्ली में, जहाँ कभी दारा के वैभव की तूती बोलती थी, यह जुलूस घुमाया गया। दारा का सिर झुका हुआ था—नेत्र उसके पैरों पर गड़े थे। ऊपर उठकर देखने का उसका साहस न होता था। मार्ग भर में केवल एक बार उसने अपना सिर उठाया जब सड़क पर इकट्ठी भीड़ में से एक बूढ़ा भिखारी रोकर चीख उठा—"ओह दारा! जब तुम स्वामी थे तो सदा ही हमें भिक्षा देते थे—पर आज मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे पास मुझे देने को कुछ भी नहीं है।" दारा ने इस पर चुप-चाप उस फटे हुए पुराने शाल को जिससे उसका शरीर ढका था उतारकर भिखारी के पास फेंक दिया। डाक्टर बर्नियर ने इस करुण घटना को स्वयं देखा था और ऐसे करुण शब्दों में इसका उल्लेख किया है कि हृदय विदीर्ण हो उठता है। दिल्ली की समस्त प्रजा इस समय रो रही थी। शहर भर में आतंक छाया था, दुःख और अभिशाप के बादल घर घर मँडरा रहे थे। लोगों ने जुलूस के बाद पापी मलिक जीवन और उसके साथियों पर वार भी किया, पर औरंगजेब की सहायता से मलिक का कुछ भी न बिगड़ा। दारा के पक्ष में दिल्ली की जनता में ऐसा जोश देखकर औरंगजेब विचलित हो उठा। उसने तुरंत ही अपने उमरा और उलेमा आदि की सभा बुलाई और दुष्टा रौशनारा से भी इस विषय में राय ली। पर एक तो दारा की पहले ही से मुल्लाओं की उपेक्षा; दूसरे औरंगजेब की जहरीली खून भरी आँखें; तीसरे खलीलुल्लाह खाँ, शायस्ता खाँ, ऐसे दारा के जानी दुश्मन—ऐसी स्थिति में ढोंगी न्याय भी काँप उठा और २९ अगस्त १६५९ की संध्या को अभागे दारा की मृत्यु का 'फतवा' प्रकाशित कर दिया गया।

फिर दूसरे दिन, रात्रि में, रोते हुए सिपिर से जबरन छीना जाकर दारा एक कोठरी में 'कत्ल' कर दिया गया। सारा झंझट और सारी परे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शानियाँ उसी के साथ समाप्त हो गईं—मायावी संसार का कार्य-क्रम फिर उसी भाँति धीरे धीरे चलने लगा। इस अतिशय गर्हित खूनी कार्य का भार नजर बेग और शफी खाँ को दिया गया था। 'तारीखए शुजाई' के लेखक का कहना है कि दारा के सिर ने—शरीर से अलग कर दिए जाने पर—पूर्ण 'कलिमाए शहादत' (मुसलमान होने का सबसे दृढ़ प्रमाण) पढ़ा और उसे उपस्थित लोगों ने सुना भी। इसके बाद, कुछ इतिहासकारों के अनुसार, ३१ अगस्त को दारा का मृतक शरीर दिल्ली में पुनः घुमाया गया, पर औरंगजेब के शक्तिशाली सिपाहियों के समक्ष कोई कुछ कर न सका।

मानुच्ची का कथन है कि रौशनारा की सलाह पर औरंगजेब ने दारा के कटे हुए खून से लथपथ सिर को एक संदूक में रखकर भेंट के रूप में शाहजहाँ के पास भेज दिया। शाहजहाँ ने पहिले इसे वास्तव में उपहार समझा और यह सोचकर कि औरंगजेब उसे भूला नहीं है वह हर्ष से आह्लादित हो उठा। पर जब जहानारा ने उसे खोला तो वह अचेत धम से पृथ्वी पर गिर पड़ा—स्वयं जहानारा भी चीख मारकर रो उठी जिसके दर्द से उस समय सारा महल काँप रहा था। हालाँ कि औरंगजेब के लिये यह कार्य असंभव नहीं, पर यह घटना कहाँ तक सत्य है यह निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता। इसके बाद दारा का सिर शरीर से जोड़कर हुमायूँ के मकबरे में दफन कर दिया गया—फिर न उसकी किसी ने चिंता की, न उसकी रक्षा! ऐसा विचित्र है यह संसार!

दारा की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में सुलेमान को १६६१ में मृत्यु-दंड मिला और सिपिर को १४ वर्ष तक ग्वालियर तथा सलीमगढ़ के किलों में कैद रखने के बाद औरंगजेब ने उसका अपनी पुत्री जुबदतुन्निसा से विवाह कर दिया। दारा की दो पुत्रियों को शाहजहाँ और जहाँनारा की प्रार्थना पर आगरे भेज दिया गया था। बाद में, इनमें बड़ी, जानी बेगम के साथ, जो एक अद्वितीय सुंदरी थी औरंगजेब ने अपने दूसरे पुत्र मुहम्मद आजम का विवाह कर दिया।

पर कैसा करुण था इतिहास की इस अद्वितीय उज्ज्वल आत्मा, दारा का अंत जिसके उद्दीप्त आदर्श की ज्योति और जिसके महान् संदेश का गौरव संसार में कभी भी धूमिल नहीं हो सकता!

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र—मानुच्ची, जो विदेशियों में दारा का सबसे प्रिय था, दारा के विषय में लिखता है—"दारा……का आचरण महान् था; मुख सुंदर था, उसका वार्तालाप आनंददायक और शिष्ट था; वाणी उसकी सदैव दयाशील और तत्पर रहती थी—स्वभाव उसका स्वतंत्र था, दयालु, और करुणामय। किंतु अपने विषय में वह सदैव आवश्यकता से अधिक विश्वास करता था, अपने को प्रत्येक कार्य करने के योग्य समझता था और सम्मति-दाताओं की आवश्यकता वह कभी न अनुभव करता था। इस प्रकार उसके हार्दिक मित्र भी कभी उसे आवश्यक बातों से सूचित करने का साहस न करते थे। फिर भी उसकी इच्छाओं को समझ लेना सहज ही था।" इस विदेशी यात्री ने दारा की एक बहुत बड़ी कमजोरी को बड़ी सुंदरता से लिखा है। डाक्टर बर्नियर भी किसी न किसी रूप में इसकी पुष्टि करता है—"दारा के सद्गुणों में किसी प्रकार की भी कमी न थी, वह संभाषण में दयालु था, सरसोत्तर में निपुण तथा सभ्य, सुशील और अतिशय उदार। किंतु वह अपने विषय में बहुत ही गौरवान्वित विचार रखता था और उसे विश्वास था कि वह अपने मस्तिष्क की शक्ति से प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक संपादित कर सकता है।………उसका स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा था, धमकी देने को वह सदा तत्पर रहता और अपमान तथा अनुचित भाषा का प्रयोग तो वह बड़े-बड़े उमरा आदि के लिये भी कर बैठता था; किंतु उसका क्रोध प्रायः क्षणिक ही हुआ करता……"

दारा के राजनैतिक जीवन में असफलता पर इन दो विदेशियों की टिप्पणियाँ अच्छा प्रकाश डालती हैं। इनमें मानुच्ची की अपेक्षा बर्नियर को सहानुभूति दारा के प्रति कम ही मालूम होती है।

कुछ इतिहासकारों तथा विद्यार्थियों की धारणा है कि दारा इतिहास में असफल और एक सर्वथा निरर्थक व्यक्ति है। किंतु ऐसा कहना इतिहास और उसके वास्तविक भावों के प्रति घोर अन्याय होगा। यदि हम उसकी असफलता पर ध्यान दें तो वह केवल इसी तत्त्व में है कि दारा ने युद्ध संबंधी और राजनैतिक कला को सदैव गौण स्थान दिया। अपितु, वह जीवन भर साम्राज्य में साहित्यिक चेष्टाओं द्वारा अनंत शांति और असीम अविरोध के स्थापन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न करता रहा। ऐसी स्थिति में क्या उसके मस्तक पर केवल असफलता की कालिमा का टीका लगाना उचित होगा ?

धार्मिक दृष्टिकोण से भी इस्लाम के कट्टर अनुयायी दारा को नीच और गर्हित दृष्टि से देखते हैं। पर यह भी उचित नहीं जँचता। दारा और औरंगजेब दोनों ही इस्लाम को समान दृष्टि से देखते थे। अंतर केवल इतना ही था कि दारा का विश्वास इस्लाम की सच्ची आत्मा और उसके वास्तविक भावों में था, और औरंगजेब का कुरान शरीफ के प्रत्येक अक्षर में। उन्नति और शांति को अपने जीवन में व्याप्त किए दारा एक शांति-स्थापक के रूप में, एक धर्म का संदेश दूसरे धर्मानुयायियों तक पहुँचाने के कार्य में संलग्न था। पर उसी स्थान पर औरंगजेब समस्त संसार को इस्लाम में परिवर्तित कर अपने इस्लाम का ही झंडा गाड़ना चाहता था—उसके मनोभाव प्रतिक्रियात्मक थे और उसका कार्य सुधार-विरोधी।

शाहजहाँ में इस्लाम की धार्मिक कट्टरता और अकबर के समय की अपूर्व उदारता का एक विचित्र सम्मिश्रण था। उसका शासन-काल एक ऐसी धुरी थी जहाँ से युग प्रकाश और महत्ता से अंधकार और नीचता की ओर घूम रहा था। किंतु फिर भी दोनों धर्मानुयायो उसे समान रूप से मानते थे और उसके साम्राज्य में शांति तथा अविरोध के साथ निवास करते थे। शाहजहाँ के दो रूप थे जो दारा और औरंगजेब ने बारी-बारी से प्राप्त किए। दारा के पक्ष में पड़ा 'अपने बंधुओं और आत्मजों के प्रति अतिशय स्नेह, वैभव और विशालता; प्रेम, ज्ञान, पांडित्य तथा प्रवीणता की अति उदार प्रशंसा, संगीत और चित्रकारी में विशुद्ध रुचि तथा फलित ज्योतिष एवं खगोल-विद्या में विश्वास।' औरंगजेब के भाग में पड़ो—'धूर्तता, मानव-चरित्र के परिज्ञान की अपूर्व शक्ति, इरादों का तेजी से परिवर्तित होकर दृढ़ संकल्प का क्रियात्मक रूप धारण करना, कार्य करने की अथक क्षमता तथा नित्य के कार्य में अद्भुत रुचि'।

दारा के पास शारीरिक तथा मानसिक शक्ति और उत्साह दोनों ही थे। किंतु उसका जीवन असीम वैभव, सुख और ऐश्वर्य के पालने में आरंभ हुआ था, जहाँ न उसको अकबर और औरंगजेब की भाँति राज्य प्राप्त करने की आवश्यकता थी और न युद्ध-क्षेत्र में सेना को शत्रु के विपक्ष चतुरता से खड़ी करने की चिंता। उसे इन कार्यों में क्रियात्मक अथवा आभ्यासिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव लेशमात्र भी न मिल सका जिसकी क्षति ने उसके विशाल जीवन को काँटों में उलझाकर नष्ट कर दिया।

दारा ने जहाँनारा के साथ औरंगजेब और सादुल्ला खाँ की चालों का राज्य में विरोध किया और न्याय को बचाकर कई बार उसकी रक्षा की। उसने अपनी उदारता और विशालता के गर्भ में हिंदुओं के प्रति शाहजहाँ की उदासीनता और उपेक्षा को छिपाकर इतिहास में आज दूसरा ही रूप उपस्थित किया। अन्यथा शाहजहाँ का समय मुगल राज्य के स्वर्ण युग के नाम से आज न पुकारा जाता। उसके काल की शिष्टता, सभ्यता और साहित्यिकता को उन्नत करने का श्रेय भी दारा को ही है जिसके बिना शायद शाहजहाँ के काल में ताजमहल और दो-एक अन्य इमारतों के अतिरिक्त गौरव करने योग्य कुछ भी न होता।

कभी कभी हमें प्रतीत होता है मानों दारा के रूप में महान् अकबर ने संसार में पुनः जन्म लिया हो। किंतु यह धारणा मिथ्या है—वास्तव में कोई दूसरा अकबर अभी तक पैदा ही नहीं हुआ। दारा और अकबर के धार्मिक विचार, राजनैतिक ज्ञान तथा कार्यों में बहुत अंतर था।

औरंगजेब के समय के कुछ लोगों का विश्वास है कि दारा की अँगूठी पर हिंदी में 'प्रभु' का शब्द लिखा होना और मथुरा के केशव राय मंदिर में पत्थर की चारदीवारी (रेलिंग) भेंट करना उसके विधर्मी होने का प्रमाण है। किंतु ऐसा सोचना नितांत नासमझी है। दारा का आध्यात्मिक ज्ञान, उसके धार्मिक विचार, मुसलमानों और विशेष कर औरंगजेब के समय के लोगों के लिये इतने उच्च और विशिष्ट थे कि उनको समझना उनकी शक्ति के सर्वथा परे हो गया। यही कारण है कि हम दारा के प्रति ऐसी ईर्ष्या और ऐसे विद्वेष की भावना पाते हैं।*

---

* इस लेख के लिखने में, और विशेषकर दारा के चरित्र में अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त डाक्टर कालिकारंजन कानूनगो की पुस्तक 'दारा शुक़ोह' से विशेष सहायता मिली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलाय-बलाय

[लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल]

ऊपर लिखे हुए शब्द के कई रूप हिंदी भाषा में पाए जाते हैं। मेरठ की बोली में या कुरु-पंचाल जनपद की भाषा में 'अलाय-बलाय' रूप प्रसिद्ध है। अवधी या कोसल जनपद की भाषा में 'अलैया-बलैया' रूप मिलता है। खड़ी बोली में 'अला-बला' रूप का प्रयोग होता है। ये शब्द हमारी भाषा में कहाँ से आए हैं, इनकी व्युत्पत्ति क्या है, यह प्रश्न बड़ा रोचक है। हिंदी में इस शब्द का अर्थ विपत्ति, विघ्न, बाधा आदि है। शब्दसागर में 'बला' और 'बलाय' दोनों रूप गृहीत हुए हैं। 'बला' के अर्थ (१) आपत्ति, विपत्ति, आफत, गजब; (२) दुःख, कष्ट; (३) भूत, प्रेत, भूत-प्रेत की बाधा, (४) रोग, व्याधि—इस प्रकार हैं। 'बलाय' शब्द के आगे ऊपर के चार अर्थों के अतिरिक्त पाँचवाँ यह और है—'पीछा न छोड़नेवाला शत्रु, अत्यंत दुःखदायी मनुष्य।' हमारे लिखित साहित्य अथवा बोली में 'बलाय' शब्द का जिन अर्थों में प्रयोग हुआ या होता है, वे ये ही हैं। शब्दसागर में 'अलाय' शब्द देखने में नहीं आया। शब्दार्थ-पारिजात में 'अलैया-बलैया' का पर्याय 'निछावर, खेल' दिया गया है। यह अर्थ प्राथमिक नहीं, गौण है। मूल अर्थ 'आपत्ति' या 'बाधा' का ही था जो 'अलैया-बलैया उतारना' इस मुहावरे में भी पाया जाता है।

इन दो शब्दों की व्युत्पत्ति पर हमारा ध्यान वेद के दो शब्दों के कारण गया है जिनका यहाँ वर्णन किया जाता है। इस संबंध में अथर्ववेद के पाँचवें अध्याय के १३वें सूक्त के निम्नलिखित मंत्र ध्यान देने योग्य हैं—

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरवज्यामिव धन्वनो विमुञ्चामि रथाँ इव ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलिगी च **विलिगी** च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥
उरु गूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतंकं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥

× × × ×

ताबुवं न ताबुवं न घेत्त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥*

इन मंत्रों के मोटे टाइप में छपे शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। तैमात, आलिगी, विलिगी, उरुगूला, ताबुव—इन शब्दों पर लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक ने अपनेएक लेख में विशेष विचार किया है। लेख का नाम है 'कैल्डिअन ऐंड इंडियन वेदाज' (कल्दी और भारतीय वेद) जो वैदिक कालगणना और वेदांग ज्योतिष (Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha) नामक उनके निबंध-संग्रह में प्रकाशित हुआ है तथा १९१७ में भंडारकर-प्रशस्ति-ग्रंथ (कमीमोरेशन वाल्यूम) में पहले छपा था। उनके लेख का सारांश यह है कि प्राचीन बेबिलोनिया से मिले हुए धर्मग्रंथों में अथर्व वेद के कुछ नाम

---

* मंत्रों का शब्दार्थ—

६—काले तैमात और भूरे सर्वविजयी अपोदक के विष (मन्यु) से मैं तुम्हें छुड़ाता हूँ, जैसे डोरी को धनुष से और रथों को (घोड़ों से) अलग करते हैं।

७—आलिगी और विलगी, पिता और माता—तुम्हारे सब बंधुओं को हम जानते हैं। रस-विहीन होकर तुम क्या कर सकोगे ?

८—उरुगूला की बेटी, काली की साथ पैदा हुई दासी—(आदि) रेंगकर भागनेवालों का विष रसहीन हो गया है।

१०—ताबुव—या नहीं ताबुव—तुम निश्चय ताबुव नहीं हो। ताबुव के द्वारा तुम्हारा विष रज-हीन (किया गया है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शब्द मिलते हैं जिससे पारस्परिक संपर्क सूचित होता है। जैसे वैदिक तैमात का ही रूपांतर कल्दी ग्रंथों में तिआमत है जो वैदिक वृत्र के समान प्रारंभिक जलरूप सर्प या अहि था। कल्दी गाथाशास्त्र में तिआमत[१] एक स्त्री है पर कभी कभी पुरुष रूप से भी उसका वर्णन देखने में आता है। वैदिक उरुगूला के जोड़ का प्राचीन अक्कदी भाषा में जो म्लेच्छवंशी (सेमेटिक) भाषा थी 'उरु गल' या उरु गुल था जिसका अर्थ है 'बड़ा (गल या गुल) नगर (उरु)। प्राचीन सुमेर की भाषा में भी उरु नगर का पर्यायवाची था और प्रेतात्मा पितरों के पाताल में स्थित निवासस्थान को 'उरुगुल' या 'महापुर' कहा जाता था। 'उरुगूला की पुत्री' अर्थात् पाताल लोक से संबंधित, यह विशेषण सर्प जाति के लिये ठीक ही है। ताबुव शब्द का अर्थ था ताबु-संबंधी, ताबु = अपवित्र वस्तु का संस्पर्श। यह शब्द प्रत्यक्षतः विदेशी भाषा का जान पड़ता है।

हमारी जिज्ञासा का संबंध जिन दो शब्दों से है—आलिगी-विलिगी—उनके बारे में तिलक का कहना है कि ये प्राचीन अक्कदी या म्लेच्छ भाषा के शब्द हैं। 'आलिगी' का समकक्ष कोई नाम उन्होंने नहीं दिया पर बिलगी (Bil-gi) नाम का एक देव असिरिया में था। बिलिगी और बिलगी एक-दम सगोती जान पड़ते हैं। यह समानता प्राचीन वैदिक आर्य जाति और असुर जाति के संपर्क को बताती है। यह संपर्क किस रूप में और किस युग में हुआ, ये बातें भविष्य के पुरातत्त्व-शास्त्र या प्राचीन भाषाओं और धर्मों के गंभीर तुलनात्मक अध्ययन से कभी मालूम होंगी।

१—बाइबिल में भी कल्दिया और बेबिलोनिया देशों का जिक्र है। बाइबिल में जो सृष्टि का वर्णन है वह यहूदियों ने प्राचीनतर बेबिलन की सभ्यता से लिया था। बाइबिल का हेब्रू शब्द तेहोम (Tehom = गंभीर अगाध जल), असीरिया का तमतु (Tamtu) और कल्दी तिआमत (Tiamat) एक ही मूल से जुड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा अनुमान है कि बिलगी की धारा म्लेच्छ परिवार की भाषाओं की परंपरा से अरबी भाषा के 'बला' शब्द में है[१]। बिलिगी शब्द से उत्पन्न दूसरी धारा आर्य परिवार की बोलियों में बलाय या बलैया के रूप में विद्यमान है। आलिगी से मिलता-जुलता 'अला' शब्द अरबी भाषा में नहीं है। परंतु हिंदी भाषा में आलिगी-बिलगी से मिलते हुए दोनों शब्द अलइया-बिलइया, या 'अलाय-बलाय' मौजूद हैं। एक ओर वैदिक संस्कृत और दूसरी ओर आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा अर्थात् हिंदी—इन दोनों में काल की बड़ी दूरी अवश्य है, पर परंपरा एक ही है। वैदिक भाषा— संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश—आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ जैसे हिंदी, गुजराती, मराठी आदि, यही विकास की धारा का प्रवाह रहा है। हिंदी शब्दों की व्युत्पत्ति के लिये जनपदों की बोलियों के सांगोपांग अध्ययन की बड़ी भारी आवश्यकता है। उनके शब्दों में अनेक ऐसे होंगे जिनकी आयु वेद के युग तक जायगी और अनेक ऐसे भी हैं जिनका प्रचार साहित्य की अपेक्षा बोलियों में अधिक प्रचलित रहा है। साहित्य में अलैया-बलैया का प्रयोग शायद ही कभी हुआ हो, संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश के काव्यों में उसके उदाहरण हमारे देखने में नहीं आए; परंतु जनसाधारण के प्राकृत वचनों में ये प्रतिदिन के चालू शब्द हैं। इसी बात को बताने के लिये हम एक अन्य शब्द का उदाहरण लेते हैं। यह है इंड्र शब्द। इसी से हमारी बोलियों का इंडुरी या ईंडरी शब्द बना है। शतपथ ब्राह्मण और कात्यायन श्रौतसूत्र में इस शब्द का प्रयोग आया है। आग पर से जलती कड़ाही पकड़कर उठाने के लिये दोनों हाथों की मूँज की बनी दो गद्दियों को इंड्र (द्विवचन में इंड्रे) कहा जाता था।

१—अरबी में बला शब्द = आफत, दुःख, तकलीफ—Steingass Arabic Dictionary, p. 138, *bata'* = visitation, affliction, calamity, sorrow, trouble. फारसी में बला शब्द अरबी भाषा से ही आया है और अर्थ भी एक से ही हैं। स्टाइनगास ने अपने फारसी कोष में भूत प्रेतबाधा, शैतान (evil spirit, devil, fiend) और दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका इंडुव भी एक पाठ है। पर हिंदी के इंडुरी शब्द से इंड्र का ही अधिक समर्थन होता है। संस्कृत या प्राकृत एवं अपभ्रंश के कवियों को ऐसे प्रसंग कहाँ मिले जो इस ठेठ शब्द का स्मरण करते, परंतु क्या इससे इस शब्द की सहस्राब्दियों लंबी आयु में कोई अंतर पड़ सकता है? मूँज या बान की बनी हुई गोल चकिया जैसी कुंडली को जिस पर बहुधा पनिहारिनें घड़े टेकती हैं आज भी इंडरी या इंडुरी कहते हैं। लोक की जीवित बोलियों का अध्ययन अवश्यमेव बड़े काम की वस्तु सिद्ध होगी, उससे हिंदी के अनगिनत शब्दों की व्युत्पत्ति का नकशा समझ में आने लगेगा।

अलैया-बलैया शब्द का संबंध लोक में एक विशेष त्योहार से भी है। दीवाली के दूसरे दिन बलि प्रतिपदा होती है। उस दिन बहुत प्रातःकाल घरों से अलाय-बलाय या दारिद्रय को बाहर निकाला जाता है। दरिद्दर भगाने की यह रस्म दिवाली के प्रातःकाल सूप बजाकर की जाती है। इसे हिंदी-शब्द-सागर में 'सेरवा' भी कहा है। हो सकता है इसके मूल में कोई ऐतिहासिक घटना छिपी हो। दीपावली के आगे पीछे के कई त्यौहारों का संबंध बलि, यम, नरक से है, जैसे नरक-चतुर्दशी, यम-तर्पण, यम-दीपदान, यमघंटा, बलिप्रतिपदा, यमद्वितीया आदि। नरक और बलि दोनों ही भारतीय इतिहास की साक्षी के अनुसार असुर थे। हो सकता है इन तिथियों के आस-पास उनका पराभव कभी हुआ हो। आलिगी और विलिगी नामक उत्पीडकों का उनसे ही संबंध हो सकता है। उनके विनाश की लोक-प्रचलित स्मृति आज भी अलैया-बलैया जलाने के रूप में देखी जाती है। सन की तीलियों के मुट्ठे अलैया-बलैया कहकर बाजार में बिकते हैं। उन्हें ही 'अलाय-बलाय दूर करो' के घोष के साथ दिवाली की शाम को और अगले दिन बहुत प्रातःकाल जलाते हैं। ऐसी लोक-प्रथा यहाँ अवध में है। अन्यत्र भी इसका अनुसंधान किया जा सकता है। आलिगी-विलिगी = अलैया-बलैया, इस सूत्र पर यदि ऐतिहासिक प्रकाश की दो-एक किरणें कहीं से पड़ सकें तो कितना सुंदर हो। जलप्लावन के बाद ऊर में राज्य करनेवाले वंश के दो राजाओं के नाम एलेलु और बलुलु (Elelu, Balulu) थे जिन्होंने एक दूसरे के बाद क्रमशः २५ वर्ष और ३६ वर्ष राज्य किया। इनका काल ३२०० ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पू० से पहले चौथी सहस्राब्दी अनुमान किया गया है—(केंब्रिज एंशेंट हिस्ट्री १।३६७)। परंतु सुमेर जाति की सभ्यता और आर्य संस्कृति के प्रारंभिक उद्गम और उनके पारस्परिक संबंध और संपर्क का विनिर्णय अभी तक इतिहास की गूढ़ पहेली है। कालांतर में संभव है उसका उद्घाटन हो परंतु आलिगी-विलिगी के वैदिक सूत्र के साथ अलैया-बलैया के लौकिक सूत्र का मिलान तो तब तक के लिये अवश्य ही समीचीन माना जा सकता है।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

संस्कृत वाङ्मय में 'सरस्वती' शब्द

उपर्युक्त विषय पर श्री एम० पी० एल० शास्त्री का एक उपादेय लेख 'दी पूना ओरिएंटलिस्ट' के ग्रंथ ६—अंक ३-४ में प्रकाशित हुआ है। यहाँ उसका अनुवाद प्रस्तुत है। —कृ।

संस्कृत में 'सरस्वती' शब्द के ये अर्थ होते हैं:

(१) विद्या की देवता—ब्रह्मा की पत्नी (कथित), (२) वाणी, (३) एक नदी का नाम या साधारण नदी, (४) गौ, (५) उत्तमा नारी, (६) दुर्गा का एक नाम, (७) बौद्धों की एक स्त्री देवता का नाम, और (८) सोमलता या ज्योतिष्मती नाम की लता।

यह शब्द अस्मरणीय काल से एक नदी के नाम और विद्या की देवता का वाचक रहा है। कहीं कहीं यह ब्रह्मा की पत्नी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस लेख में इस शब्द के इतिहास का शोध करने और यह दिखाने का प्रयत्न है कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है इस कल्पना का उद्भव वेदोत्तर है।

ऋग्वेद में इस शब्द का दोहरा अर्थ है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् सायणाचार्य १।३।१२ मंत्र का भाष्य करते हुए कहते हैं—

द्विविधा हि सरस्वती विग्रहदेवता नदीरूपा च।

यास्क ने अपने निरुक्त (२।२३) में कहा है—

तत्र सरस्वतीत्येतस्य नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति।

बहुत बार यह शब्द वैदिक वाङ्मय में एक सीमाप्रांतीय नदी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो महामरु की बालुका में लुप्त हो गई है। इस सरस्वती नदी का आर्यों के दैनिक जीवन में, उनके भारत में बसने के प्रारंभिक दिनों में, एक प्रमुख स्थान था। इसकी गणना सबसे बड़ी नदियों में होती थी। आर्यों के दैनिक जीवन-निर्वाह और उनकी समृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह सहायक होती थी। यह पुण्यमयी समझी जाती थी। इस सरिता की महाशक्तिमत्ता से वैदिक कवि इसके गौरव-गान के लिये उत्प्रेरित हुए थे। सरस्वती वह एक ही नदी थी जो शुचि जल से भरी पर्वतों से सागर तक बहती थी।

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
(ऋ० ७।९५।२)

इस नदी का जल विविध वैदिक कर्मों के लिये लिया जाता था (१०।७५।५-६; १।३२।१२; ४।२८।१)। वैदिक ऋषि इस पवित्र नदी के तट पर अपने यज्ञ करते थे।

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। (ऐतरेय ब्राह्मण २।१९)

सरस्वती को वाणी (या वाक्) भी कहा गया है। इसे वाग्मिता और विज्ञता की देवता कहा गया है। यह पवित्र करनेवाली देवी, शक्तिमती, ऋषियों के द्वारा यज्ञों में उपस्थित रहने के लिये सदा प्रार्थित समझी गई है।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञां वष्टु धियावसुः।
(ऋ० १।३।१०)

और इससे वाणी में मधुरता ढालने की, भले विचार जगाने की, धीमानों का ध्यान रखने की, और सत्यव्रतियों को प्रोत्साहित करने की आशंसा की गई है।

चोदयित्री सूनृतानां सुमतीनां चेतन्ती। (ऋ० १।३।११)

वैदिक आर्यों के लिये सरस्वती पहले नदीदेवता से अधिक कुछ नहीं रही। पीछे, यह जान पड़ता है कि उन्होंने 'वाक्' के साथ इस शब्द का एकीकरण किया और तब विज्ञता या विद्या को देवता के रूप में इसकी कल्पना की। ऋग्वेद में तीन पूरे सूक्तों में इसकी प्रशंसा हुई है और बहुतेरे स्फुट मंत्रों में इसका निर्देश हुआ है। वैदिक कवियों के मन में नदी के साथ सरस्वती देवता का एकीभाव सदा उपस्थित रहा जान पड़ता है।

ऋग्वेदोत्तर काल में इस शब्द का प्रयोग संध्या समय पूज्य एक स्त्री देवता के अर्थ में हुआ है। अथर्ववेदीय सूक्तों के कवियों ने सरस्वती के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ एक और ही विरुद जोड़ा। अथर्ववेद (७।११।२) में इससे सर्पदंश के विषमय प्रभाव के निवारण की प्रार्थना की गई है।

इस शब्द का उक्त दोहरा वाच्यार्थ पूर्ववर्ती विशिष्ट संस्कृत वाङ्मय में चलता आया है। वाल्मीकीय रामायण में यह शब्द एक नदी का नाम और वाणी इन दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वाल्मीकि ने निषाद को शाप दिया था। वे उस कारण बहुत खिन्न थे, क्योंकि वह रामकथा के लिये, जिसकी उन्हें रचना करनी थी, एक अमंगल आरंभ हो जाता। कवि जब इस भाव से अभिभूत थे तब ब्रह्मा पहुँचे और उन्होंने उनसे खेद न करने और कथा आरंभ करने का आदेश किया। तब उन्होंने कहा—

मच्छंदादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।

सरस्वती शब्द यहाँ वाणी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आगे अयोध्या और किष्किंधा कांडों में यह इस नाम की नदी के अर्थ में आया है—

सरस्वतीं च सिंधूं च शोणं मणिनिभोदकम्। (किष्किंधा ४०।२१)
सरस्वतीं च गङ्गां च युग्मेन प्रत्यपद्यत। (अयोध्या ७१।५)

इस शब्द ने इस दोहरे अर्थ का कालिदास के समय में भी निर्वाह किया है। उन्होंने वाणी के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों में किया है।

आत्तशास्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितस्स रघूद्वहः।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढ़रूपा सरस्वती॥ (रघुवंश १५।४६)
इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं ह्रदशोषविक्लवां प्रथमा वृष्टिरिवावकम्पयत्। (कुमारसंभव ४।३९)

दोनों ही स्थलों में 'अशरीरा वाक्' ही निर्दिष्ट है। बहुत बार सरस्वती विशिष्ट संस्कृत वाङ्मय में विद्या की देवता के रूप में वर्णित हुई है, जो रूप वैदिक काल में प्रचलित था।

स्यात् पौराणिक काल में विद्वानों ने सरस्वती के उद्भव और ऐतिह्य की बात सोची। पुराणों में वह एक हाथ में वीणा और दूसरे में पुस्तक धारण करनेवाली एक शुक्लवर्णा देवी के रूप में वर्णित हुई है। वह समस्त वाक् की अधिष्ठात्री देवी है। कवियों की वह इष्टदेवता है और वह एक बहुत शांतिमयी देवी मानी गई है। पद्मपुराण सरस्वती को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा की दुहिता के रूप में, जो उनके मुख से प्रथम उद्भूत हुई, वर्णित करता है। ब्रह्मवैवस्वत पुराण का बम्रखंडाध्याय यह ऐतिह्य बताता है—

आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखतः परमात्मनः।
एषा देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी॥
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती॥

उसी वैवस्वत में एक दूसरे स्थल में कहा गया है कि सरस्वती पहले भगवान् कृष्ण के कंठ से निकली थी और बड़ी ही विचित्रता है कि १२वीं शती के प्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष ने नैषधकाव्य में इसे विष्णुपत्नी के रूप में वर्णित किया है।

पद्मपुराण सरस्वती के जादूभरे सौंदर्य को कारण बताते हुए उसके साथ ब्रह्मा के विवाह की कथा सुनाता है। यह कल्पना बहुत परवर्ती काल के पूर्व प्रचलित हुई जान नहीं पड़ती, यद्यपि चंपूरामायण के कर्त्ता भोजदेव इस पद में यह ध्वनित करते हैं कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है—

वाणीविलासमपरत्र कृतोपलम्भ-
मम्भोजभूरसहमान इवाविरासीत्।
आभाति यत्कृतिरनेकविधप्रपञ्च-
व्याजेन्द्रजालविधिसाधकपिंछिकेव॥

यह कविता अवश्य एक अलंकारमयी भाषा में है। पर यह वह कल्पना व्यक्त कर देती है कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है, जो स्यात् उस समय के लोगों के मन में व्याप्त थी।

यह बात कौतूहलजनक है कि संस्कृत का एक भी कोश ऐसा एक भी शब्द नहीं बताता या संकेतित करता जिसका तात्पर्य यह हो कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी हैं।

जैन कोश अभिधानराजेंद्र इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग बताता है—(१) उस राजकुमारी का नाम जिसने किसी धनवहन (नामक पुरुष) से विवाह किया था, (२) गंधर्व राजा गीतारति की रानी, और (३) विद्या की देवता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध संस्कृत कोश वैजयंती इस शब्द का विद्या की देवता और गौ या पृथ्वी के अर्थों में प्रयोग बताता है।

शब्दकल्पद्रुम विद्यादेवता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बताता है। इस देवता का ऐतिह्य बताने के लिये वह ब्रह्मवैवस्वतपुराण के वत्र-खंडाध्याय का एक अवतरण देता है।

प्रसिद्ध संस्कृत कोश अमरकोश सरस्वती शब्द के ये पर्याय देता है जो उस स्त्री देवता के वाचक तो हैं, परंतु उपर्युक्त अर्थ का यह कहीं संकेत नहीं करता।

ब्राह्मी (तु) भारती भाषा गीर् वाग् वाणी सरस्वती। (१।५।१)

न अमर कोश और न उसके टीकाकार कहीं यह संकेत करते हैं कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है। प्रत्युत, लक्ष्मी और पार्वती के प्रसंग में उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनसे विष्णु और ईश्वर (शिव) से उनका संबंध व्यक्त हो जाता है।

(i) कमला श्रीर्हरिप्रिया (१।१।२७)

(ii) शिवा भवानी रुद्राणी (१।१।३७)

अमरसिंह द्वारा विष्णु और ईश्वर के लिये प्रयुक्त गुणवाचक नाम भी बताते हैं कि वे क्रमशः लक्ष्मी और पार्वती के पति हैं।

विष्णु के लिये माधव (मायायाः लक्ष्म्याः धवः)

ईश्वर के लिये उमापति (उमायाः पतिः)

और यह सार्थक बात है कि नामलिंगानुशासन का कर्ता कोई ऐसा शब्द नहीं देता जो सरस्वती और ब्रह्मा के बीच उस संबंध का वाचक हो। कुछ विद्वानों ने सरस्वती के पर्याय के रूप में प्रयुक्त 'ब्राह्मी' शब्द का अर्थ ब्रह्मा की पत्नी लगाया है। परंतु इसमें संदेह है कि वह शब्द यह अर्थ संकेतित कर सकता था। 'ब्रह्मण इयं ब्राह्मी' से यह अर्थ असंभव है। यह अर्थ संकेतित करने के लिये इसे मृदानी के समान 'ब्रह्माणी' होना चाहिए था। ऐसा शब्द अमरकोश में कहीं नहीं है।

अतः यह स्पष्ट है कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है इस कल्पना का वैदिक काल में या पूर्ववर्ती विशिष्ट संस्कृत के काल में अस्तित्व न था। इस कल्पना का उद्भव उत्तरकाल में पौराणिक वाङ्मय से हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख आदि शून्यवाची शब्द एवं आकाश के साथ उनका दार्शनिक संबंध

उपर्युक्त विषय पर डा० आनंद कुमारस्वामी के एक उपादेय लेख का उनके अनुरोध से श्री वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा किया अनुवाद 'विश्वभारती पत्रिका' के खंड १, अंक १ में प्रकाशित हुआ है। वह यहाँ संगृहीत है। —कृ।

'ख' [= यूनानी Xaos] का अर्थ साधारणतः विवर है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग चक्र की नाभि के बीच के विवर के लिये हुआ है जिसमें धुरा घूमता है। भारतीय गणित की परिभाषा में ख 'बिंदु' या 'शून्य' के लिये प्रयुक्त हुआ है।

आर्यभट की टीका में सूर्यदेव ने लिखा है कि ख शून्य का उपलक्षण है (खानि शून्या उपलक्षितानि)। शून्य, आकाश, व्योम, अंतरिक्ष, नभ, अनंत और पूर्ण, ये भी बिंदु के वाचक शब्द हैं। यह विचित्र है कि शून्य (=रिक्त) और पूर्ण (=भरित) दोनों एक ही अर्थ के वाचक माने गए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस वस्तु में संख्या का असंग है उसमें वस्तुतः समस्त संख्याएँ निहित रहती हैं। यह प्रतीत होता है कि शून्य का संख्या के साथ वही संबंध है जो कि संभवता का वास्तविकता के साथ है। बिंदु की एक संज्ञा अनंत है, जो यह बताती है कि बिंदु और अनंतता का तादात्म्य संबंध है। अर्थात् गणित की क्रमिक संख्याओं का आदि और अंत एक ही है। यह भाव बहुत प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। ऋग्वेद ४।१।११ में अग्नि को अपाद् और अशीर्ष बताते हुए यह कहा गया है कि उसका आदि और अंत उसी में अंतर्निहित है, अर्थात् उसके प्रारंभ और पर्यवसान के दोनों छोर उसी में छिपे हैं (अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता)। ऐतरेय ब्राह्मण ३।४।३ में कहा है कि अग्निष्टोम अग्नि का दूसरा नाम है। यह अग्निष्टोम रथ के पहिये के समान अनंत (अंत-रहित) है। यह यज्ञ 'अपूर्व' और 'अनपर' है। इसका जो आदि है वही अंत है, जो पूर्व है वही अपर है, जो अपर है वही पूर्व है (स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोमः, यथैवप्रायणं तथोदयनं ·····यदस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वमपरं तदस्य यद्वस्यापरं तद्वस्यपूर्वम्)। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १।३५ के अनुसार संवत्सर अनंत है, हेमंत और वसंत उसके दो सिरे हैं, जो एक दूसरे के साथ समेत हैं......इसी तरह साम भी अनंत है। इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि बाद के गणितशास्त्रियों ने बिंदु के लिये जो शून्य, अनंत, और पूर्ण संज्ञाओं का प्रयोग किया उनका मूल प्राचीन दार्शनिकों के विमर्श में उपलब्ध था। ख का जो अर्थ गणित में है और जो दर्शनशास्त्र में है, उन दोनों के पारस्परिक साम्य को स्पष्टता से समझ लेना चाहिए। इसके लिये कागज पर एक बिंदु की कल्पना करके उसी केंद्र से एक छोटा और एक बड़ा दो वृत्त खींचे जायँ। केंद्र-बिंदु के सिवाय जिसमें लंबाई चौड़ाई और मोटाई का अभाव है, इस चित्र में प्रत्येक भाग काल्पनिक है अर्थात् वृत्त और त्रिज्या की संख्या इच्छानुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है। प्रत्येक वृत्त एक अविच्छिन्न सम-धरातल का सूचक है। इस चित्र में बिंदु, अद्वैत अथवा संख्या से अनासक्त है। वृत्त की परिधि अनंत बिंदुओं का समवाय है जिन्हें हम संख्य कह सकते हैं। इन बिंदुओं का सर्वयोग (totality) गणित की क्रमिक संख्याओं के, जो एक से अनंतता तक चली गई हों, योग के बराबर है। परिधि और केंद्र के बीच के शून्य भाग का संख्या की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। वृत्त से परिमित क्षेत्र 'देश' का सूचक है, केंद्र के चारों ओर परिधि का परिभ्रमण 'काल' है। एक परिधि पर जो बिंदु हैं, उन्हीं के समीकरण में दूसरी परिधि पर भी बिंदु हैं। यदि हम दोनों वृत्तों की तुलना पृथ्वी और आकाश से करें तो इस समीकरण का महत्त्व समझ में आ जाता है। जैसा एक वृत्त में है वैसा ही दूसरे वृत्त में है। अर्थात जैसा 'इस' लोक में है, वैसा ही 'उस' लोक में है—यह नियम चरितार्थ होता है। यदि हम इन वृत्तों की त्रिज्या को कम करते हुए चलें तो केंद्र में पहुँचते हैं। वेद के शब्दों में यही 'समवर्तताग्रे' है। स्पष्ट है कि परिधि के समस्त बिंदुओं का समवाय केंद्र में पूर्ण रहता है। यह केंद्र शून्य बिंदु का प्रतिनिधि है और असत् और सत् का सम्मिलित रूप है। स्वयं आयाम-रहित होने से इसकी कोई सत्ता नहीं, तथा समस्त बिंदुओं की सत्ता इसी में विलीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार केंद्र और वृत्त के स्वरूप की तुलना रथचक्र में, विशेषतः सूर्य के रथ के पहिये में कल्पित की गई है। ऋग्वेद १।१५५।६; १।१६४।२, ११, १३, १४, ४८; अथर्व० १०।८।४-७; कौषीतकी ब्राह्मण २०।१; जैमिनी उपनिषद् ब्रा० १।३५; बृहदारण्यक उप० १।५।१५; श्वेताश्वतर उप० १।४; प्रश्न उप० ६।५-६ आदि स्थलों में संवत्सर को एक अजर अमर चक्र माना गया है जिसमें विश्व-भुवनों की स्थिति है। यह देवों का संतत गतिमान् चक्र है जो समस्त जीवन के उद्गम का आधार है। इस पहिये का कोई आरा आगे-पीछे नहीं कहा जा सकता। पहिये के भिन्न अवयव ये हैं—आणि या अक्षाग्र बिंदु जिसके ध्रुव आधार से धुरा टिका रहता है; ख या नाभि अर्थात् पहिये का मध्यभाग; अर या नाभि और नेमि के बीच के काष्ठ; नेमि या पवि। वस्तुतः नाभि और उसके भीतर का अक्षबिंदु या अणि कभी कभी एक ही मान लिए जाते हैं क्योंकि दोनों ही केंद्र के सूचक हैं। जिस प्रकार केंद्र में समस्त वृत्त अंतर्निहित रहता है उस प्रकार आणि में नाभि अथवा कुल चक्र अंतर्निहित माना जा सकता है। संसाररूपी चक्र की 'नाभि' या 'ख' विश्व का उद्गमस्थान है। ऋग्वेद २।२८।५ में कहा है—हे वरुण, हम तुम्हारे ऋत के ख बिंदु को प्राप्त करें (ऋध्याम ते वरुण खमृतस्य)। विश्व का मूल अव्यक्त अवस्था से व्यक्त में आता है। वैदिक परिभाषा में इसे यों कहा जाता है कि 'हे इंद्र, तुमने पत्थरों से ढके हुए (अपिहितानि अश्ना) ख प्रदेश का भेदन करके जीवन के उत्स को प्रवर्तित किया, अथवा सप्त सिंधुओं के प्रवाह को उन्मुक्त किया (ऋ० ४।२८।५; ५।३२।१)। इस प्रकार वस्तुओं की कल्पना दो अवस्थाओं में की गई है, एक 'अपिहित' [*ante principium*] और दूसरी 'जायमान' [*in principio*]। अव्यक्त दशा के लिये वैदिक शब्द बुध्न, अद्रि, पर्वत या अश्मन् आदि हैं। इन्हीं में जीवन के 'सप्त सिंधु' बंद थे जिन्हें वज्र के द्वारा इंद्र ने स्वच्छंद किया, अथवा इन्हीं में बंद गौ और अश्वों को इंद्र ने मुक्त किया। ये इंद्र के प्रशंसनीय कार्य हैं। यह 'अच्युत अद्रि' (ऋ० ६।१७।५) अनंत अश्मा ['rock of ages'] है। यही वह ध्रुव बिंदु है जहाँ सृष्टि चक्र का अक्ष पिरोया रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। विश्व के अनत अव्यक्त सागर में इस अक्ष की अनी ही 'बुध्न' या केंद्र-बिंदु है। यहाँ सृष्टि से पूर्व की अपिहित या ढकी अवस्था में [*ante principium*] अग्नि या जीवन = प्राण को गुहमान कहा गया है [गुहा सन्तं, ऋ० १।१४१।३], वह अपने आदि-अंत को छिपाए रहता है [गुहमानो अन्ता, ऋ० ४।१।११]। 'गुहमानो अन्ता' का तात्पर्य वही है जो अनन्त का है, अर्थात् अंत-रहित, निस्सीम, शाश्वत। अग्नि [जीवन] का एक सिरा दूसरे से मिला हुआ है, रथ-चक्र की भाँति वह अनंत है, उसका जो आदि है वही अंत है; इसी कारण प्राण की धारा संततवाही एवं अनुच्छिन्न है।

अध्यात्मदृष्ट्या रथचक्र का रूपक महत्त्वपूर्ण है। प्रथम शून्य अवस्था (बिंदु और परिधि के भेद से अतीत) अदिति है जो सृष्टि-संभावना की जननी है। अक्षबिंदु ख या नाभि वह अद्वैत भाव है जिसमें विश्व एकत्र रहता है [विश्वमेकम् ऋ० ३।५४।८]। सत् तत्त्व में विभिन्नता की कल्पना का मानसिक उदय यही चक्र का निर्माण है। प्रत्येक अरा नाम-रूपात्मक व्यक्ति के पृथक् आयोजन को सूचित करता है। परिधि बहुत्व के नियम या विषमत्व की प्रतिनिधि है। धर्मग्रंथों की परिभाषा के अनुसार शून्य या भेदातीत अवस्था ब्रह्म (परब्रह्म, अदिति, तमः या आपः) है। अक्षबिंदु या ध्रुव-अधिष्ठान (axle-point) ईश्वर (आदित्य अपर ब्रह्म, ज्योति) है। नाभि स्वर्ग है। नाभि की परिधि पर प्रत्येक बिंदु, जहाँ से अरे का प्रारंभ संभव है, मन [या देव, नाम] है। नेमि पृथिवी है जिसपर अनेक विषय (विश्व-रूप) दृष्टिगोचर होते हैं। चक्र का निर्माण ही यज्ञात्मक कर्म या सृष्टि है। चक्र का ध्वंस प्रलय है। अरे के अनुसार व्यक्ति की गति पहले प्रवृत्ति की ओर [केंद्र से नेमि की ओर] होती है, पीछे वही निवृत्ति की ओर जाती है और व्यक्ति मध्य केंद्र की ओर प्रवृत्त होता है। व्यक्ति-जीवन का केंद्र जब विश्व के केंद्र से मिल जाता है तभी व्यक्ति मुक्त कहा जाता है;'तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्'–यह योग-सूत्र चरितार्थ होता है।

ख, आकाश, अंतरिक्ष, शून्य, ये बिंदु के पर्याय क्यों माने गए? वस्तुतः आकाश से तात्पर्य भौतिक आकाश से नहीं है। आकाश वह वस्तु है जिसे वेदांत सूत्रों में ब्रह्म का पर्याय माना है। इस आकाश में लंबाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौड़ाई आदि की कल्पना नहीं की जा सकती; जिस प्रकार बिंदु सब आयामों से परे है वैसे ही यह आकाश या शून्य भी है, यद्यपि जैसे बिंदु की कुक्षि से वृत्त का जन्म होता है, वैसे ही इस आकाश से भौतिक आकाश उत्पन्न होता है। छांदोग्य उप० (१।६।१) में कहा है कि आकाश से ही सब भूत उत्पन्न होते हैं, आकाश में अस्त हो जाते हैं, आकाश ही उनका परायण है। यही आकाश मनुष्य के अंतर्हृदय में व्याप्त है। इसे ही आयतन, वेश्म, नीड या कोष भी कहा जाता है जिसमें हमारी सत्ता का सब आधार गुहानिहित है। बृहदारण्यक उपनिषद् (५।१) में कौरव्यायणीपुत्र का एक सुंदर वचन दिया हुआ है जिसमें इस पुराण आकाश को ब्रह्म और प्राण कहा गया है—ॐ३ खं ब्रह्म खं पुराणं वायुरं खमिति। इस परिभाषा के अनुसार ब्रह्म ख, और पूर्ण ये पर्यायात्मक हैं। इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर गणितज्ञों ने ख और पूर्ण इन दोनों को बिंदु का सूचक माना। इसी भाव को भास्कराचार्य ने बीजगणित में अनंत की परिभाषा करते हुए अक्षरशः दुहराया है—

अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते।
अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत्॥

अर्थात् वह राशि अनंत कहलाती है जिसमें हर भाग शून्य या बिंदु हो। इस राशि में चाहे कितना ही जोड़ या घटा दें, कोई विकार नहीं उत्पन्न होता, जिस तरह कि अनंत और अच्युत भगवान् में प्रलय और सृष्टि के समय अनेक भूतों के संयोग और वियोग से कोई विकार नहीं होता।

इससे यह सूचित होता है कि भारतीय आचार्यों द्वारा प्रयुक्त गणित की अनेक संज्ञाएँ गणित-विज्ञान के आविर्भाव से पूर्व ही परा विद्या के क्षेत्र में स्वीकृत थीं। अथवा इन संज्ञाओं के आधार से ही गणित की संज्ञाओं का जान बूझकर विकास किया गया जैसा कि भास्कराचार्य के ऊपर लिखे हुए उद्धरण से प्रकट होता है। यह बात भारतीय दर्शन की विकास-परंपरा के भी सर्वथा अनुकूल है। यहाँ ज्ञान के सार्वभौम विश्वव्यापी स्वरूप का अनुभव पहले किया गया, और विशेष परिस्थितियों के लिये उसका उपयोग बाद में हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की एकता

उपर्युक्त विषय पर सर यदुनाथ सरकार का एक विशेष महत्त्वपूर्ण लेख 'विशाल-भारत' के भाग ३०, अंक ६ में प्रकाशित हुआ है। वह यहाँ संगृहीत है।—क्र।

क्या भारत की कोई एकता है? क्या भारत में ऐसे लोग हैं, जो इस या उस प्रांत के भारतीयों से विशिष्ट हों? हमारे विचारों में यह प्रश्न आज सर्वोपरि है और हमारे देश के किसी भी समय के चिंतनशील लोगों के सामने से यह कभी नजर-अंदाज नहीं किया गया। इसका कोई सीधा-सादा-सा उत्तर दे देने के बजाय यह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और लाभदायक होगा कि इस संबंध में कोई मत स्थिर करने से पूर्व हम इसके सभी पहलुओं का विवेचन कर लें।

एक राष्ट्र के लोगों की एकता के तीन प्रमुख पहलू हैं—(१) भौगोलिक, (२) ऐतिहासिक और ३) सांस्कृतिक। ये तीनों पृथक् हैं और इनका आधार भी पृथक् है; किंतु आज संसार के जितने भी सुदृढ़ राष्ट्र हैं, उनमें हम इनको सम्मिलित रूप में ही पाते हैं। इन्हीं की पूर्णता 'राष्ट्रीयता'—अर्थात् पूर्ण राजनीतिक एकता—है।

आरंभ में ही हम यह कह देना चाहते हैं कि जाति और धर्म राष्ट्रीय एकता के प्रमुख अथवा सुदृढ़ आधार नहीं हैं, जैसा कि आम तौर पर खयाल किया जाता है। आज की दुनिया में जाति या रक्त की विशुद्धता एक किंवदंती-मात्र है और धर्म—जिसका कट्टरता से पालन किया जाता है—ऐक्य स्थापित करने के बजाय विभाजित करने की शक्ति बन गया है। नृतत्त्वज्ञ इस संबंध में एकमत हैं कि आज की प्रत्येक जाति कई विविध प्राथमिक जातियों के मिश्रण का ही परिणाम है, यथा—आज के एक ही जाति के मनुष्यों में आर्य और नीग्रो दोनों का रक्त है। संस्कृत-साहित्य के आर्यावर्त्त अथवा पंचनद का विशिष्ट ब्राह्मण भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसकी नसों में वैदिक-काल में भारत पर चढ़ाई करनेवालों का ही विशुद्ध रक्त है। अन्य प्रदेशों में जातियों का यह मिश्रण अधिक हुआ है। लोगों के वर्ण, त्वचा, चेहरे-मोहरे आदि—जो नृतत्त्व के मुख्य तथ्य हैं—से साबित होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि बंगाल की खाड़ी के दोनों तटों पर निवास करनेवाले तथाकथित द्रविड़ों एवं मंगोलों में भी नीग्रो-रक्त के मिश्रणवाले लोग पाए गए हैं। आजकल के यूरोपवासियों के पूर्वजों के रक्त में भी नीग्रो-अंश—आधुनिक अमरीका के नीग्रो नहीं—पाया गया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जाति की एकता उसकी विशुद्धता पर निर्भर होनी चाहिए; पर विज्ञान की तीव्र दृष्टि में यह एक भ्रांति-मात्र है। रोम के प्रसिद्ध इतिहासकार तेसीतस ने २००० वर्ष पूर्व के जिन जर्मनों का उल्लेख किया है, आज के प्रशन और आस्ट्रियन उसी जाति के नहीं हैं। इसी प्रकार आस्ट्रियन और प्रशन भी—जो जर्मन कहलाते हैं और जर्मन भाषा ही बोलते हैं—एक ही जाति के नहीं हैं। कुछ वर्ष पूर्व लंदन के 'टाइम्स' ने लिखा था कि स्कैंडीनेवियन और बाल्टिक सागर के दक्षिणी किनारे पर बसी स्लाव जातियों के मिश्रण से ही प्रशन जाति का आविर्भाव हुआ, जिसने आगे चलकर आश्चर्यजनक क्षमता प्राप्त कर ली। इसके मुकाबले में आस्ट्रियन लोग—जो अपनी नसों में जर्मन रक्त होने का दावा करते हैं—बड़े शांति-प्रिय, आरामतलब और बुद्धिजीवी हैं।

अब धर्म को लीजिए। आदिम युग में, और एक सीमित क्षेत्र में, धर्म ने लोगों को ऐक्य-सूत्र में अवश्य बाँधा है; पर राजनीतिक एकता का आधार होने के कारण उसने विभिन्न मतों के लोगों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित होने से रोका भी है। उदाहरण के लिये यूनान के प्राचीन नगर-गणराज्यों को लीजिए, जिनमें विदेशियों और हेलोटों (आदिम-युगीन कबीलेवालों) को नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। भारत ही को लीजिए। यदि हम धर्म के अनुसार ही इसका विभाजन करें, तो क्या हिंदुस्तान और पाकिस्तान भर से ही काम चल जायगा? इन दो विभागों में से आप श्री जिन्ना के उस नाती को कहाँ स्थान देंगे, जो कि पारसी लखपती को ब्याही गई उनकी लड़की से पैदा होगा? अतः इस सिद्धांत के अनुसार तो आपको एक 'मजूसिस्तान' और बनाना होगा, जहाँ कि पारसियों का असली घर बन सके। पर अभी आपको और भी आगे बढ़ना होगा। डा० खाँ साहब ने अपनी जो लड़की एक ईसाई अफसर को ब्याही है, उससे उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेवाले उनके नाती के लिये आपको एक 'नजीरिस्तान' भी बनाना होगा। इस प्रकार राष्ट्र को धर्म के अधीन बनाने से कितने असंख्य विभाजन और सम्मिलन करने पड़ेंगे, यह सोचकर, गणित में कमजोर होने के कारण, मेरी तो कल्पना ही लुंठित हो जाती है।

इतिहास हमें बताता है कि धर्म बहुधा एक राष्ट्रीयता-विरोधी शक्ति रहा है। राज्य के नियंत्रण के अभाव में इसने एक देश के लोगों को दो लड़ाकू दलों में विभाजित कर दिया है, जिनमें से प्रत्येक अपने देश के विधर्मियों के दमन के लिये अपने विदेशी सहधर्मियों की सहायता का इच्छुक रहा है। सूत्र-रूप में धर्म एक अंतर्राष्ट्रीय शक्ति है, अतएव राजनीति में 'राष्ट्रीयता' से जो अभिप्राय है, उसके सर्वथा प्रतिकूल है। यूरोप के सुधार- युग में धर्म ने सभी राष्ट्रीय सीमा-रेखाओं को नष्ट कर डाला और प्रत्येक देश को लड़ाकू धार्मिक दलों में विभाजित कर दिया। फ्रांसीसी कैथोलिकों ने स्पेनिश कैथोलिकों के साथ 'पवित्र संघ' (Holy League) स्थापित किया—जो कि फ्रांसीसी राजतंत्र के वंश-परंपरागत शत्रु थे—और अपने ही देशभाइयों का खून बहाने के लिये उनको निमंत्रित किया। स्काटलैंड के प्रोटेस्टेंटों ने अपनी न्यायोचित राष्ट्रीय महारानी मेरी स्टुअर्ट की कैथोलिक सरकार को खत्म करने के लिये इंग्लैंड के उन प्रोटेस्टेंटों की सहायता ली, जिनके विरुद्ध उनके पूर्वज सदियों तक लड़ते रहे थे। फ्रांस में धर्म-युद्धों के इस युग में एक तीसरे दल का आविर्भाव हुआ, जिसने आधुनिक विचार की कल्पना की और फ्रांस को विनाश तथा विभाजन से बचाया। ये लोग 'पोलितिक्स' (Politiques) नाम से पुकारे जाने लगे—अर्थात् वे लोग, जिन्होंने राष्ट्र को धर्म से भी ऊपर माना और नवारे के हेनरी का साथ दिया। इवरी के युद्ध में राष्ट्र-विरोधी कैथलिक-संघ को हेनरी चतुर्थ के सामने बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी। इसी राजा की मनोभावना ने फ्रांस को बचाया और उसे आधुनिक रूप दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म राष्ट्रीयता के सर्वथा प्रतिकूल है और उसके द्वारा देशभक्ति असंभव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम भारत की एकता के संबंध में विचार करेंगे। पहले उसके भौगोलिक पहलू को ही लीजिए। यदि हम भारत के प्राकृतिक मानचित्र को देखें या स्कूल के किसी सस्ते एटलस में भारत के ऐसे नक्शे को देखें, जिसमें कि ऊँचा भाग कागज पर रंग द्वारा बतलाया गया है, तो हमें पता चलेगा कि भारत शेष एशिया से एकदम पृथक् है। उत्तर, उत्तर-पश्चिम और पूर्व में भारत अन्य देशों से संसार में सब से ऊँचे पहाड़ों या सब से घने जंगलों या सबसे ऊसर पहाड़ियों द्वारा पृथक् किया हुआ है। इसके पूर्वी और पश्चिमी किनारे गहरे समुद्र द्वारा सुरक्षित हैं। किंतु भीतर से कोई भी दुर्गम पहाड़ या तीव्रगामी सरिता इस स्वतंत्र भूखंड के एक प्रांत को दूसरे से पृथक् नहीं करती। प्राकृतिक अवरोधों पर आधुनिक विज्ञान की विजय होने तथा शीघ्रगामी और सुगम यातायात के साधन प्राप्त होने से पूर्व भी अक्सर यात्री, छात्र, धर्म-प्रचारक, विजेता आदि भारत के एक भाग से सुरक्षापूर्वक दूसरे भाग में आया-जाया करते थे। यह हमारा इतिहास बतलाता है। भारत के प्राकृतिक भाग दिखलानेवाले किसी भी रंगीन मानचित्र में हम देखते हैं कि हरे रंग का एक क्षेत्र बंगाल की खाड़ी से अफगानिस्तान के दर्रों की तराई तक और दक्षिण में उड़ीसा तथा मद्रास के समुद्र-तटों तक फैला हुआ है, जो कहीं भी समुद्र से १००० फुट से अधिक ऊँचा नहीं है। थल-मार्ग से कलकत्ता लाहौर से १२०० मील दूर है; पर दोनों की ऊँचाई में केवल ९०० फुट का अंतर है। इसका मतलब यह हुआ कि एक मील पश्चिम की ओर बढ़ने पर आप केवल ६ इंच ऊपर की ओर जाते हैं। अतः ऐसे क्षेत्र को फौजी दृष्टिकोण से भी विभाजित कैसे किया जा सकता है।

कोंकण का तटवर्ती मैदान मूल महाराष्ट्र से, जिसे 'देश' कहते हैं, सह्याद्रि पर्वतमाला द्वारा अलग किया हुआ है; पर यह पर्वतमाला इतनी ऊँची नहीं है कि दोनों क्षेत्रों में यातायात या आदान-प्रदान का संबंध ही न रह सके। कोंकण के हिंदू प्राचीन काल से मराठी बोलते हैं (यह मराठी की एक स्थानीय बोली है, जिसे महाराष्ट्रवासी आसानी से समझ लेते हैं) और सह्याद्रि पर्वतमाला के दोनों ओर एक ही धर्म एवं एक-से ही रीति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिवाज प्रचलित हैं। इससे पता चलता है कि आधुनिक रेलों और मोटरों द्वारा विज्ञान ने प्रकृति पर जो विजय प्राप्त की है, उससे पहले भी यह पर्वतमाला दुर्लंघ्य नहीं थी। एक प्राचीन किंवदंती है कि विंध्याचल पहाड़ ने अगस्त्य मुनि को दक्षिण में जाने देने के लिये अपना मस्तक झुका लिया था, जो उसने मार्ग-अवरोध के लिये अभी तक भी ऊपर नहीं उठाया है। काबुल में मुसलमानों द्वारा विजय प्राप्त करने से पूर्व हिंदू-राजतंत्र था। कंदहार में बौद्ध गुफाएँ पाई गई हैं और अफगानिस्तान के केंद्रीय एवं उत्तरी भागों में बुद्ध की मूर्तियाँ तथा इस मत को माननेवालों के कई अन्य चिह्न पाए गए हैं। इन तथ्यों से यह धारणा निराधार साबित होती है कि अँगरेजों के आने से पूर्व प्राकृतिक अवरोधों के कारण भारतीय प्रांत एक-दूसरे से बिल्कुल अलग थे। अभी हाल ही में एक चीनी जनरल ने कहा था कि "उत्तरी भारत में जापानी टैंक कलकत्ते से लाहौर तक उतनी ही आसानी से दौड़ सकते हैं, जितनी आसानी से बिलियर्ड की हरी मेज पर हाथीदाँत की गेंद दौड़ती है।" किंतु न मालूम आज कितने राजनीतिक विभाग इन दोनों विशाल नगरों को एक दूसरे से अलग किए हुए हैं!

यह सच है कि भारत के कुछ प्रांतों की आबहवा में बड़ा अंतर है; किंतु इससे उनके निवासियों का जीवन एकदम भिन्न नहीं हो गया है। १९४० में दिसंबर के मध्य में मुझे मद्रास प्रेसिडेंसी के दक्षिण में स्थित तंजोर स्थान में ५ दिन बिताने पड़े थे। वहाँ उन दिनों भी गर्मी इतनी अधिक थी कि मुझे बिना कमीज पहने ही सोना पड़ा। यहाँ से मद्रास और बम्बई में रुके बिना ही मैं अहमदाबाद (गुजरात) आ गया। यहाँ इतनी अधिक सर्दी थी कि मेरे खूब गरम कपड़े पहनने के बावजूद प्रातःकाल मेरे टौंसिल सूज गए और नकसीर बहने लगी। पर इतने फासले पर रहनेवाले दोनों स्थानों के लोगों का भोजन लगभग एक-सा ही (शाकाहार, जिसमें उत्तर में आकर चावल के साथ गेहूँ की रोटी और जुड़ गई थी) और भोजन बनाने तथा परोसने आदि का ढंग भी लगभग एक-सा ही था। मैंने दोनों स्थानों में कोई खास भेद नहीं पाया। पर स्मरण रहे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं यहाँ पुराने विचारों के हिंदुओं के घरों के भोजन का ही जिक्र कर रहा हूँ, रेलवे-होटलों में मिलनेवाले स्टैंडर्ड अँगरेजी खानों का नहीं। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय प्रांतों के भौगोलिक पृथक्करण की बात अतिशयोक्तिपूर्ण है।

प्राचीन भारत के संस्कृत विद्वानों ने शास्त्रीय ज्ञान की खोज में काशी और प्रयाग, कांची और पैठन, नासिक और शृंगेरी तथा मथुरा और बद्री-केदार आदि की यात्रा कर भारत के भौगोलिक विभाजन को उस समय बहुत कुछ नगण्य बना दिया, जब कि रेलों और पक्की सड़कों की कल्पना भी नहीं की गई थी। सुदूर अतीत में, जब कि भारत में एक भी मुसलमान नहीं आया था, धर्म-प्रचारकों ने दिग्विजय करने के लिये कुमारी अंतरीप से हिमालय तक की यात्राएँ की हैं। भारत में पैदा होने और पूर्णत्व प्राप्त करनेवाले बौद्धमत के प्रचारक न केवल भारत के सभी भागों में, बल्कि चीन, तिब्बत, बर्मा, सीलोन और हिंदी-चीन तक गए हैं। इससे साबित होता है कि कम से कम उस जमाने में भारत में सांस्कृतिक एकता थी। क्या हम मौजूदा प्रकाशपूर्ण शताब्दी में इस तरह की मस्तिष्क की उदारता में पिछड़ नहीं गए हैं ?

इसके बाद ऐतिहासिक एकता का स्थान है—अर्थात् वह एकता, जो एक-से विचार और जीवन तथा एक ही शासन और एक-से राजनीतिक अनुभवों से प्राप्त होती है। केवल स्वेच्छाचारी एकतंत्र से ही लोगों को वास्तविक एकता के सूत्र में नहीं बाँधा जा सकता—कम से कम ऐसी एकता स्वाभाविक और स्थायी नहीं हो सकती। सबसे अच्छी ऐतिहासिक एकता उस समय होती है, जब कि किसी देश के लोग स्वयं एक शासन का संचालन करें और उसके हानि-लाभों को सहें ; क्योंकि वह शासन उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम है। शासन की यह एकता भारत के अधिकांश भागों में मुगल-साम्राज्य द्वारा स्थापित हुई, जिसकी देन थे—(१) साम्राज्य के सब सूबों में एक-सा शासन, (२) एक राज-भाषा, (३) एक से सिक्के और तौल के बाँट, (४) उच्च अफसरों की एक अखिल-भारतीय व्यवस्था, जिसके अंतर्गत हर तीसरे या चौथे वर्ष उनका एक प्रांत से दूसरे प्रांत को तबादला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ करता था,* और (५) सेनाओं का एक प्रांत से दूसरे को प्रयाण तथा केंद्रीय राजधानी द्वारा विभिन्न प्रांतों के नगरों में निरीक्षकों की नियुक्ति।

मुगल-कालीन शासन की इस एकता ने भारतीय भू-खंड के लगभग तीन-चौथाई भाग में परस्पर आवागमन और व्यापार को काफी उत्तेजन दिया। दिल्ली के शाही दरबार ने भी भारत में सांस्कृतिक एवं कलात्मक एकता स्थापित करने में बहुत योग दिया। समाज के उच्च वर्गों में—उदाहरण के लिये सरकारी अफसरों में—उस समय फारसी में पत्र-व्यवहार होता था और सर्वसाधारण की आम भाषा 'जबान-ए-हिंदवी'—आधुनिक उर्दू या हिंदुस्तानी—बन गई थी, जिसने आगे चलकर (१९वीं शताब्दी में) उत्तरी भारत की सांस्कृतिक और राजकीय भाषा के रूप में फारसी का स्थान ले लिया।

किंतु इन दोनों से भी एकता की प्रबल शक्ति है संस्कृति। राजनीतिक असंबद्धता, भाषा और रीति-रिवाजों के भेदों के बावजूद पिछले २००० वर्षों के हिंदू और बौद्ध शासन ने इस विशाल देश के सभी प्रांतों के साहित्य और विचारों पर संस्कृति की एक सी गहरी छाप लगा दी है। हिंदू-युग में समूचे भारत में—जैसा कि आज भी समूचे भारत के हिंदुओं में है—धर्म, दर्शन, साहित्य, परंपराओं एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण में एक मौलिक एकता रही है। कुछ शताब्दी और आगे आने पर हम देखते हैं कि एक लंबे अर्से से भारत में रहनेवाले विदेशियों—जो यहीं का पानी पीते हैं, यहीं का अन्न खाते हैं, यहीं की धूप में पलते हैं और दैनिक जीवन में एक से ही शासन के अधीन हैं—और भारतीयों में शारीरिक और रहन-सहन की एकता भी काफी आ गई मालूम होती है। कई शताब्दियों तक भारत

---

* उदाहरण के लिये १६६४ में शाइस्ता खाँ को पूना से तब्दीलकर ढाका का गवर्नर बनाया गया। पाठक जरा खराब सड़कों के उस जमाने में इन दोनों स्थानों के जबर्दस्त फासले की कल्पना करें।—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रह चुकनेवाले प्रवासी भारतीय मुसलमान कई आवश्यक बातों में एशिया के अन्य भागों—जैसे अरब और ईरान—के मुसलमानों से बिल्कुल भिन्न हो गए हैं।

मुसलमानों के शासन-काल में भारत में चला सूफी-आंदोलन अधिक संस्कृत एवं भक्त हिंदू और मुसलमान दोनों को एक ही मंच पर ले आया। निम्न जातियों के—जो भारत की आबादी का बहुत बड़ा भाग हैं—आध्यात्मिक गुरु मध्य-युगीन संत-कवि कबीर, नानक, चैतन्य आदि ही थे, जिनके हिंदू और मुसलमान दोनों ही बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी हुए। इससे पुराने मतों की विशिष्टता और कट्टरपन बहुत कुछ शिथिल हुए। धार्मिक कट्टरता का स्थान सच्ची भक्ति ने ले लिया, जिसने राजा और प्रजा-जनों को एक सूत्र में पिरो दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के भारतवासी यद्यपि मिश्रित जातियों की संतान हैं, किंतु उन सब पर भारतीयता की छाप लग चुकी है, और वे सभी एक-सी संस्कृति, एक-सी परंपरा, एक-से विचार और एक-से साहित्य के निर्माण में ही योग दे रहे हैं। सर हरबर्ट रिसले तक को भी—जो भारतीयों के एकराष्ट्रीयता के दावे को बड़े संदेह की निगाह से देखते हैं—यह स्वीकार करना पड़ा है कि "किसी भी निरीक्षक को भारत में जो अनेक प्राकृतिक, सामाजिक, भाषा, रीति-रिवाज और धर्म-संबंधी विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं, उनके बावजूद हिमालय से कुमारी अंतरीप तक भारतीयों के जीवन में एक तरह की एकता भी देखी जा सकती है। यथार्थ में एक भारतीय स्वभाव, एक आम भारतीय व्यक्तित्व है, जिसका हम उसके अवयवों के रूप में विश्लेषण नहीं कर सकते।"

पर भारत की एकता की इन प्रबल शक्तियों द्वारा उसमें राजनीतिक एकता भी स्थापित हो सकेगी या नहीं, यह कहना हमारे अधिकार के बाहर की बात है। हम तो इसके लिये केवल दुआ ही कर सकते हैं।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचांग-शोध

सभा की पंचांग-शोध-समिति ने २१-११-४२ ई० के अपने एक निश्चय के अनुसार शोध के संबंध में निम्नलिखित प्रश्न समिति के सदस्यों तथा अन्य ज्योतिष-प्रेमी विद्वानों के मत जानने लिये उनके समक्ष उपस्थित किए थे—

पंचांग-शोधन का स्वरूप-निर्णय अर्थात् पंचांग में किस प्रकार के परिवर्तन हों—

(क) पंचांग दृश्य-गणनानुसार बनना चाहिए या

(ख) प्राचीन गणनानुसार ?

(ग) यदि प्राचीन गणनानुसार बने तो किस सिद्धांत के अनुसार और क्यों या

(घ) यदि आपके मतानुसार किसी उपायांतर का अवलंबन करना ठीक हो तो उसका क्या स्वरूप हो ?

(ङ) यदि दृश्य-गणनानुसार पंचांग बनेंगे तो उनसे व्रतादिक धार्मिक कृत्यों के संबंध में धर्मशास्त्रियों की दृष्टि से जो बाधाएँ उपस्थित होंगी, उनके निराकरण के लिये आपकी सम्मति में क्या उपाय होना चाहिए ?

समिति के एक सदस्य डा० गोरखप्रसाद जी ने अपने सुस्पष्ट उत्तर के साथ अपना महत्त्वपूर्ण मत फरवरी '४३ की 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया है। वह यहाँ संगृहीत है। —कृ।

एक बरसात से दूसरी बरसात तक के समय को वर्ष कहते हैं। वर्ष और वर्षा में घनिष्ठ संबंध है; एक शब्द दूसरे से निकला है। अब्द, वत्सर, संवत्सर, शरद् ये सब पर्यायवाची शब्द भी ऋतुओं से संबंध रखते हैं। अँगरेजी में भी ऋतुओं से वर्ष-मान बताने की प्रथा प्रचलित है; उदाहरणतः, बोलते हैं 'ए चाइल्ड आफ टेन समर्स'।

एक बरसात से दूसरी बरसात तक या एक शरद् ऋतु से दूसरी शरद् ऋतु तक के वर्ष को सायन वर्ष (ट्रापिकल इयर) कहते हैं। सूक्ष्म परिभाषा यों दी जा सकती है कि सूर्य के एक उत्तरायण-आरंभ से दूसरे उत्तरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यण-आरंभ तक के काल को सायन वर्ष कहते हैं। (सूर्य के उत्तर की ओर चलने को उत्तरायण कहते हैं।)

परंतु वर्ष की नाप दूसरे प्रकार से भी हो सकती है। तुलसीदास ने लिखा है—"उदित अगस्त्य पंथ-जल सोखा"। इस प्रकार अगस्त्य या अन्य किसी तारे के एक उदय से दूसरे उदय तक के काल को भी हम वर्ष कह सकते हैं। इस वर्ष को ज्योतिष में नाक्षत्र वर्ष (सिडेरियल इयर) कहते हैं। सूक्ष्म परिभाषा यों दी जा सकती है कि सूर्य के किसी तारे से चलकर, एक चक्कर लगाकर, उसी तारे तक फिर पहुँच जाने के काल को एक नाक्षत्र वर्ष कहते हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि नाक्षत्र वर्ष और सायन वर्ष ये दोनों बराबर नहीं होते। ये मनुष्य की गणना के कारण भिन्न नहीं हैं; सूर्य की गति ही ऐसी है कि दोनों में अंतर है। अंतर कम है (कुल २० मिनट), परंतु यदि बराबर एक ही प्रकार के वर्ष का व्यवहार करते रहें तो प्रतिवर्ष २० मिनट का अंतर पड़ते पड़ते एक हजार वर्षों में १४ दिन का अंतर पड़ जायगा।

अब प्रश्न यह है कि प्रतिदिन के व्यवहार के लिये हम सायन वर्ष लें कि नाक्षत्र वर्ष। यदि हम सायन वर्ष लेते हैं तो केवल यही एक असुविधा रहती है कि धीरे धीरे वर्षारंभ के दिन सूर्य के निकट पड़नेवाले तारे बदलते जायँगे; अर्थात् सूर्य किस नक्षत्र में है इसमें धीरे धीरे गड़बड़ी पड़ती जायगी। उदाहरणतः, यदि आज हम मकर-संक्रांति से वर्ष आरंभ करें तो सायन-वर्ष के व्यवहार करते रहने से आज से कोई दो हजार वर्षों में धनु की संक्रांति से वर्ष का आरंभ होने लगेगा।

परंतु यदि हम नाक्षत्र वर्ष लें तो वर्ष के हिसाब से ऋतुओं में धीरे धीरे गड़बड़ हो जायगा। उदाहरणतः, यदि हम आज ग्रीष्म ऋतु से वर्ष का आरंभ करें तो आज से दो हजार वर्ष में वर्ष का आरंभ शुरू बरसात में पड़ेगा। यदि इस समय सावन-भादों में पानी बरसता है तो आज से कोई ६००० वर्ष में सावन-भादों के महीने उस समय पड़ेंगे जब शरद् ऋतु रहेगी और कड़ाके की सरदी पड़ती रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदूर प्राचीन काल में जब ज्योतिष का ज्ञान इतना अच्छा नहीं था जितना पीछे हुआ, लोग यही नहीं जानते थे कि सायन और नाक्षत्र वर्ष में कोई अंतर है। इसलिये कभी वे बरसात से और कभी तारे से वर्ष जोड़ा करते थे। भारतीय ज्योतिषियों ने वर्ष का जो मान अपनाया है वह न तो ठीक सायन है और न ठीक नाक्षत्र; क्योंकि तब समय को ठीक ठीक नापने का अच्छा साधन नहीं था। परंतु उनका वर्ष का मान लगभग नाक्षत्र मान है।

प्रश्न अब यह है कि वर्षमान के चुनाव में हम नक्षत्रों का त्याग करें कि ऋतुओं का। साधारण पुरुष चाहे वह ज्योतिष न भी जानता हो, कम से कम इतना तो कह ही सकता है कि उसे यह पसंद है कि सावन-भादों सदा बरसात में पड़ा करें या यह कि वे धीरे धीरे जाड़े की ओर खिसकते जायँ। जब से भारतीय ज्योतिष में नाक्षत्र और सायन वर्षों पर विचार हो रहा है (अर्थात् आज से कोई डेढ़ हजार वर्ष पहले से) अब तक लगभग २२ दिन का अंतर पड़ चुका है। वस्तुतः इन दिनों भादों में वह ऋतु रहती है जो कालिदास के समय कुवार में रहा करती थी। खिचड़ी का त्योहार पहले उस समय मनाया जाता था जिस दिन दिन-मान सब से छोटा होता था (अर्थात् जिस दिन से उत्तरायण का प्रारंभ होता था); अब यह कोई २२ दिन पीछे पड़ता है।

मेरी राय में सायन-वर्ष को ही अपनाना चाहिए, क्योंकि मनुष्य के जीवन के लिये नक्षत्रों की अपेक्षा ऋतुओं का कहीं अधिक महत्त्व है*। भारतवर्ष को छोड़कर सभ्य संसार में अन्यत्र सभी जगह सायन-वर्ष ही प्रचलित है।

---

* श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी की यह धारणा (विश्वभारती पत्रिका, अप्रैल १६४२) कि निरयन-गणना रखने से सुगमता होती है, नितांत भ्रम है। क्रियात्मक ज्योतिष में (समय, स्थिति आदि ज्ञात करने में) सायन नक्षत्र-स्थानों की ही आवश्यकता पड़ती है।—गो० प्र०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्य गणना

एक प्रश्न और है, वह है दृश्य और अदृश्य गणना का। ग्रहणों की गणना प्राचीन ढंग से करने पर घंटे, दो घंटे का अंतर पड़ जाता है। यदि प्राचीन गणना के अनुसार उत्तर निकला कि आज १ बजे दिन में सूर्य-ग्रहण का आरंभ होगा और आधुनिक गणना के अनुसार उत्तर निकला कि आज २॥ बजे ग्रहण का आरंभ होगा तो अनुभव से देखा गया है कि आधुनिक गणित ही सर्वदा सत्य उतरता है। कारण प्रत्यक्ष है। प्राचीन गणना-प्रणाली इतनी सूक्ष्म नहीं थी कि आज लगभग डेढ़ हजार वर्ष के बाद उसी रेट से, उसी पुराने मान से, गणना की जाय और अंतर न पड़े। इसमें कोई लज्जा की बात नहीं है। यदि हमारे पास कोई ऐसी घड़ी हो जो बराबर डेढ़ हजार वर्ष तक चलती रहे और उसकी चाल में डेढ़ हजार वर्ष में कुल दो घंटे का अंतर पड़े तो यह भला लज्जा की बात होगी? यह तो अत्यंत अद्भुत घड़ी होगी। एक वर्ष चलते रहने पर ऐसी घड़ी में कुल सवा सेकेंड का अंतर पड़ेगा! हमें गर्व होना चाहिए कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने ऐसी सच्ची गणना-प्रणाली बतलाई कि आज डेढ़ हजार वर्ष के बाद भी कुल घंटे दो घंटे का ही अंतर पड़ रहा है। हमें गर्व होना चाहिए कि भारतवर्ष में ज्योतिष उस समय भी अत्यंत उच्च स्थान पर पहुँच गया था जब योरप के लोग जंगली थे।

परंतु यह कोई गर्व की बात नहीं है कि हम अपने प्राचीन आचार्यों से आगे न बढ़ सकें—हम आज भी उसी लकीर के फकीर बने रहें। धर्म-शास्त्रियों ने न जाने कैसे यह निश्चय किया है कि प्राचीन प्रणाली को छोड़कर आधुनिक प्रणाली के अपनाने में धर्म का ह्रास होता है। परंतु सब कुछ करने पर भी साधारण जनता इस बात को स्वीकार नहीं कर सकी है कि ग्रहण के लिये स्नान १ बजे करना उचित है जब उसकी आँखों को ग्रहण २॥ बजे दिखलाई पड़ता है। इस संकट से बचने के लिये धर्मशास्त्रियों ने एक युक्ति अंततः सोच ही ली है। वे कहते हैं कि ग्रहण दृश्य घटना है, इसलिये इसकी गणना आधुनिक (पाश्चात्य) रीति से होनी चाहिए*; परंतु

* इसी को दृश्य-गणना कहते हैं।—गो० प्र०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि आदि घटनाएँ अदृश्य हैं, उनकी गणना प्राचीन प्रणाली से होनी चाहिए।

मेरी तुच्छ बुद्धि में तो यह बात वैसी ही है जैसे किसी नगर में बड़े बड़े चौराहों पर पुलिसवाले यह देखने के लिये खड़े रहें कि कोई व्यक्ति रात को बिना लैंप लगाए बाइसिकिल पर तो नहीं चलता, और धर्मशास्त्री कहे कि भाई, जहाँ पुलिसवाले खड़े हों वहाँ साइकिल से उतरकर चलो, अन्यत्र साइकिल पर चढ़कर चला करो।

तिथियों में एक तिथि पूर्णिमा भी है। स्कूल के भी विद्यार्थी जानते हैं कि चंद्रग्रहण का मध्य उस क्षण पर होता है जब ठीक पूर्णिमा होती है*। इसलिये यदि तिथियों की गणना प्राचीन रीति से की जाय तो चंद्र-ग्रहण के समय पूर्णिमा की गणना की त्रुटि पकड़ी जा सकती है। इसी प्रकार सूर्य-ग्रहण के समय अमावास्या की गणना की त्रुटि पकड़ी जा सकती है। इसलिये यदि सच पूछा जाय तो दृश्य और अदृश्य घटनाओं में कोई मौलिक अंतर नहीं है; केवल ग्रहण के अवसर वे चौराहे हैं जहाँ जनता गलती पकड़ सकती है। यदि ज्योतिष में आधुनिक रीतियों का अपनाना अधर्म है तो धर्मशास्त्रियों की यह व्यवस्था कि ग्रहणों की गणना आधुनिक प्रणाली से की जाय, क्या उचित है?

मेरी सम्मति

मेरी राय में आधुनिक रीतियों से गणना करना अधर्म नहीं है। गणित न भारतीयों का है, न पाश्चात्यों का। उसमें कोई छूत नहीं लगी है। यह कहना कि पूर्णिमा की परिभाषा ही यही है कि पूर्णिमा वह क्षण है जो अमुक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार गणना करने पर निकले, भ्रम है। यदि यह परिभाषा दी जाय तो भविष्य में क्या होगा? आज घंटे दो घंटे का अंतर पड़ रहा है। कुछ हजार वर्षों में दिन, दो दिन का अंतर पड़ने

* सूक्ष्म गणना के अनुसार इसमें कुछ मिनटों का अंतर हो सकता है, परंतु इतने की यहाँ उपेक्षा की जा सकती है।—गो० प्र०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगेगा और तब हमारे धर्मशास्त्रियों के अनुसार बने पंचांगों में पूर्णिमा उस समय लिखी रहेगी जिस समय आकाश में स्पष्ट रूप से अपूर्ण चंद्रमा वर्त्तमान रहेगा; अमावास्या पंचांगों में तब मिलेगी जब आकाश में चंद्र-कला चमकती रहेगी ! तब जनता स्वयं पंचांगों को न मानेगी और तिथियों की भी वही दशा होगी जो इस समय ग्रहणों की हुई है; उस समय झख मारकर व्यवस्था देनी पड़ेगी कि तिथियों की गणना भी दृश्य-गणनानुसार ही हुआ करे। अभी अंतर केवल घंटे दो घंटे का ही है; इसलिये अभी जनता धोखे में रखी जा सकती है। अंतर के पर्याप्त बढ़ जाने पर प्रणाली बदलनी ही पड़ेगी। तब अभी से गणना शुद्ध क्यों न कर ली जाय ?

भूतकाल में भी ज्योतिष में समय समय पर सुधार होता रहा है। वराहमिहिर के समय के सूर्य-सिद्धांत और पीछे के सूर्य-सिद्धांत में बहुत अंतर है। फिर, हमारे सभी प्राचीन ग्रंथों में वर्ष इत्यादि के मान एक ही नहीं हैं। यदि इनमें से कोई एक ही मान्य समझा जाय तो क्यों ?

मैं तो सारे पंचांग की गणना आधुनिक प्रणाली से करने का पक्षपाती हूँ। इसमें हमारे प्राचीन ग्रंथों की कोई मानहानि नहीं है, साथ ही हम लाभ में रहेंगे—हम अपने धर्म-कर्म बिलकुल ठीक समय पर कर सकेंगे।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

हिंदुत्व—लेखक श्री रामदास गौड़; प्रकाशक श्री बाबू शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी; पृष्ठ-संख्या ८५८; मू० १०)

हिंदुत्व की परिभाषा करना कठिन काम है। ईसाई या इस्लाम जैसे प्रवर्तक धर्मों का लक्षण बतलाना आसान है। साधारणतः ईसा को ईश्वर का दूत या पुत्र और बाइबिल को अपनी धर्मपुस्तक मानने से कोइ ईसाई कहला सकता है। इसी प्रकार हजरत मुहम्मद को ईश्वर का दूत और कुरान को अपना धर्मग्रंथ मानने से कोई मुसलमान समझा जा सकता है। परिभाषा का यह प्रकार हिंदू धर्म के बारे में लागू नहीं है। कारण, हिंदू धर्म किसी एक प्रवर्तक का चलाया हुआ नहीं है। यह पुरातन तथा परंपरागत धर्म है, जिसमें समय-समय पर, सभ्यता की विभिन्न अवस्थाओं में, विविध मानव-श्रेणियों के धार्मिक विश्वासों, सामाजिक संस्थाओं और रीति-रिवाजों का समावेश तथा समन्वय हुआ है। यह कोई संप्रदाय-मजहब नहीं, किंतु एक उदार सांस्कृतिक संगठन है जिसमें विविधताओं के लिये काफी स्थान है। फिर भी आचार्यों ने अनेकता तथा विविधता के मूल में रहनेवाले सार्वभौम सिद्धांतों को ढूँढ़कर उनको सर्वमान्य बनाया। इसी प्रयत्न में हिंदू धर्म की एकता है। इसी आधार पर हिंदुत्व को धार्मिक इकाई मानकर उसकी परिभाषा करने की चेष्टा की जा सकती है।

अपने विशालकाय ग्रंथ में लेखक ने हिंदुत्व का सविस्तर परिचय कराया है। यह ग्रंथ नीचे लिखे अनुसार ८० अध्यायों में विषय-क्रम से विभक्त है :—

१. हिंदू कौन है ?
२. धर्म और संस्कार
३. परंपरा और साहित्य
४-१२. वेदखंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३-१७. उपवेदखंड

१८-२३. वेदांगखंड

२४. रामायण खंड

२५. महाभारत खंड

२६-४८. पुराणखंड (जैन और बौद्ध पुराण भी)

४९-५०. धर्मशास्त्रखंड

५१. तंत्रखंड

५२-६६. दर्शनखंड

६७-७७. संप्रदायखंड

७८. हिंदू-समाज का विकास

७९. चौंसठ कला

८०. उपसंहार

पहले अध्याय में यह बतलाया गया है कि 'हिंदू' शब्द का प्रयोग भारतीय-साहित्य में बहुत पीछे का है और यह नाम भारतीयों को पड़ोसी विदेशियों द्वारा प्राप्त हुआ है। ईरानी लोग सिंधु नदी की घाटीवाले प्रांत को 'हेंदु' और उसके निवासियों को 'हैंदव' कहते थे जिसका संक्षिप्त रूप आगे चलकर 'हिंदू' रह गया। इसी प्रांत से होकर भारत और ईरान के बीच आवागमन होता था। अतः इस प्रांत के द्वारा परिचित होने के कारण सारे भारतवासी ईरानियों द्वारा हिंदू समझे जाने लगे और भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा के भीतर रहनेवाली समस्त जनता हिंदू कहलाने लगी। इस भौगोलिक परिभाषा को पश्चिम के सारे देशों ने स्वीकार किया। यहाँ तक कि इस देश के ईसाई और मुसलमान आदि भी कई देशों में 'हिंदू' नाम से संबोधित होते हैं। किंतु लेखक की दृष्टि में 'हिंदू' का केवल भौगोलिक लक्षण ही पर्याप्त नहीं है। इसलिये दूसरे और तीसरे अध्यायों में यह कहा गया है कि हिंदू होने के लिये भारतीय धर्म और संस्कार स्वीकार करना तथा उसकी परंपरा और साहित्य को अपनाना भी आवश्यक है। इस कसौटी पर कसने से जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि अवैदिक संप्रदायों का समावेश 'हिंदू' में हो जाता है, परंतु ईसाई, इस्लाम और पारसी धर्म का नहीं क्योंकि उनका उद्गम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परंपरा विदेशी है। हिंदुत्व की यह परिभाषा स्थिर करने में लेखक ने लोकमान्य तिलक तथा श्री सावरकर (उनकी पुस्तक हिंदुत्व देखिए) का मत स्वीकार किया है।

हिंदू साहित्य, परंपरा और धार्मिक सिद्धांतों को समझाने के लिये लेखक ने चौथे से लेकर छासठवें अध्याय तक भारतीय साहित्य का ब्यौरेवार परिचय दिया है। ग्रंथ का यह भाग धार्मिक साहित्य के इतिहास सा हो गया है। सरसठवें से लेकर सतहत्तरवें अध्याय तक विभिन्न संप्रदायों के इतिहास और उनकी विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया गया है। अठहत्तरवें अध्याय में हिंदू धर्म की सामाजिक विविधताओं के कारणों और व्यवहारिक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। उन्नासिवें अध्याय में चौंसठ कलाओं की गणना और अंतिम अध्याय में उपसंहार करते हुए हिंदू-धर्म की व्यापकता और उदारता की ओर संकेत करके ग्रंथ समाप्त हुआ है।

ग्रंथ में विषय-प्रतिपादन बहुत ही व्यापक तथा उदार है। फिर भी मत और शैली के संबंध में एक-दो बातें कही जा सकती हैं। हिंदू शब्द की जो परिभाषा की गई है, वह हिंदू संस्थाओं की तरह रूढ़ हो चली है। देश और जाति का संबंध आधार-आधेय का है। कहीं जाति से देश का नाम और कहीं देश से जाति का नाम पड़ता है। इतिहास की प्राथमिक अवस्था में जातियों के नाम पर देशों का नाम प्रायः पड़ता था। इसी लिये देशों को जनपद कहते थे। कुरु देश, पांचाल देश आदि ऐसे ही नाम थे। आर्यावर्त और भारतवर्ष के मूल में भी यही भाव था। किंतु भारतीय शास्त्रकारों ने आगे चल कर इनका अर्थ भौगोलिक कर दिया (मनुस्मृति में आर्यावर्त और भारतवर्ष की परिभाषा देखिए)। इतिहास के विकास के साथ जातियों का नाम देशों के नाम पर पड़ने लगा, क्योंकि अनेक जातियों के मिश्रण से देश की प्रजा किसी एक मानवश्रेणी या जाति की न रहकर भौगोलिक हो गई। नागरिकता का अधिकार प्राप्त होते ही कोई भी व्यक्ति उस देश का निवासी हो सकता है और उसकी जातीयता या राष्ट्रीयता उसी देश की हो जाती है। सम्मिश्रण की आदिम अवस्था में विभिन्न दलों में धार्मिक और जातीय विरोध संभव है। किंतु कालक्रम से पारस्परिक आदानप्रदान, सम्पर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और घनिष्ठता से वह विरोध मिट जाता है। हिंदू शब्द इस प्रक्रिया का अपवाद नहीं हो सकता। हिंदू शब्द भौगोलिक है और हिंदूदेश की समस्त प्रजा हिंदू है, चाहे कोई हिंदू शब्द की रूढ़ता के कारण अपने को हिंदी या हिंदुस्तानी ही क्यों न कहे। वास्तव में हिंदू, हिंदी और हिंदुस्तानी में कोई अंतर नहीं है।

अच्छा हुआ होता यदि योग्य लेखक ने भारतीय साहित्य का परिचय और संक्षिप्त करके उसके सर्वमान्य सिद्धांतों, संस्थाओं और विशेषताओं का परिचय विषय-क्रम से कराया होता। इस शैली से हिंदुत्व की कल्पना पाठक के मन पर और सफाई और गहराई से अंकित हो गई होती। खेद है कि विद्वान् लेखक का पार्थिव जीवन समाप्त हो गया। किंतु यदि इस उपयोगी ग्रंथ का द्वितीय संस्करण निकलना कभी संभव हुआ तो इस बात का ध्यान रखा जा सकता है।

संपूर्ण ग्रंथ को पढ़कर यह बिना किसी संदेह के कहा जा सकता है कि विविध विषयों से समन्वित होने के कारण यह हिंदू धर्म का विश्वकोष हो गया है। इसके लिये शिक्षित समाज स्वर्गीय लेखक का विशेष आभारी रहेगा।

सारनाथ का संक्षिप्त परिचय—लेखक श्री मदनमोहन नागर एम० ए०; प्रकाशक मैनेजर आव् पब्लिकेशन्स देहली; पृष्ठ-संख्या ५+७१+७; मूल्य १)।

बौद्ध धर्म के इतिहास में सारनाथ का वही स्थान है जो ईसाई धर्म के इतिहास में जेरुसलम और इस्लाम के इतिहास में मक्का का है। भगवान् बुद्ध ने सर्वप्रथम यहीं पर धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। यहीं पर भारतीय धर्म में उस प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ था जिसके फल-स्वरूप आर्य सत्य और आर्य धर्म का देश-देशांतर में प्रचार हुआ। इस स्थान पर प्रतिवर्ष श्रद्धालु बौद्ध और जिज्ञासु यात्री हजारों की संख्या में अपनी भक्ति के प्रदर्शन तथा उत्सुकता की तृप्ति के लिये आते हैं। ऐसे लोकप्रसिद्ध तीर्थ का जितना ही अधिक परिचय जनसाधारण को हो उतना ही उपयोगी है। अँगरेजी भाषा में सारनाथ के ऊपर कई पुस्तकें तथा निबंध लिखे गए हैं। श्री प्रो० वृंदावन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्र भट्टाचार्य के अँगरेजी में लिखित सारनाथ के इतिहास का हिंदी भाषांतर भी हो चुका है। यह सब होते हुए भी इस बात की आवश्यकता थी कि एक छोटी, सुबोध तथा सस्ती पुस्तक निकाली जाय जो बहुसंख्यक लोगों तक पहुँच सके। प्रस्तुत पुस्तक तैयार कर श्रीयुत नागर ने प्रथम दो आवश्यकताओं की पूर्ति की है। लेखक ने पुस्तक को अवतरणिका छोड़कर तीन अध्यायों में बाँटा है। पहले अध्याय में सारनाथ का संक्षिप्त इतिहास, दूसरे में प्राचीन इमारतों के भग्नावशेषों का सरसरी वर्णन और तीसरे में अजायबघर में संगृहीत प्रदर्शनों का परिचय है। अंत में सात मुख्य प्रदर्शनों के चित्र हैं जिनसे पुस्तक की उपयोगिता और रोचकता बढ़ गई है। इस प्रकार यह पुस्तक सर्वांगीण तथा सर्वसाधारण के बड़े काम की है।

पुस्तक में कुछ ऐसी बातें हैं जिनका यदि संभव हो तो दूसरे संस्करण में संशोधन हो जाना चाहिए। सारनाथ के इतिहास में (पृ० १०, ११) ऐसे निष्कर्ष निकाले गए हैं जो पुष्ट नहीं। केवल धर्मराजिका स्तूप की मरम्मत कराने से सारनाथ के ऊपर पालों का राजनैतिक अधिकार सिद्ध नहीं होता और न 'शिलालेख' से काशी प्रांत के ऊपर कलचुरी वंश का आधिपत्य। सारनाथ का मध्यकाल से लेकर १७९४ तक इतिहास बिल्कुल अछूता है। इस पर भी कुछ प्रकाश डालना चाहिए। इमारतों के वर्णन में चौखंडी स्तूप के ऊपर अकबर के शिलालेख की नागरी प्रतिलिपि और हिंदी अनुवाद देना अच्छा होता, जब कि लेखक ने अन्य उत्कीर्ण लेखों की प्रतिलिपि और भाषांतर दिया है। सारनाथ की आधुनिक इमारतों में मूलगंधकुटी विहार, महाबोधि सोसाइटी का पुस्तकालय तथा कार्यालय, बर्मी धर्मशाला, विरला धर्मशाला, नवीनतम चीनी मंदिर और सारनाथ महादेव के मंदिर के वर्णन बिल्कुल छूट गए हैं। सारनाथ के ये अभिन्न अंग हैं। अतः इनके परिचय के बिना पुस्तक अधूरी मालूम पड़ती है।

ग्रंथ की भाषा में कुछ शब्दों का प्रयोग खटकने लायक है। 'वख्त' शब्द (पृ० ५, ६, ८, १५) वक्त (समय) के बदले प्रयुक्त हुआ है। उर्दू में वख्त (बख्त) का अर्थ भाग्य होता है, समय नहीं। 'स्थापत्य' का प्रयोग मूर्तिकला के अर्थ में हुआ है (पृ० ७,५१) यह अशुद्ध है। स्थापत्य का अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन-निर्माण-कला है। पृ० ८ पर खूँद के बदले रौंद शब्द प्रयुक्त होना चाहिए। ऐसे दो-चार और शब्द भी पुस्तक में पाए जाते हैं जिनका प्रचार प्रचलित हिंदी में नहीं है। इनका परिमार्जन और परिवर्तन होना आवश्यक है।

प्राचीन तिब्बत—लेखक श्री रामकृष्ण सिनहा (?), बी० ए०, विशारद; प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या १८२; मूल्य ॥) ।

भारतीय पुराणों में वर्णित यक्ष, गंधर्व और किन्नरों का देश तिब्बत आज भी कुतूहल और आश्चर्य का विषय है। उसकी भौगोलिक स्थिति, निवासी, धार्मिक विश्वास, तत्त्वज्ञान, धार्मिक कृत्य, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि सभी विदेशियों के लिये अचंभे की वस्तुएँ हैं। पाश्चात्य और प्राच्य कतिपय जिज्ञासु यात्रियों ने तिब्बत को जानने और वहाँ से लौटकर उसका परिचय कराने की चेष्टा की है। प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता का यह अधिकार नहीं है, फिर भी उन्होंने एक साहसी फ्रांसीसी महिला के अनुभवों को हिंदी-भाषियों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में तिब्बत की कई संस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है, जैसे, लामा, गुंबा या धार्मिक मठ, मंत्र-तंत्र, इच्छा-शक्ति और उसका प्रयोग, धर्म-गुरु तथा शिष्य-परंपरा और अध्यात्म। एक बौद्धिक यात्री के निरीक्षण से जो बातें जानी जा सकती हैं उन सब का मनोरंजक ढंग से वर्णनात्मक विवेचन किया गया है। वर्णनों के पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा कि तिब्बती धर्म और जीवन पर मध्यकालीन भारत के हिंदू तंत्र और बौद्ध वज्रयान तथा योगाचार का कितना गहरा प्रभाव है। मध्ययुगीन बिहार और बंगाल के बौद्ध विश्व-विद्यालयों में विद्याध्ययन के लिये हजारों तिब्बती विद्यार्थी आया करते थे और भारत के बहुत से धर्मगुरु बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये तिब्बत में निमंत्रित होते थे। तिब्बती धर्म, तत्त्वज्ञान, साहित्य तथा लिपि इसी संपर्क के परिणाम हैं। तिब्बत का रहस्योद्घाटन केवल कुतूहल के लिये ही नहीं, किंतु बृहत्तर भारत के अध्ययन के लिये भी आवश्यक है। इस छोटी सी पुस्तक से पाठकों का मनोविनोद और ज्ञान-वर्धन होगा इसमें संदेह नहीं और तिब्बत के विषय में और अधिक जानने की उत्कंठा भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक में एक-दो बातें खटकनेवाली हैं। शीर्षक कुछ भ्रामक है। इससे ऐसा मालूम होता है कि इसमें प्राचीन तिब्बत का इतिहास है, किंतु है यह आधुनिक तिब्बत के कुछ पहलुओं का पर्यवेक्षण। इसलिये कोई और उपयुक्त शीर्षक होना चाहिए था। दूसरी बात, यह नहीं जान पड़ता है कि श्री सिनहा लेखक हैं या अनुवादक। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए। पुस्तक में भूमिका नहीं है और न तो मूल आधार का कहीं भी उल्लेख या उसके प्रति आभार-प्रदर्शन। प्रकाशक को पुरानी पुस्तकों का नवीन संक्षिप्त संस्करण निकालने के समय इस बात का ध्यान होना चाहिए।

महाभारत-मीमांसा—लेखक पं० देवीदत्त शुक्ल; प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या १७६; मूल्य ॥) ।

भारतवर्ष के अतीत को समझने के लिये महाभारत एक आकर-ग्रंथ है। इसका तो यहाँ तक दावा है कि जो इसमें है वह सारे विश्व में है, जो यहाँ नहीं वह अन्यत्र भी नहीं। चाहे इस दावे में अतिरंजन भले हो, किंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इस ग्रंथ-रत्न में इतिहास की अतुल सामग्री भरी पड़ी है। परंतु इस विशालकाय ग्रंथ को पढ़ने के लिये साधारण पाठक को पर्याप्त समय और धैर्य दोनों नहीं। अतः महाभारत के मथितार्थ को संक्षिप्त और सुलभ आकार में रखकर इस पुस्तक द्वारा सराहनीय कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक अठारह प्रकरणों में विभाजित है। इसमें महाभारत संबंधी प्रायः सभी प्रश्नों पर विचार किया गया है और उस समय की प्रजा, राज्य, समाज, धर्म, दर्शनादि का चित्र भी सरल सुबोध भाषा में अंकित है। इस छोटी सी पुस्तक में सभी मत-मतांतरों का विस्तृत समावेश नहीं हो सकता, फिर भी उनके संक्षिप्त संकेत के साथ भारतीय दृष्टिकोण से निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया है। मीमांसा वैज्ञानिक ढंग से की गई है और इसमें भारतीयता होते हुए भी दुराग्रह और रूढ़िवादिता नहीं है। इसलिये आधुनिक पाठकों के लिये यह बड़े काम की चीज है।

यह पुस्तक स्व० श्री चिंतामणि विनायक वैद्य के हिंदी महाभारत-मीमांसा का सारांश है। (अध्याय प्रायः सब के सब उन्हीं के हैं।) यह बात यद्यपि पुस्तक के आवरण के अंचल में स्वीकार की गई है, किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की प्रस्तावना में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। ऐसा करना केवल आभार-प्रदर्शन के लिये ही आवश्यक नहीं है किंतु अधिक जिज्ञासु पाठकों की जानकारी के लिये भी। सुलभ-साहित्य के प्रकाशन का उद्देश्य केवल ज्ञान-विकरण ही नहीं, ज्ञान-स्रोत की उद्भावना भी है। अतः स्व० वैद्य के साथ साथ उन सभी विद्वानों का संकेत प्रस्तावना में होना चाहिए जिन्होंने महाभारत के समझने-समझाने में पथ-प्रदर्शन का काम किया है। इससे लेखक के श्रेय को कुछ भा आघात न पहुँचेगा।

—रा० ब० पांडेय।

भारतीय चोनी मिट्टियाँ—लेखक श्री मनोहरलाल मिश्र; प्रकाशक विज्ञान-परिषद्, प्रयाग; सजिल्द, पृष्ठ-संख्या २८७; मूल्य १॥)।

भारतवर्ष में मिट्टी के बर्तनों का व्यवसाय एक विशेष महत्त्व रखता है। खेद है कि इस व्यवसाय के संबंध में अब तक हिंदी में कोई पुस्तक नहीं थी। इधर विज्ञान-परिषद् प्रयाग ने इसके संबंध में दो पुस्तकें प्रकाशित कीं—एक तो 'मिट्टी के बर्तन' प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा लिखित और दूसरी 'भारतीय चीनी मिट्टियाँ'। प्रस्तुत पुस्तक लेखक के विशेष अध्यवसाय से लिखी गई है। इस पुस्तक में परिशिष्ट सम्मिलित करके २२ अध्याय हैं, २०वें और २१वें अध्याय में लेखक ने सीमाप्रांत, पंजाब, दिल्ली, संयुक्त-प्रांत, बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मद्रास, बंबई, सिंध, राजपूताना आदि सभी प्रांतों की मिट्टियों की मीमांसा की है। इन अध्यायों की जानकारी प्राप्त करके हम जान सकते हैं कि किस कार्य के लिये कहाँ की मिट्टी अधिक उपयोगी होगी। योग्य लेखक ने चीनी मिट्टी के व्यवसाय के संबंध में जितनी भी आवश्यक बातें थीं, सभी इस पुस्तक में दी हैं। यह पुस्तक रासायनिक और औद्योगिक दोनों दृष्टियों से महत्त्व की है।

—सत्यप्रकाश।

भारतीय वैज्ञानिक—लेखक श्री श्यामनारायण कपूर; प्रकाशक साहित्य-निकेतन, श्रद्धानंद पार्क, कानपुर; पृष्ठ-संख्या ३६४; मूल्य ३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-चरित साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। चरित्र के निर्माण और विकास में, जीवन को ऊपर उठाकर उच्च आदर्श के उपस्थित करने में जीवन-चरित के पठन-पाठन से बड़ी सहायता मिलती है।

संतोष की बात है कि हिंदी-साहित्य में जीवन-चरित की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। यद्यपि अब भी अनेक ऐसे महापुरुष हैं जिनकी जीवनी हिंदी-पाठकों को उपलब्ध नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में ग्रंथकार ने १२ प्रमुख वैज्ञानिकों की संक्षिप्त जीवनी लिखी हैं जिनमें पाँच तो इस संसार से बिदा हो चुके हैं और शेष सात अभी जीवित है। प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिकों में महेंद्रलाल सरकार, श्रीनिवास रामानुजम, गणेशप्रसाद, जगदीशचंद्र वसु और शाह मुहम्मद सुलेमान हैं। द्वितीय श्रेणी में प्रफुल्लचंद्र राय, चंद्रशेखर वेंकटरमण, मेघनाथ साहा, बीरबल साहनी, शांतिस्वरूप भटनागर, श्रीनिवास कृष्ण और जहाँगीर भाभा हैं।

भारत के प्राचीन साहित्य का जो थोड़ा-बहुत अंश हमें प्राप्त है उससे स्पष्ट रूप से पता लगता है कि हमारे पूर्वज आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, नागार्जुन, पतंजलि, चरक और सुश्रुत ज्योतिष, गणित, रसायन, दर्शन और चिकित्सा इत्यादि अनेक वैज्ञानिक विषयों के प्रकांड और अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे। इन महापुरुषों का आविर्भाव इस देश में तब हुआ था जब यूरोप के सारे देश अज्ञान के गर्त में पड़े हुए थे और वहाँ के अधिकांश अधिवासी जंगली मनुष्यों सा जीवन व्यतीत कर रहे थे। आज समय ने पलटा खाया है। यूरोप के देश आज विज्ञान के केंद्र बने हुए हैं। विज्ञान के एक से एक प्रकांड विद्वान् आज वहाँ विद्यमान हैं जो अपने आविष्कारों से संसार को चकित कर रहे हैं। अपेक्षाकृत थोड़े समय से ही भारत में आधुनिक वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन शुरू हुआ है। इस थोड़े समय में ही कुछ ऐसे प्रकांड विद्वान् हो गए हैं जो अपने विषय में पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों से टक्कर ले सकते हैं।

इन भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियों से हमें पता लगता है कि परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर भी स्वावलंबन, पुरुषार्थ और कुशाग्र बुद्धि के कारण इन लोगों ने वैज्ञानिक संसार में यश और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इन वैज्ञानिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता के पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में 'ऊँचा उठाने में' बड़ी सहायता प्राप्त हुई है।

इस पुस्तक में दी हुई भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियों से हमें उनकी विज्ञान-साधना, अन्वेषण और आविष्कारों का रोचक और प्रामाणिक वर्णन मिलता है। हिंदी में यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली है। इससे हिंदी साहित्य के एक अभाव की पूर्ति होती है। यह पुस्तक बाल, वनिता, प्रौढ़ों, वैज्ञानिक एवं अवैज्ञानिक सबों के लिये रोचक और शिक्षाप्रद होगी। प्रत्येक विद्यार्थी के हाथ में इसकी एक प्रति रहनी चाहिए जिससे स्वावलंबन, पुरुषार्थ, आत्मत्याग, अध्यवसाय और अदम्य उत्साह की बहुमूल्य शिक्षा ग्रहण कर वह इस देश के गौरव की वृद्धि में हाथ बँटा सके।

इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती यदि ग्रंथकार इन वैज्ञानिकों के आधुनिक विषयों—आधुनिक शिक्षा-प्रणाली, स्त्री-शिक्षा, देश का उद्योगीकरण, जात-पाँत के विचार, बाल एवं विधवा विवाह, खद्दर व्यवहार, आधुनिक समाज-संगठन इत्यादि—पर उनकी सम्मति का समावेश कर सकते।

—फूलदेवसहाय वर्मा।

आत्मचरित चंपू—लेखक स्वर्गवासी पंडित अक्षयवट मिश्र; प्रकाशक पुस्तक-भंडार, लहरियासराय; मू० १॥)।

यह बिहार के प्रसिद्ध साहित्यिक पंडित अक्षयवट मिश्र का लिखा अपना चरित है। इसमें उन्होंने अपनी संसार-यात्रा में किस तरह कठिनाइयों का सामना किया और कैसे अनेक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की इन बातों का सरस और पुष्ट भाषा में वर्णन किया है। सब से महत्त्व की बात जो इस आत्म-चरित से स्पष्ट होती है वह उस समय के कवियों की जीवनचर्या और दरबारदारी है। इनके अतिरिक्त उसमें कोई ऐतिहासिक या साहित्यिक महत्त्व की बात नहीं है।

—श।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान के ग्राम-गीत—संग्रह-कर्ता स्वर्गीय श्री सूर्यकरण पारीक एम० ए०; संपादक श्री रामसिंह एम० ए० तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए०; प्रकाशक गयाप्रसाद ऐंड सन्स, आगरा ; मूल्य ।।।) ।

इधर कुछ वर्षों से ग्राम-गीतों की बहुत चर्चा चल रही है। आए दिन हिंदी के पत्रों में किसी न किसी प्रांत के ग्राम-गीतों की बानगी देखने को मिलती है।

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका से पता चलता है कि बीकानेर के राजस्थानी साहित्य-पीठ ने राजस्थान के ग्राम-गीतों के संग्रह के लिये एक बृहद् आयोजन किया है। उस आयोजन के फलस्वरूप सूर्यकरण पारीक राजस्थानी ग्रंथ-माला का प्रथम पुष्प हमारे सामने हैं। इस भाग में राजस्थान की ग्रामीण जनता के गृहस्थ-जीवन-संबंधी ६३ गीतों का संग्रह है। गीतों की सरसता के विषय में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि जो सहृदय हैं उन्हें इन गीतों में उत्तम काव्य का आनंद मिलेगा। यद्यपि टवर्ग के आधिक्य के कारण राजस्थानी भाषा कुछ कर्णकटु जान पड़ती है परंतु जिसने किसी राजस्थान-निवासी के मुख से वहाँ के गीत सुने हैं उसे उनकी सरसता का पता लगता है। वास्तव में वे बड़े मधुर होते हैं।

इन गीतों को पढ़ने से राजस्थान के ग्रामीण जीवन का बड़ा सुंदर चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। राजस्थान के ग्रामीण-जीवन में परिश्रम का बड़ा महत्त्व है। वहाँ भूमि कम उपजाऊ है, इस कारण वहाँ के कृषकों का जीवन बड़ा संघर्षमय है। स्त्री-पुरुष दोनों ही कठिन परिश्रम करते हैं तब किसी प्रकार अपना उदर पोषण कर पाते हैं। परंतु इस प्रकार के श्रम-पूर्ण जीवन में एक प्रकार का संतोष और आनंद होता है जो नगर के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में दुर्लभ है। नीचे के गीत से यह बात स्पष्ट झलकती है—

"सासू बहू म्हे चली खेत ने
लीनी गंडासी हाथ बणायी झूँपड़ी।
सासूजी तो पूला काट्या
म्हे काट्या सर ए पचास बणायी झूँपड़ी
ऊँटां ऊँटां पूला ढोया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई सर गाडां के मांय बणायी भूँपड़ी
म्हारे परणये छाई तिरणीं
म्हारे देवरिये गूँथ्यो पाल बणायी भूँपड़ी
सासू बहू मिल गारो ढो ल्यो
लीप्यो लीप्यो सारो पाल बणायी भूँपड़ी
आ भूँपड़ी म्हारो मालियो
कोई आ भूँपड़ी म्हारो मैल बणायी भूँपड़ी"

अर्थ—"हम सास बहू खेत को चलीं। हाथ में गँड़ासी ले ली। सास ने पूले काटे और मैंने पचासों सरकंडे। ऊँटों पर पूले ढोए और गाड़ों में सरकंडे। मेरे पति ने तिरणो छाई। मेरे देवर ने पाल गूँथा। हम सास बहू ने मिलकर गारा गिलोया और सारा पाल लीप डाला। इस प्रकार हमने झोंपड़ी बनाई। यह झोंपड़ी हमारा महल है और यही झोंपड़ी हमारा प्रासाद। हमने झोंपड़ी बनाई।"

गीतों के भावार्थ और कठिन शब्दों पर टिप्पणियाँ दे देने से पुस्तक अन्य प्रांतवालों के लिये भी उपयोगी हो गई है। परंतु कहीं-कहीं भावार्थ लिखने में प्रांतीय शब्दों का बहुत प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त टिप्पणियाँ कुछ अधिक होनी चाहिए थीं। ऊपर के गीत का जो अथ दिया गया है उसमें 'पूले' 'तिरणो' 'पाल' ऐसे शब्द हैं जो अन्य प्रांतों के लोगों की समझ में कठिनाइ से आएँगे। अतः इन पर टिप्पणियाँ लिखना आवश्यक था। फिर भी ग्राम-गीतों के प्रेमियों को इन गीतों के रसास्वादन में कोई बाधा नहीं पड़ती।

हाँ, पुस्तक की लिपि के संबंध में कुछ कहना है। इसमें 'ए' और 'ऐ' के स्थान पर 'ओे' और 'ओै' का प्रयोग किया गया है। जब तक हिंदी की प्रधान संस्थाएँ जैसे काशी-नागरीप्रचारिणी सभा तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग नागरी वर्णमाला में कोई संशोधन नहीं स्वीकार करती हैं तब तक इस प्रकार की विभिन्नता लाना और लिपि के संबंध में बहुमत होना हिंदी के हित के लिये घातक है। इसी प्रकार 'उन्होंने' सर्वनाम के स्थान पर 'उनने' का प्रयोग खटकता है।

—रमापति शुक्ल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय—संग्रहकर्ता श्यामाचरण दूबे; प्रकाशक ज्ञानमंदिर, छत्तीसगढ़, पृष्ठ-संख्या ७४ मूल्य ।=ु ।

इस छोटी सी पुस्तिका में, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, संग्रहकर्ता ने छत्तीसगढ़ के प्रचलित लोकगीतों से पाठकों का केवल परिचय ही कराने का प्रयास किया है।

लोकगीतों को बहुत काल तक केवल ग्रामीणों और अशिक्षित जनता की संपत्ति समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा चुका है। किंतु अब ऐसी भावना नहीं रही। आज तो शिक्षित समुदाय को भी अपनी भाषा में लोकगीतों के संग्रह का अभाव खटकने लगा है और कितने ही लोग इनके संग्रह में तन, मन और धन से संलग्न हैं। इस क्षेत्र में इस जागृति ही का यह प्रभाव है कि आज छत्तीसगढ़ के भी लोकगीतों का हम परिचय पा रहे हैं।

संग्रहकर्ता ने अपने संग्रह को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने का यथेष्ट प्रयत्न किया है, थोड़े ही में उसके पूरे रूप को कुशलता से अंकित करना चाहा है। छत्तीसगढ़ मुख्यतः एक कृषि-प्रधान और श्रमजीवियों का ही क्षेत्र है। अतः संग्रहकर्ता का इस पुस्तक में प्रायः उन्हीं गीतों को लेने का आग्रह रहा है जिनमें उनके गायकों की आत्मा निहित है। रात्रि के समय कोई कृषक गाता है :—

"जीयत जनम लेबे, हाँसि लेबो खेलि लेबो,
मरे ले दूलभ संसार।"

अर्थात्—हमने जीने के लिये ही जन्म लिया है। हम जीवन में हँसेंगे, खेलेंगे। मरने पर यह संसार दुर्लभ हो जाएगा।

सुखवाद की इस दृढ़ भावना को लेकर ही आज भारत का आर्त्त और श्रांत किसान अपने जटिल जीवन में भी गाता रहता है। इन श्रमजीवियों के जीवन में संगीत ही ऐसी वस्तु है जो उन्हें कुछ क्षणों के लिये सारे दुःख-द्वंद्वों से दूर हटा सुख की अनुभूति दे जाती है। इसी लिये ही तो उन्होंने जीवन के पग पग पर संगीत का सहारा लिया है। ऋतु-परिवर्तन, पर्व, उत्सव, संस्कार आदि अवसरों पर उनके भिन्न भिन्न प्रकार के गीत हैं जिन्हें गाकर वे समय-विशेष पर प्रकृति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ अपने हृदय का सामंजस्य स्थापित करते हैं। कभी वे नाच के साथ गाते हैं, कभी कोई बाजा बजाकर और कभी केवल उनकी कंठ-लहरी ही लय-तान रचती है। कभी कभी वे अपने यहाँ प्रचलित किसी कथा-विशेष को भी गीत की लय में बाँध लेते हैं और फिर उसका गान भी गीत-शैली पर होता है। जैसे इस ओर 'श्रवणकुमार' 'भर्थरी' आदि की कथाएँ जनता में गाई जाती हैं उसी प्रकार छत्तीसगढ़ में 'ढोला गीत' भी गाया जाता है जिसमें 'ढोलामारू' की कथा चलती है। निरंतर गाए जाते कुछ गीतों पर तो उनकी जाति-विशेष का एकाधिकार सा हो जाता है। इन प्रवृत्तियों को देखते हुए संग्रहकर्त्ता ने इस पुस्तक में गीतों का क्रम बहुत कुछ उनकी अनेकरूपता की दृष्टि से रखा है। शैली, जाति और समय के अनुसार ही इसमें गीतों के अनेक रूपों का परिचय हमें मिलता है। वैसे यदि 'कर्मा' 'बीरम' और 'बाँसगीत' केवल जाति-विशेष के ही हैं तो 'ददरिया' 'सुआ गीत' आदि सभी जाति के अपने समझे जा सकते हैं। 'सुआगीत' यदि दीपावली पर्व पर गाया जाता है तो 'सोहर' केवल जन्म के अवसर पर ही। इसी प्रकार 'नचौरी' यदि नाच के साथ चलती है तो 'बाँसगीत' बाँसुरी पर।

संग्रहकर्ता ने सब प्रकार के गीतों के उदाहरण यद्यपि अपनी समझ से बहुत सुंदर और चुने हुए ही प्रस्तुत किए हैं फिर भी इसमें उसे यथेष्ट सफलता नहीं मिल सकी है। जब गीतों का केवल परिचय ही कराया जा रहा था तो कुछ ऐसे चुने उदाहरण ही देने थे जो अपनी भाव-सरसता और मार्मिकता से पाठकों के हृदय को सहज ही आकृष्ट कर सकते। किंतु इस पुस्तक में तो ऐसे उदाहरणों का दो-एक स्थलों को छोड़ अभाव ही है। 'ददरिया' की निम्नलिखित पंक्तियों में चोंगी (पत्तो की बनी नली) के जलने के साथ विरही नायक की मनःस्थिति का साम्य बड़ा सुंदर बन पड़ा है —

"अरे, चोंगी रे पिये उलज झोइया,
मेंहर सुररि सुररि के होवत हों कोइला।"

परंतु लेखक की ऐसी सौंदर्य-रुचि सर्वत्र नहीं लक्षित होती है। संस्कार के समय गाए जानेवाले गीतों के उदाहरण तो नितांत नीरस हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतों के उदाहरणों के साथ साथ उनके हिंदी अनुवाद भी संग्रह में दिए गए हैं। इससे समझने में सुविधा हुई है। पूरी पुस्तक के पढ़ लेने पर पाठक छत्तीसगढ़ में गाए जानेवाले सभी प्रकार के गीतों से अभिज्ञ तो अवश्य हो जाता है, किंतु सरस मार्मिक उदाहरणों की विरलता के कारण उसका हृदय गीतों के स्निग्ध मार्मिक प्रभाव से प्रायः अछूता ही रह जाता है।

परंतु इस ओर संग्रहकर्ता की यह रुचि और उत्साह स्तुत्य ही है और उसका यह दावा कि वह एक नवीन एवं मौलिक वस्तु लेकर साहित्य के संसार में उपस्थित हुआ है सर्वथा उचित है।

—रामकिशोरी एम० ए०।

जैन साहित्य और इतिहास—लेखक पं० नाथूरामजी प्रेमी; प्रकाशक श्री हेमचंद्र मोदी, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ६०० से अधिक, मूल्य ३) ।

प्रस्तुत पुस्तक में जैनाचार्य श्री देवनंदि, आशाधर, शाकटायन, देवसेन, अमितगति, हस्तिमल्ल, वादिचंद्र, महाकवि पुष्पदंत, प्रभाचंद्र, स्वयंभु, वादिराज, श्रुतसागर, मल्लिषेण, जिनसेन शुभचंद्र, अनंतकीर्ति, अमृतचंद्र, महाकवि धनंजय महाकवि वादीभसिंह, वाग्भट वादिराज आदि ग्रंथकारों का तथा अनेक जैन ग्रंथों का तुलनात्मक ऐतिहासिक विवेचन करके उनका समय निर्धारण किया गया है तथा अन्य भी अनेक विषयों की खोज करके उनका निरूपण किया गया है। पुस्तक के लेखक पं० नाथूरामजी प्रेमी हिंदी-संसार के सुपरिचित सिद्धहस्त लेखक तथा पुस्तक-प्रकाशक हैं। अब से बहुत समय पहले आपके संपादकत्व में 'जैन हितैषी' नाम का एक उच्च कोटि का मासिक पत्र प्रकाशित होता था। उसमें समय समय पर प्रेमीजी अपने खोजपूर्ण लेख प्रकाशित किया करते थे। आपके वे लेख जैन इतिहास के विद्यार्थियों के लिये 'प्रकाश-स्तम्भ' थे। अपने उन्हीं लेखों का संकलन प्रेमीजी ने इस पुस्तक के रूप में निबद्ध किया है और परिमार्जन तथा संवर्धन के साथ ही साथ अपने अन्य भी कई महत्त्वपूर्ण लेखों को इसमें स्थान दिया है। जैन साहित्य के इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रेमियों के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपादेय है। अभी तक दि० जैनाचार्यों के बारे में इस ढंग की कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। इस पुस्तक से दि० जैन साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी की तो आंशिक पूर्ति हुई ही है, साथ ही साथ हिंदी साहित्य की भी इससे श्रीवृद्धि हुई है। प्रेमीजी की भाषा, शैली और चित्रण के संबंध में कुछ कहना बेकार है। पुस्तक को पढ़ने में उपन्यास का सा आनंद आता है और पाठक सरलता से इतिहास की वस्तु को हृदयंगम करता हुआ चला जाता है। कागज, छपाई, जिल्द वगैरह भी पुस्तक के अनुरूप ही सुंदर हैं। इस सुंदर पुस्तक के प्रकाशन के लिये हम श्री हेमचंद्रजी मोदी को बधाई देते हैं और साहित्य तथा इतिहास के प्रेमी पाठकों से एक बार इसे पढ़ डालने का अनुरोध करते हैं।

—कैलाशचंद्र शास्त्री।

बच्चों की कुछ समस्याएँ—लेखक श्री कालूलाल श्रीमाली, एम० ए०, बी० टी०; प्रकाशक विद्या-भवन उदयपुर (राजपूताना); पृष्ठ-संख्या ३०१, कागज और छपाई बहुत अच्छी, मूल्य १॥)।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मनोविश्लेषण के साहित्य के कोरे पंडित ही नहीं हैं, बल्कि मनोविश्लेषण करने में भी निष्णात हैं और भारतीय मनोविश्लेषण-सभा द्वारा इसके लिये अधिकार प्राप्त किए हुए हैं। आपको बालकों के वास्तविक जीवन का जितना अनुभव है उतना भारत में कम व्यक्तियों को है। यह बात उनके द्वारा संपादित 'बालहित' नामक प्रसिद्ध पत्र से और उनके द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक से स्पष्ट है। यह पुस्तक हिंदी भाषा में विशेष बहुमूल्य है। इसका अध्ययन और उपयोग सभी माता-पिताओं और शिक्षकों को करना चाहिए।

यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि हम सभी किसी समय बालक रह चुके हैं तथापि हमारा बाल-मनोवृत्ति-संबंधी ज्ञान बहुत ही कम तथा बहुधा गलत होता है। हम अपने शैशव को शनैः शनैः इतना भूल जाते हैं कि जब हम माता-पिता और अध्यापक होते हैं तो शिशु-प्रवृत्तियों से सर्वथा नहीं तो बहुत अंश तक अपरिचित हो जाते हैं। इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम बच्चों के मनोभावों को समझने और उनके साथ यथोचित बर्ताव करने में असफल रहते हैं। बच्चों की मनोवृत्तियों को वे ही लोग समझ सकते हैं जो वैज्ञानिक रीति से उनको समझने का प्रयत्न करते हैं। श्रीमाली जी इस विषय के अधिकारी ज्ञाता हैं। अतएव उनकी यह पुस्तक प्रत्येक माता-पिता और अध्यापक को पढ़नी चाहिए और इसमें वर्णित सिद्धांतों को अपने अनुभव की कसौटी पर कसकर उनका उपयोग करना चाहिए। पुस्तक में इन विषयों पर प्रकाश डालने का यथेष्ट सफल यत्न हुआ है—बच्चों की दुनिया, बच्चों के खेल और खिलौने, बच्चों में भय, चिढ़नेवाला बच्चा, चिढ़ानेवाला बच्चा, पिछड़नेवाला बच्चा, अपराधी बच्चा, कुटुंब में बच्चे की शिक्षा, बच्चे का दूध छुड़ाना, आदत, युवा, काम-शिक्षा, बच्चा और धन, स्कूल में बच्चों की शिक्षा, सह-शिक्षा, मर्यादा-पालन और शिक्षा और समाज।

इन विषयों पर अध्ययन और प्रयोग के फलस्वरूप अपने विचार श्रीमाली जी ने इस पुस्तक में बड़ी सरल और सुंदर भाषा में रखे हैं। स्थान-संकोच के कारण उनका उदाहरण और विमर्श यहाँ उपस्थित नहीं किया जा सकता। मैं श्रीमाली जी के विचारों से बहुत सहमत हूँ और आशा करता हूँ कि पाठक भी उनको बहुत पसंद करेंगे।

श्रीमाली जी से मेरा अनुरोध है कि वे बाल-मनोविज्ञान पर एक पूरी पुस्तक लिखकर भारतीय बालकों के प्रति अत्यावश्यक उपकार करें।

—भी० ला० आत्रेय एम० ए०, डी० लिट०।

आधुनिक कवि—महादेवी वर्मा एम० ए०, देव पुरस्कार ग्रंथावली (१); प्रकाशक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; मूल्य १॥)।

अंतर्भावाभिव्यंजनकारी आमुख सहित अपनी ही अभिरुचि द्वारा स्वयमेव चयन की हुई निज उत्कृष्ट रचनाओं का आकलन कवि की आत्मा का जितना निकट से परिचय दे सकता है, उसकी कृतियों का उतना स्पष्ट आभास अन्य किसी भी स्थिति में सुलभ नहीं है। इस आदर्श की प्रेरणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, उनकी हस्तलिपि के नमूने और प्रतिकृति के पेंसिल-रेखाचित्र सहित, आज के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं का संग्रह साहित्यानुरागी जन को वर्तमान काव्य-धारा के मार्मिक अध्ययन में विशेष सुविधा प्रदान करेगा इसमें संशय नहीं है। सम्मेलन का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

जीवन के चिरंतन रमणीय सत्य को अव्यक्त के रहस्य-गुल्म से व्यक्त के वासंती अजिर में खोज लानेवाली जो अंतर्भेदिनी दृष्टि महादेवी ने पाई है वह वर्तमान कवियों में अन्य किसी के पास नहीं है। युगांतर समुपस्थित करनेवाले कवि कम हुआ करते हैं। युग-प्रवर्तक 'प्रसाद' को खो देने के बाद सबकी आशान्वित दृष्टि नूतन काव्य-धारा की प्रतिनिधि जिस कवित्रयी—पंत-निराला-महादेवी—पर ठहरी उनमें ऊँची भावना, चिंतन और पूत राग के विमल समन्वय की दृष्टि से महादेवी का स्थान आज श्रेष्ठ है। समय के प्रवाह में पड़कर बह जानेवालों के बीच श्रद्धामयी महादेवी की अमर चेतना जड़ एवं विनाशी बुद्धिवाद के प्रबल झंझावात में आज भी अविचल है। उनकी वेदना अब भी अपनी पलकों में किसी रहस्यमय का सुकुमार स्वप्न पाल रही है—

"मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का।"

उनकी पलकों का यह स्वप्न जीवन के उस अनन्य सत्य से साक्षात्कार करने पर स्वँयं सच होकर रहेगा इसमें संदेह नहीं है।

उनके आत्मनिवेदन के जीवन-श्रमहारी ये निमिष उन्हीं (प्रियतम) को बार बार अर्पित हैं 'जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है।' उन्होंने अपने 'दृष्टि-कोण' में यह स्पष्ट कर दिया है कि "जिस विद्युत् के भार से कठोर पृथ्वी फट जाती है उसी को बादल की सजलता अपने प्राणों का आलोक बनाए घूमती है।" व्यथा की करुणा से आर्द्र उनके हृदय का प्रत्येक निभृत कोण इस सजग विश्वास से भरा है। कला में इसी विश्वास की व्यंजना उनका साहित्य है। सुंदर मनोवैज्ञानिक अध्ययन, गंभीर मनन और सूक्ष्म विवेचन से भरी, साहित्य की एक स्थायी जागीर, इस भूमिका में उन्होंने अपनी बात के निवेदन के अतिरिक्त आधुनिक काव्य में प्रचलित अनेक विभ्रांत वादों और परुष संघर्षों का सहृदयता से और रहस्यवाद-छायावाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रस्तुत भाव-सरणि पर चलाए गए कुटिल आक्षेप-कंटकों का फूलों से उत्तर दिया है। साहित्य में सुंदर सुंदर परिभाषावाले ऐसे रमणीय प्रबंध कम हैं।

आकलित कविताओं के संबंध में बहुत कुछ शस्ति-प्रशस्ति के रूप में कहा जा चुका है। ये सब की सब इतनी ललित और मधुर हैं कि इनमें भेद उत्पन्न कर किसी को घट-बढ़कर बताना सहृदयता के बाहर की बात होगी। उनकी हस्तलिपि में विन्यस्त कविता—

"पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला" जिसमें महादेवीजो "मोतियों की हाट औ चिनगारियों का एक मेला" लगाती चली गई हैं, उनके अंतर्भावों की एक परछाईं ही सी है। इतना तो निश्चित है कि अन्य साहित्यों की उत्कृष्ट रहस्यवादी कविताओं की तुलना में, जिसके लिये न यहाँ समय है और न स्थान, ये कविताएँ किसी से भी भावना की ऊँचाई और व्यंजना की मधुरिमा में घटकर नहीं हैं। बीसवीं सदी की इस मीरा को इस पुस्तक-माला में जो प्रथम स्थान मिला वह सब भाँति उचित ही है।

—रा० ना० श०।

——

भारतवर्ष का इतिहास (आदियुग से गुप्त साम्राज्य के अंत तक)—लेखक पं० भगवद्दत्त बी० ए०, लाहौर; प्रकाशक वही, वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लाहौर; प्रथम संस्करण १९४०, साँची—७½"×१०", पृष्ठसंख्या ५+३६२, मोटा कागद, पक्की जिल्द, मूल्य १५)।

नंदवंश के पूर्व का भारतीय (१) राजनैतिक इतिहास, (२) राजाओं की वंशावलियाँ और (३) उनका कालानुक्रम बड़े ही विवाद का विषय है। एक ओर विद्वानों का वह दल है जो कहता है कि उस लंबे युग का कोई इतिहास प्रस्तुत करना असंभव है। वैदिक साहित्य में राजाओं के अनेक नाम अवश्य मिलते हैं, किंतु वे न तो कालानुक्रम से बैठाए जा सकते हैं, न उनका राजनैतिक इतिहास ही प्राप्त है। फलतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम उस काल का केवल सांस्कृतिक इतिहास निर्माण कर सकते हैं और राजनैतिक इतिहास की कुछ प्रथाओं तथा जनपद-सीमा आदि को ही जान सकते हैं। दूसरा पक्ष इसका प्रतिषेध करता है। वह कहता है कि ये पुराण-इतिहास—अष्टादश पुराण और रामायण, महाभारत—हैं क्या? इनका वर्तमान रूप चाहे जो हो, मूलतः इनमें प्राचीनतम काल से लेकर महाभारत-काल तक का इतिहास और वंशानुक्रम निहित है जिनके आधार पर उस काल का इतिहास खड़ा किया जा सकता है और समयावली भी बनाई जा सकती है। यही नहीं, कुछ देशी और विदेशी विद्वानों ने इस ओर स्तुत्य प्रयत्न किया भी है। इनमें सर्वश्री त्र्यंबक गुरुनाथ काले, पार्जिटर, हरप्रसाद शास्त्री, सीतानाथ प्रधान, किर्फेल, जायसवाल और जयचंद्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पार्जिटर ने तो अकाट्य युक्तियों द्वारा पुराणों की प्रामाणिकता ही नहीं प्रतिपादित की है, उनके सहारे उस लंबे काल के इतिहास का निर्माण भी किया है और निर्विवाद रूप से दिखा दिया है कि तथाकथित संहिता-काल, ऐतिहासिक काव्य-काल, ब्राह्मण-काल, उपनिषद्-काल आदि नामकरण भ्रामक एवं सदोष हैं। वस्तुतः इनका समय बहुत कुछ एक दूसरे को छोपे हुए है जिसका ठीक ठीक समीकरण और 'दरेसी' पुराण-इतिहास के प्रकाश और रोलर द्वारा ही संभव है।

हाल में ही पंजाब के ख्यातनामा विद्वान् और वैदिक पंडित श्री भगवद्दत्त बी० ए० ने इस विषय में बहुत ही स्तुत्य प्रयत्न किया है और इतना नया मसाला बटोर दिया है जिससे विद्वानों का बहुत उपकार संभव है। समीक्ष्य इतिहास के रूप में यह मसाला उन्होंने सुलभ कर दिया है। कितनी ही आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होंने इस पुस्तक का प्रकाशन कराया है और अब भी वे बराबर इस प्रकार की सामग्री बटोरने में जुटे हुए हैं। उनका विचार है कि समय अनुकूल होते ही उसे भी जनता के समक्ष उपस्थित कर दें।

प्रस्तुत पुस्तक के सब निष्कर्षों से सहमत होना संभव नहीं। इन निष्कर्षों के संबंध में यह भी पाया जाता है कि कहीं कहीं विद्वान् लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने तथाकथित देशी-विदेशी दृष्टिकोण से आशंकित होकर अपने पूर्ववर्ती पथिकृत् आचार्यों पर व्यर्थ आक्रमण किया है। किसी से सहमत होना वा न होना दूसरी बात है, व्यर्थ उसे दोषी बना देना दूसरी। फिर भी यह बात निःसंकोच रूप से कही जा सकती है कि इस कृति द्वारा विद्वान् लेखक ने भारतीय अनुशीलन को आगे बढ़ाया है और हमें ऐसी सामग्री दी है जो अब तक अप्राप्त थी और जिससे अपने विगत के पुनर्निर्माण में हमें बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी। इस स्तुत्य कार्य के लिये श्री भगवद्दत्तजी को बधाई है और उनके इतिहास का हार्दिक स्वागत।

पुस्तक में शब्दानुक्रमणी की कमी बहुत खटकती है। उसके बिना पुस्तक का वास्तविक उपयोग असंभव-सा हो जाता है। अगले संस्करण में वह अवश्य लगा देनी चाहिए।

संत-समागम—एक ब्रह्मनिष्ठ संत के उपदेश—प्रकाशक रायबहादुर मदनमोहन वर्मा एम० ए०, सेक्रेटरी बोर्ड आव हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजूकेशन, राजपूताना, सेंट्रल इंडिया एंड ग्वालियर, अजमेर; पृष्ठ-संख्या २५७; मूल्य १)।

संतों की पूजा संसार सदा ही से करता चला आया है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है 'संत समागम सम न लाभ कछु आन'। कुटी में बैठने के बजाय पुस्तकों में बैठकर संत लोगों ने अधिक उपकार किया है। इस प्रकार उनका प्रभाव उनके नश्वर भौतिक जीवन का अतिक्रमण कर काल की उपेक्षा करता दीख पड़ता है। 'संत-समागम' इसी कोटि की पुस्तक है। महात्मा जी ने अपना नाम न देकर ठीक ही किया है, कारण कि त्रिकाल का सत्य कहनेवाला 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' ही हो सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक कोई सुसंबद्ध आध्यात्मिक ग्रंथ न होकर विविध प्रश्नों के उत्तर-रूप में है। इसमें केवल धार्मिक प्रश्नों का ही अंतिम उत्तर नहीं दिया गया है, बल्कि समाज, राजनीति, आचार-विचार संबंधी प्रश्नों पर भी उसी आदर्श भारतीय दृष्टिकोण से विचार किया गया है। वर्तमान युद्ध के बारे में (पृ० ८५) महात्मा जी का कहना है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राष्ट्र अथवा समाज अथवा व्यक्ति विषयासक्ति के कारण उस सुख को स्वीकार करता है जो किसी का दुःख होता है। अर्थात् किसी को दुःख देकर सुख लेता है।......जिस सुख का जन्म ही दुःख से हुआ है वह अंत में महादुःख के सिवाय और क्या होगा ?......पशुबल से अभिमानी राष्ट्र आदि उन दुखियों के संकल्प की ओर देखने की दृष्टि बंद कर लेते हैं। परंतु उन्हीं दुखियों के संकल्प से पशुबल के अभिमानी राष्ट्र, समाज तथा व्यक्ति के मिटाने के लिये शक्ति उत्पन्न हो जाती है। बस, यही वर्तमान युद्ध का कारण है।"

अध्यात्म क्षेत्र में तो महात्मा जी के वाक्य 'नावक के तीर' की नाईं हृदय में पैठ कर कसकते रहते हैं। यदि इनका ध्यान सदा बना रहे तो व्याकुलता—जिसको जाग्रत करने, पैदा करने, बढ़ाने का उपदेश प्रसंगवश कई स्थलों पर (पृ० ११०, १७१, २३९) किया गया है—स्वतः उत्पन्न होकर ठिकाने लगा सकती है।

साधारण पाठकों को सहसा इस बात का विश्वास नहीं हो सकता कि ये सब विचार किशोरावस्था में अंधे होकर इधर उधर ढुलकते हुए व्यक्ति के हैं जिसने किसी 'थोथी पोथी' को नहीं पढ़ा है पर जिसके प्रत्येक शब्द का समर्थन सभी काल तथा सभी देशों के ग्रंथ-शिरोमणि करते हैं।

संत-समागम के छपने से कम से कम यह तो स्पष्ट हो गया कि भारत में जो आज चतुर्दिक् जाग्रति हो रही है उसमें साधु-समाज पीछे नहीं है। 'विशेष ज्ञान रखने के कारण ब्राह्मण जगद्गुरु कहलाता है...सच्चा संन्यासी ब्राह्मण का भी गुरु कहलाता है'—पृ० २९। भारत के लिये वह सौभाग्य का युग होगा जब ऐसे पूजनीय महात्मा जगह जगह अनायास मिल जाया करेंगे। जब तक ऐसा नहीं होता, हम लोगों को 'संत-समागम' ही से काम चलाना चाहिए। इसके लिये उक्त महात्माजी के अतिरिक्त रायबहादुर श्री मदनमोहनजी वर्मा भी हम लोगों के धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने 'कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हूँ।'

पुस्तक की छपाई और तैयारी प्रशंस्य है। एक खटक अनुक्रमणिका का अभाव है। आशा है, अगले संस्करण में इसे जोड़कर पुस्तक का संपादन यथेष्ट पूर्ण कर दिया जायगा। —(राय) कृष्णदास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रूफ-रीडिंग—लेखक तथा प्रकाशक श्री विष्णुदत्त शुक्ल; शुक्ल प्रेस, ७।१ बाबूलाल लेन, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या ५२, मूल्य ।⅃ ।

संवत् १९९५ की ना० प्र० पत्रिका में पृष्ठ ४४३-४४४ पर 'मुद्रण-प्रवेश और कंपोज-कला' की समीक्षा की गई थी। उक्त पुस्तक में लगभग १८ पृष्ठों में प्रूफ-संशोधन का ब्योरा सचित्र समझाया गया है और इस पुस्तिका में भी उसी विषय का वर्णन है। इसमें प्रूफ-संशोधन का आरंभिक इतिहास भी दिया गया है।

जो लोग प्रूफ-संशोधन का कार्य सीखना चाहते हों उनके लिये यह पुस्तिका सहायक का काम दे सकती है। प्रूफसंशोधन के अतिरिक्त उस कार्य से संपर्कित और और बातें भी समझाई गई हैं जिससे संशोधक को सहायता मिलेगी। हिंदी में संशोधन का कार्य प्रायः अल्पशिक्षित लोग ही करते हैं। बात यह है कि इस पेशे में पारिश्रमिक स्वल्प मिलता है, दूसरे इस पेशे का तादृश समादर भी नहीं, इससे शिक्षित व्यक्ति इस ओर कदाचित् ही आता है। पर अँगरेजी में यह बात नहीं है। इस विषय में प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकंस की सम्मति देखिए—"थोड़े से व्यावहारिक अनुभव के बाद मैं यह समझ पाया हूँ कि प्रूफ-रीडर के कर्तव्य क्या हैं और वह इन कर्तव्यों का पालन कितनी सावधानी से करता है।... उसका काम यंत्रों के काम की भाँति निर्जीव नहीं है प्रत्युत उसके काम में स्वाभाविक बुद्धिमत्ता, उच्च रीतिमत्ता, खोज निकालने की तत्परता, तीव्रातितीव्र स्मरण शक्ति और बारीक सूझ की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। मैंने जो किताबें लिखी हैं उनमें जो छोटी मोटी गलतियाँ, असंगतियाँ आदि छूट गई थीं उन्हें संशोधकों ने सुझाया और तब मैंने ठीक किया। संभवतः मेरी ही भाँति अन्य लेखक-लेखिकाओं को भी प्रूफ रीडरों से लाभ हुए होंगे।" ऐसी योग्यता के संशोधक हिंदी में स्वल्प मिलेंगे और उनके परिश्रम को समझनेवाले तो और भी कम निकलेंगे।

'प्रूफ-रीडिंग' में जिस विषय का प्रतिपादन है उसका असली प्रयोग उसमें कम हुआ है। यह बड़े खेद की बात है। प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में छापे की भूलें हैं। प्रूफ-संशोधन के उदाहरण के लिये जो ब्लाक छापा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसमें तक घु के स्थान पर धु है। फिर भी पुस्तक की उपयोगिता स्वीकार करनी पड़ती है।

—ल० पां०।

हिंदी नाट्य साहित्य—लेखक श्री व्रजरत्नदास बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस; मूल्य १।।।) ।

लेखक ने भूमिका में कहा है कि "नाटक, उपन्यास, पत्र-पत्रिकादि पर इस प्रकार के यथासाध्य विस्तृत इतिहास तैयार कर लिए जायँ तो हिंदी-प्रेमियों को अपने बढ़ते हुए भांडार तथा उनके अभावों का पूरा पता मिल सके और वे उनकी रक्षा तथा पूर्ति का प्रबंध कर सकें। कुछ ऐसे ही विचारों से यह 'हिंदी नाट्य साहित्य' तैयार किया गया है।"

हिंदी साहित्य का अध्ययन करनेवालों के लिये कोई भी ऐसा पुस्तकालय नहीं है जहाँ हस्तलिखित और मुद्रित हिंदी ग्रंथ सब इकट्ठे मिल सकें। कहीं ऐसी तालिका भी नहीं मिलती कि जिससे जिज्ञासु को ज्ञात और प्रकाशित ग्रंथों का नाम और पता भी मिल जाय। इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि कोई एक संस्था इस प्रकार प्रयास करके अध्ययन और खोज के लिये सामग्री इकट्ठी कर दे। आलोच्य ग्रंथ में एक प्रकार से सभी ज्ञात और प्रकाशित नाटकों की सूचना दी गई है। संवत् १६९३ से लेकर सं० १९९५ तक के (हिंदीवाले अर्थ में) नाटक नाम के हिंदी के सभी ग्रंथ चाहे वे पद्यबद्ध उपदेश हों, प्रचार ग्रंथ हों, अनुवाद हों अथवा सुंदर मौलिक नाटक हों, ले लिए गए हैं। जहाँ तक मेरी जानकारी है, बड़े बड़े पुस्तकालयों में भी इन सबका संग्रह नहीं है। अतः पहला लाभ तो पुस्तकालयों का है कि वे इससे अपने संग्रहों को पूर्ण बना सकते हैं।

लेखक ने भूमिका में यह प्रार्थना भी की है कि यदि साधन की कमी के कारण किसी नाटककार का कोई नाटक छूट गया हो तो सूचना मिलने पर उसका नाम जोड़ दिया जायगा। इस पर भी पाठकों का ध्यान हिंदी-हित के विचार से अवश्य जाना चाहिए। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा और प्रयाग के भारतीय हिंदी साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्थाओं के संग्रहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक अवश्य होनी चाहिए। इतिहास लिखने और पढ़नेवाला व्यक्ति जानता है कि ऐसा न होने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में कितनी कमी रह गई है। इस प्रकार दूसरा लाभ नाट्य साहित्य का इतिहास लिखने पढ़नेवाले का है। प्रत्येक व्यक्ति अब इस ग्रंथ के द्वारा जानकारी हो जाने पर मूल नाटकों को प्राप्त कर स्वतंत्र अध्ययन और आलोचन कर सकता है।

अब तीसरी बात है परीक्षार्थियों और सामान्य विद्यार्थियों की। उन्हें आवश्यकता होती है शास्त्रीय विवेचना अथवा व्याख्यात्मक आलोचना की। पर स्वयं लेखक ने कहा है कि इस ग्रंथ में "नाटकों पर जो कुछ विवेचना की गई है और जो कुछ निजी राय दी गई है वह सब स्वतंत्र रूप से मेरी ही है"। हमने आद्योपांत पढ़कर देखा है कि वैसी राय शायद ही किसी दूसरे विद्वान् की हो। जो स्वयं विशेषज्ञ और मर्मज्ञ हैं उन्हें तो श्री व्रजरत्नदासजी की 'स्वतंत्र' और 'निजी' राय से सुख मिल सकता है, पर विद्यार्थियों का कुशल तो इसी में है कि वे इन रायों पर असावधान होकर विश्वास न करें। विद्यार्थियों को तो उन्हीं निर्णयों और व्याख्याओं को पढ़ना चाहिए जिनके लिये पूरे प्रमाण दिए गए हों। प्रस्तुत नाट्य साहित्य के लेखक ने प्रमाण नहीं दिए हैं। शायद ऐसा करने से ग्रंथ-विस्तार का भय था। कारण चाहे जो हो, यह प्रमाण का अभाव आदि से अंत तक देख पड़ता है। अर्थात् रस, वृत्ति आदि पर भी जो लिखा गया है उस पर भी यह बात घटती है। अंत में एक बात है कि इस ग्रंथ की रूपरेखा लेकर यदि कोई अध्यापक अथवा परीक्षार्थी स्वतंत्र अध्ययन करे अथवा लिखे तो उसे पूरा लाभ होगा।

आदि के उद्धरण का ध्यान करके कि यह ग्रंथ तो नाटकों के 'भंडार और अभावों का पूरा पता' देने के लिये लिखा गया है, यह आलोचना ही व्यर्थ हो जाती है। केवल असावधान और सुकुमारमति विद्यार्थियों को बचाना ही इसका एक प्रयोजन हो सकता है।

अंत में कोई भी हिंदी-प्रेमी यही कहेगा कि हिंदी साहित्य के काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी अंगों पर इस प्रकार के ग्रंथ निकलने चाहिए। उनकी आलोचना और काटछाँट के द्वारा ही सच्चा कार्य आगे बढ़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अनुभवी लेखक का ध्यान हम 'रचेता', 'अंतर्प्रकृति' जैसे असाधु शब्दों, सन्-संवत् के खिचड़ी व्यवहार, संयोजक चिह्नों के अनिश्चित प्रयोग आदि की ओर दिलाकर आशा करते हैं कि अगले संस्करण का अवसर मिलने पर वे पुस्तक में अन्य सुधारों के साथ इनका भी विचार रखेंगे।

सबेरा, संघर्ष और गर्जन—लेखक श्री भगवतशरण उपाध्याय, एम० ए०; प्रकाशक सरस्वती-मंदिर, जतनबर, बनारस।

मानव-तरंगिणी की ये तीन तरंगें निकल चुकी हैं। पहली का नाम है सबेरा जिसमें मानव-जाति के 'सबेरा' से लेकर ऋग्वेद के 'समनोत्सव' तक का संस्कृति-काल अंकित करनेवाली दस कहानियाँ हैं। संघर्ष नामक दूसरी तरंग में सातवीं शती ई० पू० से तीसरी शती ई० पू० तक के इतिहास को अंकित करनेवाली दस कहानियाँ हैं और गर्जन नामक तीसरी तरंग में समय-प्रसार है तृतीय शती ई० पू० से द्वितीय शती ई० तक। इन तीन तरंगों में चित्रित 'गतिमती मानवता के इतिहास' को पढ़ने से इतना निश्चित हो जाता है कि इन कहानियों के विद्वान् लेखक का प्राचीन साहित्य और इतिहास पर ही नहीं, हिंदी-साहित्य की भाषा और शैली पर भी पूरा अधिकार है। आपकी चित्र उपस्थित करने की शक्ति भी मोहक है। ऐसी ख्यातवृत्त कहानियों में दो बातों का डर रहता है। या तो वे नीरस इतिवृत्त बन जाती हैं अथवा वे इतिहास की सचाई खो देती हैं। मानव-तरंगिणी में इन दोषों का न रहना हिंदी के इस नवागंतुक लेखक की कुशलता का प्रमाण है।

यद्यपि हम जानते हैं कि इन कहानियों में चित्रित दृष्टि-कोण अनेक विद्वानों और विशेषकर भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि-कोणवाले इतिहासज्ञों से भिन्न है तथापि वह इस आधुनिक युग की खोज का फल है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। इन कहानियों पर दूसरा आक्षेप यह हो सकता है कि इनमें बीते युग का संदेश है पर यह तो लेखक का उद्देश्य ही मालूम पड़ता है।

इन दोषरहित कहानियों के गुणों को परखकर प्रत्येक समानधर्मा पाठक कर्त्ता से यही कहेगा कि मुझे ये कहानियाँ अच्छी लगी हैं, आप और लिखिए।

—पद्म।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखनी उठाने के पूर्व या लेखक-बंधु—लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० (श्री भारतीय); प्रकाशक 'लेखक'-कार्यालय, शारदा प्रेस, प्रयाग; आकार ६॥"×४", पृष्ठ २४०, सुंदर तैयारी; मूल्य १॥)।

इस पुस्तक में हिंदी में लेखन-कला संबंधी साहित्य की कमी की पूर्ति के लिये प्रकाशित 'लेखक' पत्र के दो वर्षों में उसके संपादक श्री भारतीय के समय समय पर निकले लेखन-कला तथा पत्रकार-व्यवसाय संबंधी लेखों में से कुछ संगृहीत हैं। नवयुवक लेखकों के लिये यह संग्रह प्रकाशित है और लेखक-ग्रंथमाला की यह प्रथम पुस्तक है। इसमें 'लेखनी उठाने के पूर्व, हम किस पर लिखें?, कवि-चर्य्या या लेखक-चर्य्या, जब हम लिखने बैठें, शैली, कहानी कैसी हो?, कहानी और कहानी लिखना, उपन्यास-रचना, रूपक और रेडियो-ड्रामा, हास्य और उसकी सृष्टि, बच्चे क्या पढ़ना चाहते हैं?, लोमहर्षक आख्यान, उपनाम की आवश्यकता, रचनाओं का नामकरण, सफल पत्रकार, कापीराइट कानून, सफलता की कुंजी और प्रूफ-संशोधन' इस क्रम से ये १८ लेख हैं और अंत में 'स्वांतःसुखाय' शीर्षक एक लघु लेख जोड़ दिया गया है।

लेखनी उठाने के पूर्व लेखन-कला अर्थात् लेखन-कौशल का अभ्यास अपेक्षित है। लेखन-कर्म की सिद्धि के लिये शास्त्रीय निपुणता के साथ इस अभ्यास का अधिकार आवश्यक है। अतः साहित्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र के साथ कविशिक्षा की पुस्तकें प्रस्तुत होती रही हैं। इस व्यवसाय-युग में लेखन-कर्म एक स्वतंत्र व्यवसाय भी हो रहा है। इससे आधुनिक लेखन-कला की शिक्षा में व्यवसाय-विचार अवश्य रहता है। योरपीय साहित्य में ऐसी शिक्षा-पुस्तकें बहुत प्रस्तुत होती रहती हैं। इनमें कुछ साहित्यशास्त्र तथा साहित्य के आदर्शों पर आधारित लेखन-कला की व्यवसाय-विचार-युक्त शिक्षा देती हैं और बहुतेरी प्रायः व्यवसायपरक ही होती हैं।

हिंदी में आधुनिक लेखन-कर्म की शिक्षा की पुस्तकों की बड़ी शोचनीय कमी है। 'लेखक-कार्यालय' ने इस ओर ध्यान दिया है। उसका प्रस्तुत प्रकाशन अभिनंद्य है। ऊपर दी हुई सूची से प्रकट है कि इस पुस्तक का विषय-क्षेत्र व्यापक तथा आधुनिक उपयोग का है। कविता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवसाय की ठीक बाँध में लाई नहीं जा सकी है, अतः ऐसी आधुनिक पुस्तकों में उसका स्थान नहीं रहता। परंतु निबंध का इसमें स्थान होना आवश्यक था। आधुनिक लेखक तथा पत्रकार के लिये इसकी कला का अधिकार बहुत आवश्यक है। अपिच पुस्तक के विषय यथेष्ट क्रमबद्ध, प्रकरणों के समान परस्पर संबद्ध तथा पुनरुक्तियों से रहित होने चाहिए थे। यह पुस्तक लेखक के कुछ स्फुट लेखों का संग्रह ही है। परंतु इस संग्रह को पुस्तक की पूर्णता तथा एकता प्रदान की जा सकती थी।

विषय-प्रतिपादन में लेखक ने लेखन-शिक्षा-संबंधी अँगरेजी की आधुनिक पुस्तकों का बहुत उपयोग किया है। कविचर्य्या या लेखक-चर्य्या के विषय में राजशेखर की काव्यमीमांसा का भी उपयोग हुआ है। आधुनिक भारतीय लेखक का ध्यान रखकर पुस्तक के लेख लिखे गए हैं। अँगरेजी की आधुनिक पुस्तकों का उपयोग तो आवश्यक था, पर साथ ही संस्कृत की कवि-शिक्षा की पुस्तकों का यथेष्ट उपयोग भी वांछनीय था। परंतु यहाँ उपयोग अधिकतः व्यवसायपरक पुस्तकों का ही हुआ है। कला के प्रतिपादन में शास्त्र-निर्देश की, यथोचित विवेचन की उपेक्षा है। शैली के प्रसंग में तो लेखक ने "हम लेखक हैं, साहित्य के समालोचक नहीं" यह लिखकर लेखकों के लिये शास्त्र-ज्ञान और समालोचकों के लिये कला-ज्ञान अनपेक्षित ही घोषित कर दिया है! 'स्वांतःसुखाय' की भावना का लेखक ने अनेक स्थलों में निषेध करके अंत में उसके प्रति बड़ी सरसता दिखाई है। अँगरेजी की कुछ पुस्तकों के समान इस पुस्तक के प्रकरणों के अंत में सहायक शास्त्रीय पुस्तकों का नाम-निर्देश ही कर दिया गया होता तो बहुत उपकार हो जाता। अँगरेजी पुस्तकों की छाया प्रस्तुत करने में लेखक को कितने ही स्थलों में उनके उद्धरणों तथा प्रयोगों के हिंदी-अर्थ देने का ध्यान ही नहीं रहा है। शायद यह पुस्तक ऐसे अँगरेजी जाननेवाले हिंदी लेखकों के लिये ही तैयार की गई है जो उस भाषा की ऐसी पुस्तकें पढ़ या समझ नहीं सके हैं।

पुस्तक के विषय-क्षेत्र की व्यापकता और उपयोगिता का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसमें 'रूपक और रेडियो ड्रामा', 'कापी राइट कानून' और 'प्रूफ-संशोधन' के विषय विशेष अच्छे लिखे और उपयोगी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक चलती लेखनीवाले, अनुभवी लेखक की है। इसकी भाषा इसके उद्देश्य के अनुरूप सरल, व्यास-शैली की और व्यावहारिक है। इसमें बीच बीच का अँगरेजीपन खटकता है। प्रूफ-संशोधन भी सिखाने वाली इस पोथी में प्रूफ-संशोधन की चूकें विशेष खटकती हैं। इस विषय के लेख में भी ये वर्तमान हैं। उपनामवाले लेख में यह शब्द एक बार 'उपमान' और एक बार 'उनापम' बना पड़ा है! पर अन्वीक्षण के स्थान पर बराबर 'अनुवीक्षण', विशद के स्थान पर बराबर 'विषद' जैसे कुछ रूपों को क्या कहा जाय? ये तो विष-द ही हैं!

लेखक का हिंदी में लेखन-शिक्षा के महत्त्वपूर्ण, पर उपेक्षित क्षेत्र की ओर ध्यान देकर पुस्तक प्रस्तुत करना बहुत अभिनंद्य है। 'नवयुवक लेखकों' के लिये यह पुस्तक साधारणतः बहुत उपयोगी, उनका हितैषी 'बंधु' है। आशा है कि वे इसका ऐसा स्वागत करेंगे कि इसका यह संस्करण शीघ्र समाप्त हो जायगा और लेखक को दूसरे संस्करण में इसे यथेष्ट संशोधित तथा संवर्धित और यथेष्ट उपादेय रूप में प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा।

गुलेरी जी की अमर कहानियाँ—संपादक और प्रकाशक श्री शक्तिधर गुलेरी एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, ओरिएंटल डिपार्टमेंट, प्रयाग-विश्वविद्यालय; पृष्ठ १६+७६, सचित्र; मूल्य ॥)।

स्वर्गीय पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी अनोखी प्रतिभा से एक ही कहानी में अमर व्यंजना रचकर जनसाधारण में उसी के यश से अमर हो रहनेवाले चमत्कारी साहित्यकार के रूप में हिंदी-संसार में स्मरणीय रहे हैं। उस अमर कहानी 'उसने कहा था' के साथ अब उनकी दो और कहानियाँ—'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा'—उपलब्ध हैं और ये तीनों इस पुस्तक में संगृहीत हैं यह बड़े हर्ष की बात है। इसके साथ बड़ी प्रसन्नता की बात यह है कि इस हर्ष के उपस्थापक स्वर्गीय गुलेरी जी के सुयोग्य आत्मज हैं।

पुस्तक गुलेरी जी के प्रतिभाशाली प्रिय शिष्य स्वर्गीय राजा जयसिंह (खेतड़ी) को समर्पित है। प्रो० अमरनाथ झा की भूमिका और संपादक के वक्तव्य के बाद 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस क्रम से ये कहानियाँ संगृहीत हैं। यही क्रम इनकी रचना का ज्ञात हुआ है। पहली कहानी सन् १९११ में 'भारत-मित्र' में और तीसरी सन् १९१५ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। दूसरी के प्रकाशन का ठीक पता नहीं लगा है; परंतु रचना के विचार से यह उक्त दोनों के बीच के काल की ज्ञात हुई है, अतः इसका स्थान दूसरा है। पुस्तक गुलेरी जी की तीन अवस्थाओं के फोटो-चित्रों से भूषित है।

गुलेरी जी की प्रतिभामयी सहृदयता, भाव तथा भाषा की मार्मिकता और व्यंजना-कुशलता का सरस परिचय इस संग्रह के प्रत्येक पृष्ठ पर होता है। तीनों कहानियों का लक्ष्य प्रकृत चरित्र का अंकन और यथार्थ जीवन की व्यंजना है। 'सुखमय जीवन' में इसी नाम की एक पुस्तक के लेखक, अनुभव तथा शालीनता से शून्य आधुनिक शिक्षा के एक नवयुवक को यथार्थ जीवन के अनुभव के द्वारा सच्चे सुखमय जीवन की सीख मिलती है। 'बुद्धू का काँटा' में एक आधुनिक पढ़े-लिखे, जीवनसंसर्गशून्य बुद्धू को उस संसर्ग में पहुँचकर प्रकृत प्रेम का काँटा चुभता है जिसकी कसक से उसे समझ मिलती है और उसका अधूरा जीवन पूरा होता है। 'उसने कहा था' की कहानी तो प्रसिद्ध ही है। तीनों ही बारबार पढ़ने और रस लेने की वस्तु हैं। इन कहानियों, के रचना-क्रम के अनुसार ही गुलेरी जी की कला का विकास हुआ है, इनमें उत्तरोत्तर उत्कर्ष है। तीसरी कहानी, सबसे नपी-तुली, चुस्त और चुटीली है। यह तो विश्व की श्रेष्ठ कहानियों में गण्य है। गुलेरी जी की कला का आगे कैसा और विकास होता! परंतु यह हिंदी के भाग्य में न था। कहीं उनकी कुछ और कहानियाँ पड़ी तो नहीं हैं?

अपने वक्तव्य में संपादक ने 'गुलेरी-ग्रंथ' का निर्देश किया है जिसमें गुलेरी जी की समस्त हिंदी-कृतियों का संग्रह और उनकी जीवनी होगी। नागरी-प्रचारिणी सभा इसका प्रकाशन कर रही है। आशा है, गुलेरी जी के सुयोग्य पुत्रों और उनके संबंधियों तथा मित्रों के यथेष्ट सहयोग से इस ग्रंथ का संपादन यथेष्ट सफल होगा।

गुलेरी जी की अमर कहानियों के इस संग्रह का अवश्य ही हिंदी-संसार में विशेष हर्ष और कृतज्ञता से स्वागत होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श नरेश—श्री० राजा अजीतसिंह जी बहादुर खेतड़ी का जीवनचरित्र। लेखक पं० झाबरमल्ल शर्मा; प्रस्तावना-लेखक डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा डी० लिट०; प्रकाशक शेखावाटी, हिस्टारिकल रिसर्च आफिस, जसरापुर—खेतड़ी (राजपूताना); पृष्ठ १२+३८३, सजिल्द, सचित्र; मूल्य २॥) ।

जयपुर राज्य के अधीन शेखावाटी प्रांत में स्थित खेतड़ी संस्थान के स्वर्गीय राजा अजीतसिंह जी बहादुर का यह जीवन-चरित्र एक बहुत आदरणीय प्रकाशन है। स्वर्गीय पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी के शब्दों में "राजा श्री अजीतसिंह जी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्या-प्रेमी हुए। गणित में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वे दक्ष और गुण-ग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामीजी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराजा श्री रामसिंह जी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्री अजीतसिंह जी ही में दिखाई दी।" स्वामी विवेकानंद जी ने उनके संबंध में कहा था कि "What little I have done for the improvement of India would not have been done if Rajaji had not met me." अर्थात् भारत की उन्नति के लिये जो थोड़ा कुछ मैंने किया है वह न किया गया होता यदि राजा जी मुझे न मिलते। राजा अजीतसिंह जी बहुपत्नी आदर्श चरित्र के नरेश थे। सारे देश में ही उनके यश का विकास हो रहा था। परंतु ४० वर्ष की ही आयु में, सन् १९०१ के आरंभ में, वे सहसा स्वर्गारोहण कर गए। उनकी यह जीवनी उनकी छोटी राजकुमारी, प्रतापगढ़ की राजमाता, बहुगुणवती श्रीमती चंद्रकुमारी देवी जी की इच्छा और इनके अनुज स्वर्गीय राजा जयसिंह जी के गुरुवर स्वर्गीय गुलेरी जी की प्रेरणा से खेतड़ी के ही निवासी, अनुसंधानप्रिय, अनुभवी लेखक पं० झाबरमल्ल शर्मा ने बड़ी भक्ति और अध्यवसाय से प्रस्तुत की है और इसे इन्हीं राजमाता के कर-कमलों में समर्पित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक में प्रस्तावना, लेखक के वक्तव्य और खेतड़ी के परिचय के बाद 'जन्म और खेतड़ी गोद बैठना; शिक्षा और गुणसंचय; जयपुरेंद्र की कृपा, विवाह, शासनाधिकार की प्राप्ति और सुव्यवस्था; प्रजाहित और कीर्तिकर कार्य; शिक्षानुराग और कविताप्रेम; श्री स्वामी विवेकानंद से भेंट, घनिष्ठता, सर्व धर्मपरिषद् में प्रेषण, पत्राचार और संभाषणादि; देश के विभिन्न भागों में भ्रमण; विलायत यात्रा और स्वदेश-प्रत्यागमन; कश्मीर-पर्यटन; जयपुर दरबार की अकृपा, अस्वास्थ्य और परलोकवास; रानी साहबा श्रीमती चाँपावत जी और उनकी संतानें' ये ग्यारह अध्याय हैं और अंत में 'श्री राजा साहब की स्मृतियाँ' शीर्षक एक परिशिष्ट है। पुस्तक बहुतेरे अवसरानुकूल चित्रों से संपन्न है।

उक्त अध्यायों की रूपरेखा में लेखक ने यथेष्ट अनुसंधान से सुविस्तृत तथ्य संकलित कर राजा साहब का बृहत् जीवन-लेखा ही प्रस्तुत किया है। पूरे पत्रों, भाषणों, डायरी के लेखों, नामसूचियों, आनुषंगिक व्यक्तियों के लघु जीवनवृत्तों एवं राजकार्य आदि के पूरे ब्योरों को परिशिष्टों में रखकर इनके चुने अंशों और प्रसंगों के उपयोग से राजा साहब के स्फुट जीवन-चरित्र का वर्णन वांछनीय था। परंतु राजा साहब से संबंधित सभी तथ्यों का ब्योरेवार संकलन और इसके द्वारा उनके जीवन का पूरा आख्यान ही लेखक का अभीष्ट ज्ञात होता है। इस प्रयत्न में वे यथेष्ट सफल हुए हैं। पुस्तक में राजा साहब के बहुपक्षी आदर्श जीवन के बहुत प्रामाणिक और उपादेय विवरण हैं। साथ ही बहुतेरे उपयोगी, आनुषंगिक विवरणों से पुस्तक भरी है। इस प्रकार के जीवन-चरित्र का यह एक आदर्श नमूना है।

पुस्तक की भाषा परिष्कृत और शैली विषयानुकूल है। इसकी छपाई और तैयारी भी अच्छी है।

स्वर्गीय राजा अजीतसिंह जी बहादुर का यह पुष्ट और प्रामाणिक जीवन-चरित्र अवश्य ही एक बहुत आदरणीय प्रकाशन है।

—कृ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंददास—संपादक पं० उमाशंकर शुक्ल एम० ए०; प्रकाशक—प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग; दो भागों में पृष्ठ ५९१ + ११७; मूल्य ६) ।

इस पुस्तक में प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवि नंददास जी के प्राप्य सभी ग्रंथों का वैज्ञानिक रीति से संपादन किया गया है। इसमें कवि के ११ ग्रंथों और कुछ पदों का संग्रह है। वे ११ ग्रंथ ये हैं—रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्याम-सगाई, भँवरगीत, रुक्मिनी-मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धांतपंचाध्यायी तथा दशम स्कंध। २८३ पदों में से केवल ३५ पद ही मूल मानकर रखे गए हैं। आरंभ में डा० अमरनाथ झा का वक्तव्य है और संपादक की ११७ पृष्ठों की लंबी-चौड़ी भूमिका है, जिसमें कवि की जीवनी, कविकृत प्रसिद्ध ग्रंथ, संपादित ग्रंथों का आधार, संपादन-विधि, काव्य-समीक्षा आदि पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत ये खंड रखे गए हैं—संदिग्ध तथा असंपादित सामग्री, प्रक्षिप्त सामग्री, पाठांतर, पदों की प्रथम पंक्ति की अकारादि क्रम से सूची और शब्दार्थ-कोष।

इस प्रकार नंददास के ग्रंथों का यह वैज्ञानिक रीति से किया हुआ संपादन है। संपादन बहुत अधिक परिश्रम और व्यय के साथ किया गया है। नंददास की रचनाओं पर अधिक काम करनेवाले के लिये अच्छी और अच्छे ढंग से संपादित सामग्री एकत्र कर दी गई है। पुराने काव्य का उद्धार करने की ओर प्रयाग विश्वविद्यालय की दृष्टि गई, यह बड़े आनंद की बात है। पर यहीं यह कह देना भी आवश्यक है, कि प्राचीन काव्यों के संपादन में वैज्ञानिक दृष्टि के साथ ही पूर्ण साहित्यिक दृष्टि भी अपेक्षित है। प्राचीन काव्यों की टीका-टिप्पणियों के रूप में यह साहित्यिक दृष्टि बहुत दिनों से परंपरा में गृहीत रही है। वैज्ञानिक दृष्टि आधुनिक दृष्टि है और साहित्य के काम में अत्यंत उपयोगी है, इसमें संदेह नहीं; पर साहित्यिक दृष्टि भी उतनी ही होनी चाहिए, जितनी वैज्ञानिक। इतनी बड़ी रचना के लिये टीका-टिप्पणी केवल १८ पृष्ठों की है और उसमें भी अशुद्धियाँ हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चीत्यौ' का अर्थ किया गया है 'चैतन्य, 'बुद्धिमान्', पर 'चीत्यौ' का अर्थ होता है 'मनचाहा'। पुस्तक से वह अंश ही उद्धृत किया जाता है—

'बैरी चीत्यौ जगत मैं तू जिनि करि करतार'

इसका सीधा और सही अर्थ यह है कि हे ईश्वर, तू शत्रु का मनचाहा संसार में मत कर।

'बितन' का अर्थ होता है 'कामदेव' पर उसका अर्थ दिया गया है—'फैला हुआ, विस्तृत'।

फटिक-छटा सी किरन, कुंज-रंध्रनि जब आई।
मानहुँ बितन बितान, सुदेस तनाव तनाई॥

'ढुकना' का अर्थ 'छिपना' या 'साथ 'लगना' होता है, पर इसमें 'ढुकि चलीं' का अर्थ दिया गया है 'शीघ्रतापूर्वक चलीं'। 'नाट' का अथ 'शरीर के भीतर टूटा हुआ फल या काँटा होता है'। व्रज में 'नटसाल' का व्यवहार बहुत अधिक होता है, उसी का यह संक्षिप्त रूप 'नाट' है पर इसका अर्थ इसे 'नाटक' का संक्षिप्त रूप समझ कर 'स्वाँग, तमाशा' किया गया है। प्रसंग देखिए—

तियतन बितन जु पंचसर, लगे पंच ही बाट।
चुंबक साँवरे पीय बिन, क्यों निकसत यह नाट॥

'चुंबक' के साहचर्य से भी 'नाट' का अर्थ 'लोहे का टुकड़ा' साफ भासित होता है।

'घनहर' का अर्थ व्रज में 'बादल' होता है, पर 'हर' को 'घन' से पृथक् करके 'घनहर घेरै' का अथ किया गया है—बादल मंद गति से गरज रहा है। वस्तुतः अर्थ है 'बादल गरजता है।'

संपादन के संबंध में भी दो उदाहरण इन टिप्पणियों से ही दिए जाते हैं—

पंकज पत्रन परव बनावै, उड़न लगै, सो क्यौं उड़ि आवै।—यहाँ 'परव' का अर्थ 'परेवा, कबूतर' किया गया है। मेरे विचार से यह 'पंख' शब्द है जो बिंदु के उड़ जाने से 'परव' पढ़ लिया गया है। 'परव' का अर्थ 'कबूतर' कहीं भी देखा नहीं गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरि आवैं जब लोचन पानी।
घूम पर्‌यौ तब कहै सयानी॥

'घूम पर्‌यौ' का अर्थ दिया गया है 'चक्कर आ गया।' मेरे ध्यान में यहाँ 'धूम पर्‌यौ' होना चाहिए। नायिका के नेत्रों में जब पानी (आँसू) आ जाता है, तो छिपाने के लिये वह सखियों से कहती है कि धूआँ लग गया है।

इस संबंध में इतना लिखने का कारण केवल कर्त्तव्य-बुद्धि ही है। वस्तुतः संपादक का परिश्रम प्रशंसनीय है। पर उन्होंने जितना परिश्रम किया, उसमें कुछ और सतर्कता अपेक्षित है। इस प्रकार के ग्रंथों के प्रकाशित होने से साहित्य का बड़ा लाभ है। प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग को इसके लिये बधाई है।

—वि० प्र० मिश्र।

काशी का मान-मंदिर

(अर्थात् काशी के मान-मंदिर तथा दिल्ली के जंतर-मंतर की प्रदर्शिका)

लेखक—श्री० चंडीप्रसाद, एम० ए०, बी-एस् सी०

इस पुस्तक में काशी के मान-मंदिर यंत्रालय का इतिहास और उसके विभिन्न यंत्रों का सुबोध विवरण दिया हुआ है। लेखक महोदयने महीनों परिश्रम करके उन यंत्रों से स्वयं वेध किया है और यह दिखाने की चेष्टा की है कि उन यंत्रों के द्वारा प्राप्त मान कहाँ तक ठीक हो सकते हैं। प्रसंगात् दिल्ली की जंतर-मंतर वेधशाला के यंत्रों का विवरण भी पुस्तक में है। प्रसिद्ध यंत्रों के चित्र भी दिए हुए हैं। व्यावहारिक ज्योतिषशास्त्र के आरंभिक ज्ञान के लिये भी पुस्तक उपादेय है। मूल्य ।=)

पता—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध

स्वामी अग्रदासजी

जयपुर के पुरोहित श्री हरिनारायण जी शर्मा, बी० ए०, विद्याभूषण ने 'संत' मासिक पत्र में सन् '४१ के अंत में एक लेख प्रकाशित कराया था। उसमें उन्होंने नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की 'हिंदी भाषा का विकास' नामक पुस्तक में दो भूलें सुधारने का प्रस्ताव सप्रमाण किया था। उक्त पुस्तक आजकल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से प्रसिद्ध है। उसके आरंभिक संस्करण में स्वामी अग्रदास जी को "महात्मा वल्लभाचार्य जी की शिष्य-परंपरा में, उनके प्रसिद्ध अष्टछाप के कृष्णदासजी पयहारी के शिष्य" लिखा गया था। वास्तव में यह स्थापना ठीक नहीं थी। इसी से उक्त पुस्तक के वर्तमान संस्करणों में अब उनके वल्लभाचार्य जी की शिष्य-परंपरा में होने का वर्णन न होकर उन्हें रामानंदजी के प्रशिष्य कृष्णदास पयहारी का शिष्य बतलाया गया है। इस स्पष्ट उल्लेख से कृष्णदास पयहारी का अष्टछाप के अंतर्गत होने का निराकरण अपने आप हो जाता है।

उक्त 'इतिहास' के लेखक आचार्य शुक्लजी से इस विषय में यह पूछ-ताछ करने का अब कोई सुबीता नहीं है कि आरंभ में पुस्तक में वैसी स्थापना किस आधार पर की गई थी।

उक्त लेख की टिप्पणी में पुरोहितजी ने लिखा है कि उन्होंने पुस्तक में संशोधन करने के लिये अपना लेख ना० प्र० पत्रिका के संपादक के पास भेजा था। परंतु पत्रिका में उसके प्रकाशित न होने पर उसे उन्हें 'संत' में प्रकाशित कराना पड़ा। पत्रिका के संपादकों में शुक्लजी भी थे। कदाचित् वह लेख उनके पास भेजा गया, पर उनके अनवकाश और रुग्णावस्था के कारण उसका प्रकाशन यथासमय न हो सका। अब तो सबके पास 'इतिहास' का परिवर्धित संस्करण है, इस कारण यह सूचना एक प्रकार से अनावश्यक है फिर भी जिनके पास 'विकास' की प्रति या 'इतिहास'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पुराना संस्करण है उनके लिये यह सूचना काम की है। वे अपनी प्रति में यह संशोधन अवश्य कर लें।

ऐसी उपयुक्त और महत्त्व की सूचना भेजने के लिये श्री पुरोहित जी धन्यवाद के पात्र हैं।

पत्रिका में स्थानाभाव के कारण यह सूचना इससे पहले उपस्थित न की जा सकी। इसके लिये श्री पुरोहितजी और पाठक कृपया क्षमा करेंगे।

—लल्लीप्रसाद पांडेय।

(भू० पू० प्रधान मन्त्री—'सभा)

संशोधन

(१) पद्मनीचरित्र का समय

'पत्रिका' के वर्ष ४६—पृष्ठ १८३ में पद्मनीचरित्र का रचनाकाल श्री अगरचंद नाहटा की सूचना के अनुसार डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने सं० १७०२ की पूर्व स्थापना के विरुद्ध १७०७ माना है। वहाँ उस ग्रंथ के समय-सूचक दोहे के 'बड़ोतरे' शब्द के संबंध में उन्होंने यह कल्पना की है कि संभवतः यह 'बरोतरे' शब्द का विकृत रूप है जिसका अर्थ 'बार-उत्तर' अर्थात् सात (वार सात होते हैं) अधिक है, अतः दोहे के "संवत् सतरे से बड़ोतरे" का अर्थ संवत् सात अधिक सत्तरह सौ (१७०७) है। परंतु इसे कल्पना ही मानकर उन्होंने इस संबंध में विद्वानों से कुछ अधिक प्रकाश की आशा की थी।

श्री रविशंकर देराश्री ने यह सूचना भेजी है कि पत्रिका के भाग १५ अंक २ में प्रकाशित 'गोराबादल की बात' शीर्षक लेख में इस ग्रंथ की रचना के समय-सूचक दोहे में "संवत सतरै = बिडौतरे" पाठ है। वे लिखते हैं कि "मेरे पास वि० सं० १७८१, ८२, ८३ के कई कर्ज के रुक्के हैं और उनमें ब्याज की शरह दर्ज है। जहाँ एक रुपया सैकड़ा व्याज है, वहाँ एक रुपया प्रति सदी की जगह 'डोतरा' शब्द लिखा है, जहाँ दो सदी है वहाँ 'बिडौतरा' और जहाँ ३ सदी है वहाँ 'तिडौतरा' लिखा हुआ है।...अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सतरै बिडौतरे' का अर्थ १७०७ न होकर १७०२ है।" पत्रिका के उक्त अंक के लेख के अंतिम दोहे में "संवत् सतरा सतोतरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चैत्री पूर्णम शनिवार" सं० १७०७ चैत्र शुक्ल शनिवार ही है। यह ग्रंथ-समाप्ति की सूचना है। अतः स्पष्ट है कि पद्मनीचरित्र का आरंभ सं० १७०२ में हुआ और इसकी समाप्ति सं० १७०७ में हुई।

इस उपयोगी सूचना के लिये श्री देराश्री को धन्यवाद।

(२) 'दाराशिकोह के फारसी उपनिषद्' शीर्षक लेख

पत्रिका के पिछले अंक में प्रकाशित उपर्युक्त लेख के प्रूफ-शोधन में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। इनका संशोधन उसके लेखक श्री शालिग्राम श्रीवास्तव ने ही भेजने की कृपा की है। वह इस प्रकार है—

	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८१	१२	پرتو	پرذو
२	,,	१५	خبط	ضبط
३	१८३	२३	درستگار	ورسگار
४	१८४	२१	درذله	داندله

इन अशुद्धियों के लिये हम खेद प्रकाश करते और इनके संशोधन के लिये लेखक को धन्यवाद अर्पित करते हैं। —कृ।

रामचरितमानस की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रति

रामचरितमानस की ज्ञात हस्तलिखित प्रतियों में सबसे प्राचीन तो १७०४ वि० की है जो १८९४ वि० से बनारस-राज्य के सरस्वती-भंडार में संगृहीत है; किंतु यह प्रति तादृश प्रामाणिक नहीं। इसमें क्षेपक तो हैं ही, कितने पन्ने भी बदले हुए हैं। समयानुक्रम से इसके बादवाली प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम १७२१ वि० की है। पाठ की शुद्धता की दृष्टि से यह प्रति सर्वोत्कृष्ट है। अब तक मानस के जितने प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हुए हैं, इस १७२१ वि० वाली प्रति को उन सब को आधार-प्रति कहना अनुचित न होगा।

पहले पहल इसका उपयोग श्री भागवतदास छत्री ने अपने स्मरणीय संस्करण में किया, जिसकी पहली आवृत्ति १९४२ वि० में और दूसरी १९५१ वि० में प्रकाशित हुई। उस समय यह प्रति उन्हीं के संग्रह में थी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यदि यह उन्हें प्राप्त न होती तो कह नहीं सकते, उनका संस्करण इतना प्रामाणिक हो भी पाता या नहीं।

छत्री जी के बादवाले संस्करणों में स्व० रामदास गौड़, बाबा सरजूदास, श्री विजयानंद त्रिपाठी और गीता प्रेस ने अपने प्रामाणिक संस्करणों के लिये मुख्यतः इसी प्रति को आधार माना। किंतु विचित्रता तो यह है कि उक्त किसी भी संस्कारक को यह प्रति प्राप्त न थी। भागवतदास जी के पंचत्व के उपरांत यह प्रति घूमते-घामते ऐसे ठिकाने पहुँच गई थी जिसका किसी को स्पष्ट पता न था। फलतः उक्त संस्कारकों ने इसके अभाव में या तो इसपर अवलम्बित भागवतदास जी के संस्करण का आश्रय लिया या इसकी एक प्रतिलिपि का, जिसे भागवतदास जी ने स्वयं प्रस्तुत करके अयोध्या के सद्गुरुसदन, गोलाघाट, को अर्पण किया था जहाँ वह आज तक सुरक्षित है और अवधपुरी का गौरवस्वरूप मानी जाती है।

अब यह लिखते अत्यंत हर्ष होता है कि मानस-मराल श्री शंभुनारायण जी चौबे की हार्दिक लगन और अथक परिश्रम द्वारा यह प्रति कोई पचास वर्ष के एकांतवास के उपरांत, भारत-कला-भवन में आ विराजी है। भवन के लिये यह परम गौरव, आनंद और सौभाग्य का विषय है। सैलाना राज्य के युवराज, हिंदी-साहित्य के सच्चे हितैषी और उदीयमान साहित्यिक महाराजकुमार श्री दिग्विजय सिंह जू, एम० ए० की पुष्कल दातव्यता से ही यह दुर्लभ प्रति कलाभवन को उपलब्ध हुई है, जिसके लिये वे भूरि भूरि साधुवाद के पात्र हैं। कला-भवन को आशा और विश्वास है कि उसके प्रति श्रीमान् का सद्भाव और औदार्य उत्तरोत्तर प्रवृद्ध होता जायगा।

वर्तमान प्रति बड़े अच्छे और पुष्ट सनिया कागज पर पत्राकार लिखी हुई है; पत्रों का माप $४\frac{३}{२} + ११\frac{१}{५}$ है, जिन पर सात सात पंक्तियाँ हैं। लिपिकर्ता के अक्षर जमे हुए हैं जिनसे वह पेशेवर लेखक जान पड़ता है। अक्षर वैक्रम अठारहवीं शती के हैं जिनपर मध्यकालीन छाया विद्यमान है। उत्तरकांड के अंत में यह पुष्पिका दी गई है जो लेखक की ही लिपि में है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने अविरलहरिभक्तिसंपादिनी नाम सप्तमसोपानः समाप्त ॥ शुभमस्तु ॥ संवत १७२१ वर्षे जेठ वदी दशमी ।

खेद है कि इस प्रति में अयोध्या कांड का अभाव है। जिन दिनों यह भागवतदास जी के पास थी, कोई सज्जन उसे देखने के लिये ले गए, किंतु फिर न लौटा गए। ऐसा अनुमान होता है कि वह कांड अभी कहीं न कहीं अवश्य है। मानस-प्रेमियों से कलाभवन का अनुरोध है कि उसे खोज निकालें और इस महत्त्वपूर्ण प्रति को समग्र बनाने का श्रेय प्राप्त करें।

—(राय) कृष्णदास ।

हिंदू राज्य-तंत्र

दूसरा खंड

(अनुवादक—बाबू रामचंद्र वर्मा)

यह पुस्तक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल कृत 'हिंदू पालिटी' का अनुवाद है। इसका प्रथम खंड, जिसमें प्रधानतः वैदिक समितियों तथा गणों का वर्णन है, सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है। दूसरा खंड नवभारतीय ग्रंथमाला के अंतर्गत श्री केदारनाथ बाबूलाल राजगढ़िया पुस्तकमाला के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसमें एकराज तथा साम्राज्य शासन-प्रणालियों का वर्णन है। विद्वान् लेखक ने भारतीय शासन-तंत्रों के संबंध में परिश्रमपूर्वक जो शोध किया है उससे भारत की गौरव-गरिमा पर नवीन प्रकाश पड़ता है। दूसरे भाग की पृष्ठ-संख्या ४२२; नयनाभिराम छपाई और आकर्षक सज-धज; मूल्य सादी २); सजिल्द २।) ।

पता—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की प्रगति

विशेष कारणों से खोज-विभाग के अन्वेषक श्री दौलतराम जुयाल आजमगढ़ से काशी बुला लिए गए हैं और यहाँ कार्य कर रहे हैं। श्री महेशचंद्र गर्ग, एम० ए० के अलग हो जाने से इस विभाग में जो स्थान रिक्त हुआ था उसपर श्री उदयशंकर त्रिवेदी नियुक्त कर लिए गए हैं। वे भी इस समय काशी में ही कार्य कर रहे हैं।

श्रावण १९९९ के अंत में आर्यभाषा पुस्तकालय में हिंदी की मुद्रित पुस्तकों की संख्या १६३६१ थी। इस छमाही में २२५ नवीन पुस्तकें आईं। इस अवधि में ५१ नए सहायक बने तथा १६ सहायकों ने अपना नाम कटा लिया। इस प्रकार माघ ९९ के अंत में सहायकों की संख्या १७७ रही। पुस्तकालय १४३ दिन तथा वाचनालय १७८ दिन खुला रहा।

रायबहादुर साहित्यवाचस्पति डा० श्यामसुंदरदास जी ने अपना संग्रह, जिसमें हिंदी, अँगरेजी और उर्दू के ५२८ उपयोगी ग्रंथ तथा हिंदी की कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी हैं, इस अवधि में पुस्तकालय को प्रदान करने की कृपा की है। इस संग्रह का मूल्य अनुमानतः ९००) है। डाक्टर महोदय की इस उदारता के लिये सभा उनके प्रति आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

स्व० आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के इच्छानुसार उनके भानजे श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी जी ने उनके संग्रह की शेष पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी सभा को प्रदान कर दी हैं। दिवंगत आचार्य की इच्छा-पूर्ति के लिये सभा त्रिपाठी जी को हार्दिक धन्यवाद देती है। जिन अन्य सज्जनों ने इस अवधि के भीतर पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं से सभा की सहायता की है, उनमें काशी के श्री कमलनाथ अग्रवाल का नाम उल्लेखनीय है। सभा उन्हें तथा अन्य उदार दाताओं को हृदय से धन्यवाद देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच कलाभवन में राजघाट-मंदिर की सजावट होती रही एवं वहाँ की प्राप्त मुहरें पढ़ी गईं। इस संबंध में सभा के खोज-विभाग के अन्वेषक श्री उदयशंकर त्रिवेदी ने विशेष परिश्रम किया। प्रांतीय संग्रहालय के संग्रहाध्यक्ष डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने सजावट के संबंध में बहुत उपयोगी सूचनाएँ दीं। राजघाट से प्राप्त सामग्री का जो अंश अभी कलाभवन में नहीं आ सका है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न भी होता रहा। कुछ उत्कृष्ट पहाड़ी चित्र क्रय किए गए। पुरातत्त्व-विभाग की ओर से श्री एस० घोष तथा श्री के० पी० श्रीवास्तव ने इस अवधि में कलाभवन का विशेष रूप से निरीक्षण किया। इस अवधि में सहायक संग्रहाध्यक्ष अध्ययनार्थ बाहर भेजे गए थे। अपनी यात्रा में उन्होंने पूना और बंबई के प्रसिद्ध प्रसिद्ध संग्रहालयों तथा एलिफेंटा, कन्हेरी, मंडपेश्वर, अजंता, औरंगाबाद और एलोरा की प्रसिद्ध गुफाओं तथा साँची के मौर्यकालीन स्तूपों एवं कलाकृतियों का भी निरीक्षण तथा अध्ययन किया।

अर्द्धशताब्दी का कार्य प्रकाशित योजना के अनुसार चल रहा है। सभा के विवरण का बहुत सा भाग लिखा जा चुका है। प्रायः सभी प्रांतीय भाषाओं के साहित्य की प्रगति के इतिहास लिखे जा चुके हैं। हिंदी की विभिन्न प्रांतों की प्रगति के इतिहास भी कुछ तैयार हो गए हैं। पुस्तकालय और कलाभवन की सूचियाँ प्रायः तैयार हैं, पर कागज तथा द्रव्य की कमी के कारण वे अभी तक छपने के लिये प्रेस में नहीं दी गईं। हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के विवरण तैयार हो रहे हैं। अभी तक हिंदी-सेवी संस्थाओं के संक्षिप्त परिचय और विवरण यथेष्ट रूप से प्राप्त नहीं हुए हैं। ऐसी कई सौ संस्थाओं को पत्र भेजे गए थे। बहुतों ने अभी कोई उत्तर नहीं दिया है। पुनः प्रयत्न हो रहा है। जितनी अधिक संस्थाओं के परिचय मिल सकें, उतना ही अच्छा है। हिंदी-सेवी-संस्थाओं को इधर ध्यान देना चाहिए।

युद्धजन्य स्थिति के कारण कागज पर सरकारी नियंत्रण हो जाने से सभा का प्रकाशन-कार्य इस अवधि में बंद सा रहा; कोई नवीन पुस्तक नहीं प्रकाशित हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माघ १९९९ के अंत में सभा के स्थायी कोश में जो धन जमा रहा, उसका ब्योरा निम्नलिखित है—

१६०००) के स्टाक सर्टिफिकेट ट्रेजरर चैरिटेबल एंडाउमेंट्स, संयुक्त-प्रांत के पास।

१०००) के गवर्नमेंट स्टाक सर्टिफिकेट, सभा में।

५६६=) बनारस-बंक में।

४५४२।।।)। पोस्ट आफिस सेविंग बंक में।

६२८।।।) ७ इलाहाबाद बंक में।

२२७३७।।=) १०

इस छमाही में सभा के विभिन्न कार्यों के लिये २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली निम्नलिखित है। सभा इन सब सज्जनों की अनुगृहीत है और आशा करती है कि इनकी कृपा उसपर बराबर इसी प्रकार बनी रहेगी।

———

१ भाद्रपद १९९९ से ३० माघ १९९९ तक सभा को २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन प्रयोजन
११ भाद्रपद १९९९	श्रीमान् राजा उदयप्रतापसिंह, कटियारी	१००) स्थायी कोष
१६ ,, ,,	श्री भगीरथ कानोडिया, कलकत्ता	२००) अर्द्ध-शताब्द
१९ ,, ,,	श्री गोविंददास एडवोकेट, प्रयाग	५०) कलाभवन
२० ,, ,,	श्री बंकटलाल ओझा, हैदराबाद	१०१) स्थायी कोष
२६ ,, ,,	श्री इंदुभूषण गुप्त, आजमगढ़	१००) स्थायी कोष
९ आश्विन ,,	श्री अमरनाथ झा, प्रयाग	५०) कलाभवन
९ ,, ,,	श्री श्रीरंजनजी, प्रयाग	२५) ,,
१३ ,, ,,	श्री स्वामी नरोत्तमदास एम० ए०, बीकानेर	१०१।) स्थायी कोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन प्रयोजन
३१ आश्विन १९९९	संयुक्त प्रांतीय सरकार	५००) हिंदी पुस्तकों की खोज
५ कार्तिक ,,	,, ,, ,,	२५०) पुस्तकालय
१३ ,, ,,	म्युनिसिपल बोर्ड, बनारस	२००) कलाभवन
३० ,, ,,	श्री उमाशंकरजी, मुजफ्फरपुर	१००) स्थायी कोष
४ मार्गशीर्ष ,,	डा० जाफ़र हसन, हैदराबाद	१००) ,, ,,
७ ,, ,,	श्री विश्वमित्र, लायलपुर	६०) उपनिवेशों में हिंदी-प्रचार
८ ,, ,,	श्री अशोकजी एम० ए०, काशी	१००) स्थायी कोष
१६ ,, ,,	श्रीमती मालती देवी, बदायूँ	१००) ,, ,,
१७ ,, ,,	श्री केशवचंद्र शुक्ल, कानपुर	१००) ,, ,,
१८ ,, ,,	रायसाहब डा० सूरजप्रसाद श्रीवास्तव, मेरठ	१००) ,, ,,
२२ ,, ,,	राजा दलजितसिंह, शिमला	१००) कलाभवन
२५ ,, ,,	श्री अंबिकाप्रसाद श्रीवास्तव, काशी	१००) स्थायी कोष
२५ ,, ,,	श्री सेठ खुसालचंद डागा, बीकानेर	१०१) ,, ,,
२५ ,, ,,	श्री सेठ नारायणदास डागा, बीकानेर	१०१) ,, ,,
२५ ,, ,,	श्री बिट्ठलदास डागा, बीकानेर	१०१) ,, ,,
२ पौष ,,	श्री राय कृष्णदास, काशी	५०) कलाभवन
२१ ,, ,,	श्री घनश्यामदास बिड़ला, बंबई	२५०) ,, ,,
२२ ,, ,,	श्री राय रामचरण, इलाहाबाद	१००) ,, ,,
२४ ,, ,,	श्री तोताराम गुप्त, मुरादाबाद	१००) स्थायी कोष
६ माघ ,,	श्री तोलाराम बाँठिया, बीकानेर	१०१) ,, ,,
६ ,, ,,	सयुक्त प्रांतीय सरकार	५००) हिंदी पुस्तकों की खोज
१३ ,, ,,	,, ,, ,,	२५०) पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति तिथि			दाता का नाम	धन	प्रयोजन
१३	माघ	१९९९	श्री महाराज वीरेंद्रशाहजू देव बहादुर, जगम्मनपुर	१००)	स्थायी कोष
१४	,,	,,	श्री साहु रामप्रसाद, बिजनौर	१००)	,, ,,
१४	,,	,,	श्री केशवचंद्र, मुरादाबाद	१००)	,, ,,
१६	,,	,,	म्युनिसिपल बोर्ड, बनारस	२१०)	पुस्तकालय
२३	,,	,,	श्री सुधाकर एम० ए०, दिल्ली	१००)	स्थायी कोष
२३	,,	,,	श्रीमती कमलावती देवी, कानपुर	१००)	स्थायी कोष
,,	,,	,,	,, ,, ,,	४००)	अर्द्धशताब्दी
२६	,,	,,	श्री कन्हैयासिंहजी, कानपुर	१००)	स्थायी कोष
२६	,,	,,	श्री चाँदबिहारी कपूर, काशी	१००)	,, ,,
२९	,,	,,	माननीय सर जोगेंद्रसिंह, दिल्ली	१००)	कलाभवन
३०	,,	,,	श्री रामकुमार केजरीवाल, कलकत्ता	१००)	स्थायी कोष
				५००)	अर्द्धशताब्दी
				४००)	साधारण

——

हिंदी-साहित्य का इतिहास

संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण

(लेखक—स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल)

हिंदी-साहित्य का यह सर्वोत्कृष्ट और विचार-शृंखला-बद्ध इतिहास है। इस प्रवर्द्धित संस्करण में कुछ आवश्यक संशोधनों के अतिरिक्त अनेक नवीन बातों का समावेश करके लेखक ने इसे और भी उपयोगी बना दिया है। पृष्ठ-संख्या लगभग ९००; मू० ५)।

पता—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहट बालाबक्ष राजपूत चारण पुस्तकमाला

पुस्तकों के मूल्य में ५० प्रति शत कमी

जयपुर के स्व० श्री बारहट बालाबक्ष जी के दान से यह पुस्तकमाला प्रकाशित की जाती है। इसमें राजपूताना के चारणों और भाटों आदि के उत्तमोत्तम काव्य-ग्रंथ प्रकाशित किए जाते हैं। इस माला में अब तक निम्नोक्त ९ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। राजस्थानी साहित्य के ये प्राचीन ग्रंथ बहुत ही उच्चकोटि के हैं और इन्हें बहुत परिश्रमपूर्वक संपादित करा कर प्रकाशित किया गया है। स्वर्गीय दाता की इच्छा के अनुसार सभा चाहती है कि ये ग्रंथ सबको सुलभ हों; इनका अधिक से अधिक प्रचार हो। इसी विचार से सभा ने इस माला की बाँकीदास ग्रंथावली, भाग २ के अतिरिक्त शेष सब पुस्तकों का मूल्य आधा कर दिया है। सर्व साधारण से, विशेषत: राजस्थान की साहित्य-प्रेमी जनता से, सभा का अनुरोध है कि इन ग्रंथों को अपनावें एवं इनके अधिकाधिक प्रचार में सभा का हाथ बटाने की कृपा करें।

(१) **बाँकीदास-ग्रंथावली (तीन भाग)**—कविराज बाँकीदास डिंगल-भाषा के महाकवि थे। बहुत ही ओजस्विनी और वीररसपूर्ण भाषा में उन्होंने कविता की है। इसके प्रथम भाग में उनके रचित सात, द्वितीय भाग में दस तथा तृतीय भाग में नौ ग्रंथ तथा एक संग्रह संकलित हैं। प्रत्येक भाग के आरंभ में उनमें संगृहीत कृतियों के संबंध में विद्वत्तापूर्ण भूमिका है। प्रत्येक भाग का घटा हुआ मूल्य क्रमशः ।), ।।।) तथा ।।=)

(२) **बीसलदेव रासो**—सं० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०। इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १६६९ है। इसमें बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन है। कठिन शब्दों के अर्थ तथा उपयोगी टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। पृष्ठ संख्या १७५, घटा हुआ मूल्य ।)

(३) **शिखर वंशोत्पत्ति**—सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए० कविवर गोपाल जी रचित यह सीकर राज्य का छंदोबद्ध इतिहास है। पृष्ठ संख्या १४२, घटा हुआ मूल्य ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **व्रजनिधि-ग्रंथावली**—सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०। इसमें जयपुराधीश स्वर्गीय श्री सवाई प्रतापसिंह जी देव 'व्रजनिधि' रचित २३ काव्यग्रंथ संगृहीत हैं। आरंभ में उपादेय प्रस्तावना और कवि का जीवन-चरित्र भी है। पृष्ठ संख्या लगभग ४७५; घटा हुआ मूल्य १॥)

(५) **ढोला-मारूरा दूहा**—सं० श्री रामसिंह, एम० ए०; श्री सूर्यकरण पारीक, एम० ए०; श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०। यह राजपूताने का बहुत ही लोकप्रिय काव्य है। इस प्रेम-गाथा में नरवर के राजकुमार ढोला और उसकी प्रियतमा पूगल की राजकुमारी मारुवणी तथा मालवा की राजकन्या मालवणी की कहानी का बहुत ही सरस और हृदयस्पर्शी वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ९०० से ऊपर, घटा हुआ मूल्य २)

(६) **रघुनाथ रूपक गीतांरो**—संपादक श्री महतावचंद खारैड़, विशारद। महाकवि मंछ कृत इस ग्रंथ में श्री रामचंद्रजी की कथा का बहुत ही कवित्वपूर्ण वर्णन है; साथ ही यह डिंगल भाषा का अत्यंत प्रामाणिक रीति-ग्रंथ भी है। डिंगल छंदों के हिंदी शब्दार्थ तथा भावार्थ भी दे दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३६०; घटा हुआ मूल्य १)

(७) **राजरूपक**—संपादक पंडित रामकर्ण जी आसोपा। रतनू चारण वीरभाण कृत यह ग्रंथ डिंगल का प्रसिद्ध वीररस-प्रधान ऐतिहासिक काव्य है। आरंभ में ६० पृष्ठों में ग्रंथ का सारांश है। पाद-टिप्पणी में छंदों के कठिन शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ६०+८२३; घटा हुआ मूल्य २॥)

मिलने का पता—

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहट बालाबक्ष राजपूत चारण पुस्तकमाला

पुस्तकों के मूल्य में ५० प्रति शत कमी

जयपुर के स्व० श्री बारहट बालाबक्ष जी के दान से यह पुस्तकमाला प्रकाशित की जाती है। इसमें राजपूताना के चारणों और भाटों आदि के उत्तमोत्तम काव्य-ग्रंथ प्रकाशित किए जाते हैं। इस माला में अब तक निम्नोक्त ९ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। राजस्थानी साहित्य के ये प्राचीन ग्रंथ बहुत ही उच्चकोटि के हैं और इन्हें बहुत परिश्रमपूर्वक संपादित करा कर प्रकाशित किया गया है। स्वर्गीय दाता की इच्छा के अनुसार सभा चाहती है कि ये ग्रंथ सबको सुलभ हों; इनका अधिक से अधिक प्रचार हो। इसी विचार से सभा ने इस माला की बाँकीदास ग्रंथावली, भाग २ के अतिरिक्त शेष सब पुस्तकों का मूल्य आधा कर दिया है। सर्व साधारण से, विशेषतः राजस्थान की साहित्य-प्रेमी जनता से, सभा का अनुरोध है कि इन ग्रंथों को अपनावें एवं इनके अधिकाधिक प्रचार में सभा का हाथ बटाने की कृपा करें।

(१) **बाँकीदास-ग्रंथावली (तीन भाग)**–कविराज बाँकीदास डिंगल-भाषा के महाकवि थे। बहुत ही ओजस्विनी और वीररसपूर्ण भाषा में उन्होंने कविता की है। इसके प्रथम भाग में उनके रचित सात, द्वितीय भाग में दस तथा तृतीय भाग में नौ ग्रंथ तथा एक संग्रह संकलित हैं। प्रत्येक भाग के आरंभ में उनमें संगृहीत कृतियों के संबंध में विद्वत्तापूर्ण भूमिका है। प्रत्येक भाग का घटा हुआ मूल्य क्रमशः ।), ।।।) तथा ।।=)

(२) **बीसलदेव रासो**—सं० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०। इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १६६९ है। इसमें बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन है। कठिन शब्दों के अर्थ तथा उपयोगी टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। पृष्ठ संख्या १७५, घटा हुआ मूल्य ।)

(३) **शिखर वंशोत्पत्ति**—सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए० कविवर गोपाल जी रचित यह सीकर राज्य का छंदोबद्ध इतिहास है। पृष्ठ संख्या १४२, घटा हुआ मूल्य ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **ब्रजनिधि-ग्रंथावली**—सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०। इसमें जयपुराधीश स्वर्गीय श्री सवाई प्रतापसिंह जी देव 'ब्रजनिधि' रचित २३ काव्यग्रंथ संगृहीत हैं। आरंभ में उपादेय प्रस्तावना और कवि का जीवन-चरित्र भी है। पृष्ठ संख्या लगभग ४७५; घटा हुआ मूल्य १॥)

(५) **ढोला-मारूरा दूहा**—सं० श्री रामसिंह, एम० ए०; श्री सूर्यकरण पारीक, एम० ए०; श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०। यह राजपूताने का बहुत ही लोकप्रिय काव्य है। इस प्रेम-गाथा में नरवर के राजकुमार ढोला और उसकी प्रियतमा पूगल की राजकुमारी मारुवणी तथा मालवा की राजकन्या मालवणी की कहानी का बहुत ही सरस और हृदयस्पर्शी वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ९०० से ऊपर, घटा हुआ मूल्य २)

(६) **रघुनाथ रूपक गीतांरो**—संपादक श्री महताबचंद खारैड़, विशारद। महाकवि मंछ कृत इस ग्रंथ में श्री रामचंद्रजी की कथा का बहुत ही कवित्वपूर्ण वर्णन है; साथ ही यह डिंगल भाषा का अत्यंत प्रामाणिक रीति-ग्रंथ भी है। डिंगल छंदों के हिंदी शब्दार्थ तथा भावार्थ भी दे दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३६०; घटा हुआ मूल्य १)

(७) **राजरूपक**—संपादक पंडित रामकर्ण जी आसोपा। रतनू चारण वीरभाण कृत यह ग्रंथ डिंगल का प्रसिद्ध वीररस-प्रधान ऐतिहासिक काव्य है। आरंभ में ६० पृष्ठों में ग्रंथ का सारांश है। पाद-टिप्पणी में छंदों के कठिन शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ६०+८२३; घटा हुआ मूल्य २॥)

मिलने का पता—

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्द्ध-शताब्दी उत्सव

सम्मानित सभासद-गण,

१. आप जानते हैं कि सभा का अर्द्धशताब्दी-उत्सव आगामी वसंत-पंचमी पर मनाया जायगा। उसी समय विक्रम-जयंती भी होगी। राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के इस महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिये सभा आपको अभी से सादर, सप्रेम और साग्रह निमंत्रित करती है।

२. इस वर्ष आपको नागरीप्रचारिणी पत्रिका हर तीसरे महीने न मिलकर उक्त उत्सव के समय एकत्र मिलेगी, जिसमें राष्ट्रभाषा और विक्रम-संबंधी चुने हुए उत्तमोत्तम लेख रहेंगे। यह विशेषांक उन्हीं सज्जनों को मिलेगा, जो स्थायी अथवा विशिष्ट सदस्य हैं अथवा जिनका वार्षिक चंदा इसी समय आ जायगा।

३. इस बार वर्ष भर की चारों संख्याएँ एक साथ निकलने के कारण पत्रिका का पहला अंक साधारण सभासदों की सेवा में वी० पी० से न जा सकेगा। अतः प्रार्थना है कि आप अपना वार्षिक चंदा मनीआर्डर या पोस्टल आर्डर से भेज दें। अथवा वार्षिक विवरण जब वी० पी० से जाय, तब उसे स्वीकृत करने की कृपा करें।

४. कागज की कमी के कारण पत्रिका के विशेषांक की बहुत ही परिमित प्रतियाँ छप सकेंगी। सभा के सदस्यों को देने के बाद जो प्रतियाँ बच रहेंगी, वे हिंदी-प्रेमियों को १०) में मिलेंगी।

५. एक विशेष प्रार्थना और है। जो सज्जन साधारण सदस्य हैं, वे कृपा कर १००) देकर स्थायी बन जायँ। जो सज्जन स्थायी सदस्य हैं, वे ४००) और देकर विशिष्ट सदस्य बन जायँ। इससे अर्द्धशताब्दी उत्सव की सफलता में विशेष सहायता मिलेगी। ये रुपये एक साथ न देकर किस्त से भी दिए जा सकते हैं।

६. आप लोग सभा के साधारण, स्थायी और विशिष्ट सदस्य बनाने का विशेष रूप से प्रयत्न करें। उत्सव की सफलता के लिये भी यथासाध्य धन से सभा की सहायता करें और दूसरों से सहायता दिलाएँ। समय बहुत कम है।

आशा है, इन प्रार्थनाओं पर सब सज्जन विशेष रूप से ध्यान देंगे।

विनीत

रामचंद्र वर्मा
प्रधान मंत्री

रामनारायण मिश्र
रामदेव चोखानी
उपसभापति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका का विक्रमांक

संवत् १९५० विक्रमी में नागरी लिपि तथा हिंदी भाषा और साहित्य की रक्षा, प्रचार एवं उन्नति के उद्देश्य से काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। अगले वर्ष सभा के ५० वर्ष और सुयोगत: विक्रम-संवत् के २००० वर्ष पूरे हो जायँगे। यह एक महत्त्वपूर्ण सुयोग होगा। सभा ने यह संकल्प किया है कि उसके इतिहास में यह सुयोग यथेष्ट महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो, संवत् २००० में सभा की अर्धशताब्दी और विक्रम-संवत् की द्विसहस्राब्दी की पूर्ति पर, वसंतपंचमी के मंगल अवसर पर एक गौरवमय और स्मरणीय महोत्सव मनाया जाय। इस महोत्सव की पूरी आयोजना पत्रिका में तथा अन्यत्र निवेदित हो चुकी है।

इस आयोजना में पत्रिका का एक विशेषांक प्रस्तुत करने का हमारा संकल्प भी है। सभा की एवं नागरी-हिंदी की पचास वर्षों की प्रगति का इतिहास तथा विक्रम-संवत् का निर्णयात्मक इतिहास आयोजना के स्फुट अंग हैं। पत्रिका का विशेषांक, पत्रिका के उद्देश्यों के तथा इस अवसर के अनुकूल, एक युगांतरकारी भारतीय विक्रम के इस ऐतिहासिक स्मारक विक्रम संवत् के इन दो सहस्र वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के विक्रम अर्थात् विकास या प्रगति के सिंहावलोकन, परीक्षण-विवेचन के रूप में होगा। अत: यह विशेषांक एक विशेष योजना का विक्रमांक होगा।

इस योजना का विस्तार इस प्रकार होगा—

१—विक्रम—दो सहस्र वर्ष पूर्व विक्रम की ऐतिहासिक स्थापना और उसके आदर्श।

२—विक्रमचक्र—विक्रम के दो सहस्र वर्षों का मुख्य प्रवृत्तियों, पुरुषों तथा घटनाओं का कालचक्र।

३—विक्रम के दो सहस्र वर्षों में भारत तथा बृहत्तर भारत के भौगोलिक मान की अवस्थाएँ।

४—विक्रम के दो सहस्र वर्षों में भारतीय वंश-विकास।

५— ,, ,, ,, समाजव्यवस्था-विकास, जातिभेद।

६— ,, ,, ,, रहन-सहन तथा वेषभूषा का विकास।

७— ,, ,, ,, पर्व-उत्सवों का विकास।

८— ,, ,, ,, धर्म-विकास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—विक्रम के दो सहस्र वर्षों में भारतीय दर्शन-विकास।
१०— „ „ „ आचार-नीति-विकास
११— „ „ „ या हिंदू-कानून-विकास।
१२— „ „ „ विज्ञान-विकास।
१३— „ „ „ (मध्यदेशीय) भाषा-विकास।
१४— „ „ „ „ लिपि-विकास।
१५— „ „ „ „ साहित्य विकास।
१६— „ „ „ शिल्पकला-विकास।
१७— „ „ „ शिक्षा-विकास।
१८— „ „ „ राजनीतिक प्रगति।
१९— „ „ „ आर्थिक प्रगति।
२०— „ „ भारत और बृहत्तर भारत तथा अन्य देशों के पारस्परिक संबंध की प्रगति।

लगभग बीस बीस पृष्ठों के इन विषयों के बीस लेखों से ४०० पृष्ठों का ऐसा विक्रमांक उक्त महोत्सव में प्रस्तुत करने का हमारा संकल्प है। इसकी यथेष्ट पूर्णता से पत्रिका के अवसरानुरूप विक्रम का एक विशेष अंक स्थापित हो यह आशंसा हमारे साथ हमारे कृपालु लेखकों तथा पाठकों की भी है और एतदर्थ उनका उत्साहपूर्ण सहयोग तथा स्वागत-भाव प्राप्त होगा इसका हमें विश्वास है।

लेखकों से हमारा आग्रह है कि उपर्युक्त विषयों में से अपनी रुचि तथा अधिकार के विषय या संभवतः विषयों पर निर्धारित पृष्ठ-संख्या के अपने सुलिखित लेख यथासंभव शीघ्र भेजने की कृपा करें। लेखों के संपादन-मुद्रण का कार्य शीघ्र ही आरंभ होने को है।

पाठकों से हमारा निवेदन है कि पत्रिका का यह विशेषांक परिस्थितिवश वर्ष के चार अंकों का सम्मिलितांक होगा और अब अगला अंक यही होगा। इसका मुद्रण नियत संख्या में ही होगा। अतः पाठक सभा की अपनी सदस्यता या पत्रिका की ग्राहकता अभी से निश्चित कर लेने की कृपा करें।

कृष्णानंद
संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक

[नवीन संस्करण]

वर्ष ४७—संवत् १९९९

संपादक-मंडल

केशवप्रसाद मिश्र   वासुदेवशरण अग्रवाल

पद्मनारायण आचार्य   कृष्णानंद (संपादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११०७१२

वार्षिक सूची

विषय	पृष्ठ
मानस-पाठभेद [लेखक—मानस-मराल श्री शंभुनारायण चौबे, बी० ए०, एल-एल्० बी०]	१
संस्कृत में प्राकृत का प्रभाव [लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल्० बी०]	१४५
स्वदेशी तथा विदेशी हिंदी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन [लेखक—श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए०] ...	१५७
दाराशिकोह के फारसी उपनिषद् [लेखक—श्री शालिग्राम श्रीवास्तव]	१७९
प्राचीन भारतीय गणित [लेखिका—कुमारी सुप्ति सिंह, एम० ए०, डी० टी०, रिसर्च स्कालर, का० वि० वि०] ...	१८७
मानमंदिर बनारस [लेखक—प्रो० चंडीप्रसाद] ...	२१७
भूपालवल्लभ [लेखक—श्री नारायण शास्त्री आठले] ...	२४५
वीरगाथा-काल की रचनाओं पर विचार [लेखक—श्री अगरचंद नाहटा]	२५५
सुरति-निरति [लेखक—डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल्० बी०, डी० लिट्०]	२६३
शाहजहाँ-कालीन कुछ काशीस्थ हिंदी-कवि [लेखक—श्री दशरथ शर्मा]	२७१
अभागा दारा शुकोह [लेखक—श्री अविनाशकुमार श्रीवास्तव]	२७३
अलाय-बलाय [लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल] ...	२९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ

चयन

संस्कृत वाङ्मय में 'सरस्वती' शब्द [सं० श्री कृ] ... ३०५
ख आदि शून्यवाची शब्द एवं आकाश के साथ उनका दार्शनिक संबंध [सं० श्री कृ] ३१०
भारत की एकता [सं० श्री कृ] ३१५
पंचांग-शोध [सं० श्री कृ] ३२३

समीक्षा

हिंदुत्व [स० श्री रा० ब० पांडेय] ३२९
सारनाथ का संक्षिप्त परिचय [स० श्री रा० ब० पांडेय] ... ३३२
प्राचीन तिब्बत [स० श्री रा० ब० पांडेय] ... ३३४
महाभारत-मीमांसा [स० श्री रा० ब० पांडेय] ... ३३५
भारतीय चीनी मिट्टियाँ [स० श्री सत्यप्रकाश] ... ३३६
भारतीय वैज्ञानिक [स० श्री फूलदेवसहाय वर्मा] ... ३३६
आत्मचरित चंपू [स० श्री श] ३३८
राजस्थान के ग्राम-गीत [स० श्री रमापति शुक्ल] ... ३३९
छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय [स० श्री रामकिशोरी एम० ए०] ३४१
जैन साहित्य और इतिहास [स० श्री कैलाशचंद्र शास्त्री] ... ३४३
बच्चों की कुछ समस्याएँ [स० श्री भी० ला० आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट्०] ३४४
आधुनिक कवि—महादेवी वर्मा, एम० ए० [स० श्री रा० ना० श०] ३४५
भारतवर्ष का इतिहास [स० श्री (राय) कृष्णदास] ... ३४७
संत-समागम [स० श्री (राय) कृष्णदास] ... ३४९
प्रूफ-रीडिंग [स० श्री ल० पां०] ३५१
हिंदी नाट्य-साहित्य [स० श्री पद्म] ३५२
सबेरा, संघर्ष और गर्जन [स० श्री पद्म] ३५४
लेखनी उठाने के पूर्व या लेखक-बंधु [स० श्री कृ] ... ३५५
गुलेरी जी की अमर कहानियाँ [स० श्री कृ] ३५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय | पृष्ठ

आदर्श नरेश [स० श्री कृ] ३५९
नंददास [स० श्री वि० प्र० मिश्र] ३६१
विविध
स्वामी अग्रदास जी [लेखक—श्री लल्लीप्रसाद पांडेय] ... ३६४
संशोधन (१) पद्मनीचरित्र का समय [लेखक—श्री कृ] ... ३६५
(२) 'दाराशिकोह के फारसी उपनिषद्'-शीर्षक लेख [लेखक—श्री कृ] ३६६
रामचरितमानस की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रति [लेखक—श्री (राय) कृष्णदास] ३६६
सभा की प्रगति २०५, ३६६

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

170712

गुलेरी-ग्रंथ

(पहला भाग)

अमर कृता स्व० श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की समस्त कृतियों का संग्रह उपर्युक्त नाम से प्रकाशित करने का सभा का विचार है। संपूर्ण ग्रंथ तीन खडों का होगा। पहले खंड का पहला भाग लगभग तैयार है। इसमें उनके ऐतिहासिक लेखों का संग्रह है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३००; मूल्य १।।)।

पता—

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु ग्रंथावली

दूसरा भाग

आधुनिक हिंदी के सर्वमान्य उन्नायक गोलोकवासी भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का हिंदी साहित्य में क्या स्थान है इसके कहने की आवश्यकता नहीं। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं की प्राप्य कविताओं का खोजपूर्ण संग्रह है जो भारतेंदु अर्द्ध-शताब्दि के अवसर पर प्रकाशित किया गया था। इसका प्रथम खंड जिसमें उनकी जीवनी आदि रहेगी तथा अन्य खंड प्रकाशित करने का आयोजन है जो हिंदी-प्रेमियों की कृपा एवं सहायता पर निर्भर है। भारतेंदु के अनेक नयनाभिराम चित्रों से सुसज्जित लगभग एक हजार पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल तीन रुपया है।

नेपोलियन बोनापार्ट

(लेखक—लाला राधामोहन गोकुल जी)

नेपोलियन बोनापार्ट की यूरोपियन भाषाओं में सैकड़ों बल्कि हजारों जीवनियाँ निकल चुकी हैं। अपने समय में इस प्रतापी, पराक्रमी और साहसी योद्धा ने जिस ढंग से चढ़ाइयाँ कीं और विजय प्राप्त की उसे देख-सुनकर लोग अवाक् रह गये। अपनी विलक्षण बुद्धि और कौशल से इसने लोगों को चकित और स्तम्भित कर दिया। उसी की यह विस्तृत जीवनी है। आरंभ में नेपोलियन का एक चित्र भी दे दिया गया है। नया संस्करण। पृष्ठसंख्या ढाई सौ से ऊपर, मूल्य सवा रुपया।

भीष्म पितामह

(लेखक—पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी)

हिंदी में भीष्म जैसे सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती, आजन्म ब्रह्मचारी, स्वार्थ-त्यागी नीति-विशारद एवं गुणग्राही पुरुष की यह जीवनी देखने योग्य हुई है। भीष्म की भीषण प्रतिज्ञा, चित्रांगद और विचित्र-वीर्य, धृतराष्ट्र और पांडु, कौरव और पांडवों की शिक्षा, महाभारत का युद्ध, भीष्म-पितामह के उपदेश, राजधर्म-वर्णन, परलोक-गमन आदि बातों का बहुत ही मार्मिक और मनोरंजक वर्णन है। राजनीति, समाज-नीति और धर्म आदि का बहुत ही सुन्दर विवेचन है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य सवा रुपया।

सिक्खों का उत्थान और पतन

(लेखक—पंडित नंदकुमारदेव शर्मा)

भारतवर्ष में सिक्ख-जाति ने अनेक बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करके देश, धर्म तथा जाति तीनों की रक्षा की थी; पर उसका प्रवृत्त अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय तक न ठहर सका और शीघ्र ही नष्ट हो गया। इस पुस्तक में उसी सिक्ख-जाति के उत्थान और पतन का पूरा इतिहास तथा विवेचन है। स्थान-स्थान पर आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। नया संस्करण। पृष्ठ-संख्या लगभग २२५, मूल्य सवा रुपया।

बाल-मनोविज्ञान

(लेखक—प्रो॰ लालजीराम शुक्ल, एम॰ ए॰, बी॰ टी॰)

आजकल बालकों की शिक्षा और सुधार के लिए बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। ठोंक-पीटकर बालकों को पढ़ाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान् लोग समझने लगे हैं कि बालकों को ठोंकने-पीटने के बदले हमें उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का पता लगाना चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का अनुसरण करके हम उन्हें बड़े से बड़ा आदमी बना सकते हैं। बाल-मनोविज्ञान में बड़ी सरल और सुबोध भाषा में लेखक ने बालकों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उन्हें समझाया है। पृष्ठ-संख्या २६०, मूल्य १।)

मोहें जो दड़ो

(लेखक—श्री सतीशचंद्र काला, एम॰ ए॰)

मोहें जो दड़ो अर्थात् 'मुर्दों का टीला' सिंधु प्रांत में एक बहुत प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ की खोदाई में मिली हुई वस्तुओं से भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है जिसका वर्णन इस पुस्तक में है। पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य २)

मालती-माला

(लेखिका—श्रीमती मालती शर्मा)

यह १५ भावपूर्ण कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी मनुष्य-जीवन तथा समाज की किसी न किसी जटिल समस्या को लेकर आरंभ होती है और उसके विकसित रूप को चलती हुई भाषा में चित्रित करती है। कहानियाँ मनुष्य जीवन को सुदृढ़, शिक्षामय, उपयोगी बनाने में समर्थ तथा समाज में उच्चादर्श की स्थापना करनेवाली हैं [illegible] संख्या लगभग [illegible] केवल आठ आने।

पता—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण बसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar